साहित्य दिग्दर्शन

(इन्टर, बी. ए., एवं सम-कक्ष विद्यार्थियों के लिये)

★

स्वर्णलता अग्रवाल एम. ए.,
प्रिंसिपल, गर्ल्स कॉलेज, कोटा ।
(राजस्थान)

★

कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर

प्रकाशक—
जय कृष्ण अग्रवाल,
कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर

मूल्य ६-५० न० पै०

मुद्रक—
घीसाराम करणात,
नेशनल प्रेस अजमेर

प्राक्कथन

हिन्दी साहित्य एक गम्भीर समुद्र के समान है जिसका अवगाहन साहित्य के साधारण विद्यार्थी के लिये सम्भव नहीं —परन्तु साथ ही साथ भाषा की सरलता के कारण वह इतना सुयोग और सुलभ भी है जो थोड़े से प्रयास से और साहित्य सम्बन्धी साधारण जानकारी प्राप्त होने से शीघ्र ही हृदयंगम किया जा सकता है। कालेज का विद्यार्थी जब हिन्दी पाठ्य पुस्तकों का अध्ययन करता है तो साहित्य सम्बन्धी अनेक नई नई बातें उसके सामने आती हैं, जिन्हें देखकर उसका मस्तिष्क चकरा जाता है। कहीं काव्य की अनेक विधाओं को देखता है तो कहीं विभिन्न वादों के फेर में उसकी बुद्धि चक्कर खा जाती है। कभी छन्द और अलङ्कारों का मनन करना पड़ता है, तो कभी रस और कभी शब्द शक्तियों का। साहित्य की इन सारी गतिविधियों को समझने के लिये कक्षा में पढ़ाई जाने वाली पाठ्य पुस्तकों का अध्ययन पर्याप्त नहीं। सरल रूप में हिन्दी साहित्य और उसके इतिहास सम्बन्धी जानकारी प्राप्त कर लेने पर विद्यार्थी का आगामी मार्ग अत्यन्त सरल हो जाता है और फिर वे अपनी पाठ्य पुस्तकों को भली प्रकार समझकर साहित्य के अध्ययन से पूर्ण लाभ उठा सकता है।

इस उद्देश्य को सम्मुख रख कर 'साहित्य दिग्दर्शन' पुस्तक की रचना की गई है, जिससे विद्यालय में आने पर हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक विद्यार्थियों को मार्ग सरल हो सके। उच्च स्तर के विद्वतापूर्ण साहित्य का हिन्दी में अभाव नहीं, नित्य प्रति महान साहित्यकारों और विद्वानों की अनुपम रचनाए प्रकाशित होती रहती है। परन्तु उस उच्च साहित्य को समझने योग्य मानव को बनाने के लिये भी साधारण ज्ञान की आवश्कता होती है। अतः इस पुस्तक में विद्वता प्रदर्शन अथवा सूक्ष्म तत्वों पर प्रकाश डालने की चेष्टा न करके साहित्य की सारी गतिविधियों को अत्यन्त सरल और स्थूल रूप में उपस्थित किया गया है।

साहित्य और उसका उद्देश्य क्या है, साहित्य के विविध रूपों की जानकारी, साहित्यिक प्रमुख वादों से परिचय, रस, और अलङ्कारों को मोटे रूप में प्रस्तुत करके हिन्दी साहित्य और इसके इतिहास पर भी प्रकाश डाला गया है। साथ ही प्रमुख साहित्यकारों का परिचयात्मक विवरण देते हुये प्रत्येक युग के समस्त कवियों की नामावली, काल, एवं उनकी रचनाओं सहित प्रस्तुत

की गई है, और प्रत्येक अध्याय के अन्त में तत्सम्बन्धी पठनीय पुस्तकों की सूची देना विद्यार्थियों के अध्ययन को सुसाध्य बनाने में सहायक होगा।

अपने इस प्रयास में जिन विद्वानों की रचनाओं से सहायता प्राप्त हुई उनकी तो आभारी हूं ही पर मेरे ऊपर विशेष अनुग्रह राजस्थान के प्रमुख विद्वान श्री नरोत्तमदास स्वामी, वायस प्रिंसिपल महाराना भूपाल कालेज उदयपुर, तथा भूतपूर्व अध्यक्ष हिन्दीविभाग डूंगर कालेज बीकानेर का रहा है। उन्हीं की प्रेरणा और पथप्रदर्शन के बल पर मैं हिन्दी के विद्यार्थियों को यह तुच्छ भेंट देने में समर्थ हुई हूं। उनके अतिरिक्त प्रो० चन्द्रदेव शर्मा की भी आभारी हूं, उन्होंने क्रमशः लेखों की कमी को दूर करके सम्यक निरीक्षण द्वारा पुस्तक के स्वरूप को सम्भाला।

अत्यन्त गौरव का विषय है कि हिन्दी साहित्य के परम मान्य विद्वान डा० सत्येन्द्र का अनुग्रह भी प्राप्त हो सका। उन्होंने पुस्तक की न्यूनताओं की ओर संकेत करके अभाव पूर्तिनिमित मार्ग प्रदर्शन द्वारा इसे पूर्णता प्रदान की। इसके लिये अत्यन्त कृतज्ञ हूं।

कहां तक लेखिका अपने उद्देश्यपूर्ति में सफल हुई यह तो साहित्यिक विद्वानों द्वारा निर्णय का विषय है, पर आशा है कि कालेज के विद्यार्थी अवश्य पुस्तक से लाभ उठाकर मेरा प्रयास सफल करेंगे।

तिथि अश्विन वदी विजयादशमी
सम्वत् २०१४ तदनुसार ३ अक्टूबर, ५७,
कोटा (राजस्थान)

—स्वर्णलता अग्रवाल

विषय-सूचि

★

प्राक्कथन पृष्ठ

प्रथम अध्याय:—साहित्य और उसक उद्देश्य। १

द्वितीय अध्याय:—हिन्दी साहित्य और उसकी विभिन्न कालीन प्रवृतियों का संक्षिप्त विश्लेपण। ७

तृतीय अध्याय:—हिन्दी साहित्य का इतिहास और काल विभाजन। १२

क—वीर गाथा काल के पूर्व की साहित्य पृष्ठभूमि १२
ख—वीर गाथा काल और उसके प्रतिनिधि कवि १४
ग—भक्ति काल और उसके प्रतिनिधि कवि १६
घ—रीति काल और उसके प्रतिनिधि कवि ६८

चतुर्थ अध्याय:—आधुनिक युग। १००

क—भारतेन्दु अथवा राष्ट्रीय युग और उसके प्रनितिधि कवि १०१
ख—द्विवेदी अथवा गद्योत्थान युग और उसके प्रतिनिधि कवि १११
ग—छायावादी युग और उसके प्रतिनिधि कवि १३३
घ—प्रगतिशील युग और उसके प्रतिनिधि कवि १५८

पंचम अध्याय:—काव्य और उसके रूप १८३

क—पद्य-साहित्य प्रबन्ध महा काव्य और खण्ड काव्य १८५
ख—मुक्तक-काव्य १९०

षष्टम अध्याय:—गद्य साहित्य १९६

क—हिन्दी नाटक और उसका विकास १९६
ख—हिन्दी कहानी और उसका विकास २०२
ग—हिन्दी उपन्यास और उसका विकास २०७
घ—हिन्दी निबन्ध और उसका विकास २११
ङ—हिन्दी आलोचना २१९

सप्तम अध्याय:–हिन्दी साहित्य के प्रमुख वाद। २३१

क—रहस्यवाद २३१
ख—छायावाद २३३
ग—प्रतीकवाद २३५
घ—प्रगतिवाद २३६
ङ—हालावाद २३९
च—प्रयोगवाद २४०
छ—आदर्शवाद और यथार्थवाद २४०

अष्टम अध्याय:–रस निरूपण। २४३

क—भाव विभाव और अनुभाव आदि २४३
ख—नव रस २४४
ग—शब्द शक्ति २४६
घ—गुण २४६
ङ—वृत्ति २४८

नवम अध्याय:–अलङ्कार और छन्द। २५०

क—अलंकार-परिभाषा और भेद २५०
ख—शब्दालंकार और परिभाषा तथा प्रभेद उदाहरण सहित २५१
ग—अर्थालंकार परिभाषा और प्रभेद उदाहरण सहित २५२
घ—छन्द परिभाषा और भेद २५९
ङ—मात्रा, यति, पद, लय और तुक आदि २५९
च—विभिन्न छन्दों की परिभाषा उदाहरण सहित २६१
छ—काव्य दोषा २६५
—उपसंहार २६८

प्रथम अध्याय

साहित्य और उसका उद्देश्य।

साहित्य एक महान भावना समन्वित शब्द है, अतः उसे स्पष्ट करना अत्यन्त कठिन है। विद्वानों ने कहा है "साहितस्य भावः इति साहित्यम्" अर्थात् जिस में हित का भाव सन्निहित हो उसे साहित्य की श्रेणी में रक्खा जा सकता है। साहित्य प्रगति शील अनुभूति पूर्ण जीवन की व्याख्या है। साहित्य से जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह मानव हृदय में रसानुभूति की सृष्टि करता है - फिर मानव के बिना साहित्य और साहित्य के बिना मानव का अस्तित्व कैसा। किसी विद्वान ने कहा भी है

"साहित्य संगीत कला विहीनः
साक्षात नर पशु पुच्छ विषाणहीनः।"

साहित्य जीवन के सत्य, सौन्दर्य और श्रेष्ठता को रमणीय रूप में प्रस्तुत करता है। साहित्य अपनी सौन्दर्य विधायिनी प्रेरणात्मक शक्ति के कारण हमारे जीवन के निर्माण का साधन है। साहित्य में हमारी बुद्धि और भावना ऐसी मिल जाती है जैसे धूप छांह वस्त्र में दो रंगों के तार मिल कर तीसरे रंग की सृष्टि करते हैं। आचार्य शुक्ल जी के शब्दों में "आत्मा को संपादित कर देने वाले विचार और गतिशीलता का उसी प्रकार साहित्य में सामंजस्य होता है जिस प्रकार शील और सौन्दर्य का।"

महादेवी वर्मा ने कहा है – "कवि का वेदान्त ज्ञान जब अनुभूतियों से रूप, कल्पना से रंग और भाव जगत से सौन्दर्य पाकर साकार होता है, तब उस के सत्य में जीवन का स्पन्दन रहेगा, बुद्धि की तर्क शृंखला नहीं।"

हमारा साहित्य हम को एक संस्कृति और जातीयता के सूत्र में बांधता है। जैसा साहित्य होता है वैसी ही हमारी मनोवृतियां हो जाती हैं और मनोवृतियों के अनुकूल हमारा कार्य होने लगता है। अतः साहित्य हमारे समाज का प्रतिबिम्ब होने के साथ २ उसका नियामक और उन्नायक भी है। जनता की चित्तवृति परिवर्तित होती रहती है, अतः साहित्य में भी परिवर्तन होना अनिवार्य है। परन्तु इस परिवर्तन के साथ २ वह अपनी वास्तविकता छोड़ देता हो, ऐसी बात नहीं। साहित्य एक चिरन्तन सत्य है और उसका प्रवाह अनन्त है, इसके वास्तविक सत्य का स्वरूप कभी नष्ट नहीं होता।

साहित्य का सन्देश जीवन की उदात्तता का सन्देश है और साहित्य की चरम सीमा 'ब्रह्म सहोदर आनन्द' की प्राप्ति ।

साहित्य के रूप में भावों का प्रकाशन केवल व्यक्ति के उत्कर्ष के लिये ही नहीं, समाज के लिये भी आवश्यक है । भावों को प्रकाशित न करने से विचार शक्ति पर घातक प्रभाव होगा । व्यक्ति अपनी उस शक्ति को खो बैठेगा और यदि प्रतिभावान पुरुषों को अपने उदात्त विचारों को प्रकाशित करने की सुविधा न मिली होती तो मानव समाज उन से लाभ उठाने से वंचित रह जाता । इस प्रकार हम देखते हैं कि भाव प्रकाशन व्यक्ति और समाज दोनों के लिए कल्याणकारी और आवश्यक है । सामाजिकता की भावना को ही रचना एवं काव्य निर्माण का मूल समझना चाहिये । हमारे देश में धर्म दर्शन, शास्त्र अथवा साहित्य कला सभी का लक्ष्य मानव जीवन के चरम लक्ष्य आनन्द की ओर अग्रसर होना है ।

साहित्य के विकास में व्यक्ति का आत्म प्रसार मानवता के आत्म प्रसार में विलीन हो जाता है । इसी गुण के कारण साहित्य, स्थायी साहित्य अथवा "सर्व जनीन" एवं "सर्वकालीन साहित्य" की उपाधि प्राप्त करता है । साहित्य समष्टि रूप में मानवता का दर्पण कहा जा सकता है । राष्ट्र के जीवन की उन्नति अवनति और जातियों का इतिहास साहित्य में ही मिलता है । रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा है "यदि साहित्य को देश काल और पात्र के भीतर छोटा करके देखें तो यथार्थ रूप से नहीं—यह समझें कि साहित्य में विश्व मानव ही अपने को प्रकाशित कर रहा है, तब देखने योग्य वस्तु देख सकेंगे। 'ग्राम्य संकीर्णता से अपने आप को विश्व साहित्य के अन्दर विश्व मानव को देखना ही हम अपना उद्देश्य मानें' यह संकल्प होना चाहिये ।"

साहित्य का स्वरूप :— साधारणतया साहित्य उन गद्य पद्य मय कृतियों को कहते हैं जो मानव में अलौकिक आनन्द की सृष्टि करती हैं। पर अत्यन्त विस्तृत अर्थ में साहित्य के अन्तर्गत ज्ञान विज्ञान और धर्म दर्शन सम्बन्धी सम्पूर्ण साहित्य आ जाता है । विभिन्न भेद करके विषयानुसार साहित्य विभाजन किया जा सकता है जैसे — दार्शनिक साहित्य, राजनैतिक साहित्य, वैज्ञानिक और भौगोलिक ।

साहित्य तथा अन्य कलाएं :—साहित्य और कला का मनोभाव समान है पर साहित्य का प्रभाव अधिक विस्तृत और उसका दर्शन शास्त्र अति सूक्ष्म होता है । साहित्य अनुभूति जन्य और कला अभिव्यक्ति जन्य है । अनुभूति में जितनी व्यापकता है अभिव्यक्ति में नहीं । साहित्य में श्रेय और प्रेय के सामंजस्य के साथ

आनन्द का समावेश है। कला में सौन्दर्य बोध की प्रेरणा के साथ आनन्द प्रदान करने की शक्ति भी होती है।

साहित्य और विज्ञान :– साहित्य और विज्ञान दोनों एक रूप में विरोधी होते हुए भी जीवन के लिये समान रूप से आवश्यक हैं। साहित्य में कल्पना एवं भावों की प्रधानता है और विज्ञान में विचारों एवम् ज्ञान की। साहित्य भावना का विकास और विज्ञान में विचारों का विकास होता है। ज्ञान हृदय प्रधान और विज्ञान मस्तिष्क प्रधान है। ज्ञान संकल्पात्मक विभूति और विज्ञान विकल्पात्मक विभूति है 'सत्यं', कलाकार का सत्य भिन्न है– दूसरों के सत्य से अधिक सच्चा। टालस्टाय ने साहित्य और विज्ञान का हृदय और फेफड़ों जैसा सम्बन्ध बताया है। फेफड़ों के बिगड़ने से हृदय शुद्ध नहीं रह सकता और हृदय के दूषित होने से फेफड़ों की क्रिया असम्भव है। इसी प्रकार साहित्य द्वारा भावना के विकास बिना विज्ञान की प्रेरणा नहीं हो सकती और विज्ञान द्वारा व विचारों के विकास बिना साहित्य का विकास सम्भव नहीं। विज्ञान सत्य का अन्वेषण करके मानव हित के लिये प्रकाशित करता है। साहित्य कार इसी सत्य को अपनी भाव धारा में निमंत्रित करके विशुद्ध मनोहर रूप में प्रस्तुत कर देता है।

परन्तु खेद की बात है कि आज का विनाशकारी विज्ञान साहित्य को शक्ति प्रदान करने के बजाय धक्का पहुंचा रहा है।

मूल तत्व :– साहित्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है। इस अनूभूति को दूसरों के सामने प्रस्तुत करने में समर्थ करने वाले तत्व साहित्य के मूल तत्व हैं-वे हैं कल्पना, बुद्धि तथा भाव अथवा मनोवेग जिसे रागात्मक तत्व भी कहते हैं। इन तीनों तत्वों के आधार पर चलने वाला साहित्य सृजनात्मक होता है और कलात्मक भी। कलापक्ष के उचित उपयोग से ही अतिव्यंजता में सौंदर्य आता है और कला सदैव सौंदर्य प्रधान है।

कला के संगीत चित्र आदि अनेक रूपों की भांति साहित्य के भी अनेक रूप हैं जिनके गद्य और पद्य दो भेद हैं! काव्य में तीन प्रधान संवेदनाएं होती हैं – विषाद, हास और प्रसन्नता। शेष सभी संवेदनाएं इनके अन्तर्गत आ जाती हैं। नव रस इन्हीं के रूपान्तर हैं।

साहित्य मन और स्वभाव की उपज है अतः स्वभाव को प्रभावित करने वाली बातें साहित्य को भी प्रभावित करती हैं। साहित्य पर साहित्यकार के व्यक्तित्व और जातीयता का प्रभाव विशेष रूप से पड़ता है।

साहित्य इतिहास का विख्याता और सहायक है । साहित्य ही से हमें जातियों के आध्यात्मिक मानसिक और नैतिक विकास का ठीक २ पता लगता है । जाति स्थिति और काल का साहित्य पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

जातियों के वास्तविक इतिहास को सुरक्षित रखने का साधन साहित्य है । डा० श्यामसुन्दर दास के शब्दों में "काव्य जाति विशेष का मौस्तिष्क या अंतः करण है जो उस के पूर्व अनुभव, भावना, विचार कल्पना और ज्ञान को रक्षित रखता है और उसी की सहायता से उसकी वर्तमान स्थिति का अनुभव प्राप्त किया जाता है । इस पूर्व संचित भंडार के बिना मानव जीवन पाशव जीवन के समान हैं।"

साहित्य का उद्देश्य :– काव्य के मुख्य प्रयोजन दो हैं । श्रोता या पाठक के लिये प्रीति और कवि के लिये कीर्ति ।

"प्रीति करोति कीर्ति च साधु काव्य निषेवणम्"

इस उक्ति के अनुसार प्रीति और कीर्ति के साथ ही शिवेतर (अकल्याण) क्षय भी काव्य प्रेरणा का कार्य करता है । साहित्य एंव कला के प्रयोजन विभिन्न वादों के कारण अनेक बन गये हैं–कोई कहता है कि साहित्य की रचना स्वान्तः सुखाय होती है और कोई कहता है 'जगहिताय'। रूस के प्रसिद्ध साहित्यकार टालस्टाय के अनुसार कला का लक्ष्य मानव एकता द्वारा मानव कल्याण है। मैथ्यू आर्नल्ड के सिद्धान्त "साहित्य जीवन की व्याख्या है" से भी यह मत मिलता है। इसमें लोक संग्रह की भावना को स्थान दिया गया है ।

प्राचीन साहित्याचार्यों के अनुसार कला एवं साहित्य का लक्ष्य मानव के लिये धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि है इस आदर्श के अनुसार कला न केवल लौकिक कल्याण के लिये ही है प्रत्युत मुक्ति के लिये भी है । मुक्ति ही ब्रह्मानन्द है और आत्मा उसमें लीन होकर ही अपना चरम लक्ष्य प्राप्त करती है । इस प्रकार कला, 'जग हिताय' के साथ ही स्वान्तः सुखाय हुई । कलाकार की दृष्टि में उद्देश्य कुछ भी हो साहित्य और कला की सृष्टि से कर्त्ता को आत्म तुष्टि और समाज का हित दोनों ही होते हैं। जीवन को सुन्दर और सुखी बनाना साहित्य का मुख्य उद्देश्य है।

पाश्चात्य विद्वान क्रोचे के अभिव्यजना वाद के अनुसार काव्य शुद्ध सहजानुभूति (Intution) है । मानव मन में जगत के नाना पदार्थों की प्रति क्रिया रूप अनेक छाया चित्र घूमते रहते हैं। अनूभूति के कुछ विशेष क्षणों में जिन्हे अभिव्यक्त करना उस के स्वास्थय के लिये अनिवार्य हो जाता है। अभिव्यक्ति की यही अनिवार्यता क्रोचे के अनुसार काव्य या कला की जननी है ।

इसी प्रकार अरस्तु, हीगेल और फ्रायड के अलग २ सिद्धान्त हैं। अरस्तु अनुकरण की प्रवृति को काव्य की मूल प्रेरणा मानता है, हीगेल कहता है सौन्दर्यानुभूति के क्षणों में हमारी आत्मा में जो आनन्द का स्रोत होता है उसी का उच्छलन कविता है। फ्रायड के अनुसार अभुक्त की प्रेरणा साहित्य की सर्जना करती है।

डा० नगेन्द्र का मत है "जीवन की अंहकार जगत से या आत्म का अनात्म से संघर्ष हैं। सफलता पर सुख और विफलता पर दुःख इसी संघर्ष के मानस रूप की अभिव्यक्ति साहित्य है।"

योरुप में साहित्य के प्रयोजन के सम्बन्ध में बड़ी खींचातानी चली। उदात्त वादी तथा नवोदात्त वादी यह मानते रहे कि काव्य का प्रयोजन शिक्षा देना है किन्तु फ्रांसीसी प्रकृत्ति वादियों ने यह हल्ला मचाया कि 'कला कला के लिये है' शिक्षा के लिये नहीं वर्डसवर्थ, शैली और कीट्स आदि अंग्रेजी विद्वानों ने कला के उपदेश और आनन्द देने पर बल दिया और 'कला कला के लियें' सिद्धान्त वालों ने शिक्षा वाले उद्देश्य का विरोध करते हुए बहुत सी बातें कहीं। उन का मत है कि जीवन सदा कला का अनुकरण करता है और कला ही जीवन की श्रेष्ठता के मान स्थापित करती है। इसलिये जीवन को ललित कला के रूप में बिताना चाहिये। कला की एक और भी कारण से वे प्रधानता बतलाते हैं – कहते हैं कि वह किसी व्यक्ति या समूह को सुधार कर ऊंचा उठा देगी। पर इसी युग में फिर कुछ ऐसे व्यक्ति हुये जो कला का उद्देश्य शिक्षा देना मानने लगे। रस्किन ने स्पष्ट कहा 'कलाओं का मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिये कि वह जनता को शिक्षा दे। मनुष्य की धार्मिक भावनाओं को शक्तिशाली बनावें, उनकी नैतिक स्थिति ठीक करे और उन्हे व्यवहार ज्ञान सिखावे।" उस का मत था कि आनन्द तो उन कलाओं के उचित रूप से कार्य करने का चिन्ह माना है – वह उद्देश्य नहीं, वरन कला के साथ की उपज है।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अनेकों ने कला के लिये कला की ही धूम मचाई इस पर लोगों ने टिप्पनी की कि अपनी मूर्खता के कारण उन से मुक्त होने के लिये ही यह कोलाहल किया जा रहा है। इस सिद्धान्त को निरर्थक बताते हुए टी. एस. इलियट ने कहा कि "इस सिद्धान्त का हल्ला तो बहुत होता है किन्तु व्यवहार कुछ भी नहीं।" "कोई भी ऐसा लेखक नहीं जो कला के लिये उसकी रचना करके उसे प्रदर्शन की सामग्री बनावे, प्रचार की नहीं।"

वास्तव में कोई अच्छा कवि उपदेश देने के लिये या कला की वृद्धि के लिये नहीं लिखता – वह तो अपनी मस्ती में लिख देता है किसी का मन चाहे तो उपदेश ले ले और मन चाहे तो उस से कला की उन्नति समझ ले। हमारे साहित्य शिरोमणी गोस्वामी जी ने स्पष्ट ही कहा है रामचरित मानस में, "स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा भाषा निबन्धमति-मञ्जुलमाननोति "

उन्होंने राम के प्रति अनन्य भक्ति से प्रेरित होकर मानस की रचना की थी उपदेश देने के उद्देश्य से नहीं। फिर भी उन का ग्रन्थ जनता के लिये शिक्षा का भण्डार बना हुआ है। भक्ति से प्रेरित होकर कवि की प्रवृति भी स्थान २ पर उपदेशात्मक हो गई है परन्तु ग्रन्थ रचना का उद्देश्य उपदेशात्मक नहीं कहा जा सकता। यों तो कई प्रकार के नैतिक राजनैतिक और सामाजिक ग्रन्थ उपदेश की दृष्टि से भी लिखे जाते हैं। परन्तु वास्तव में वह रचना कवि की सहजानुभूति और आत्म प्रेरणा के ही परिणाम स्वरूप होती है। इस प्रकार साहित्य का उद्देश्य 'स्वान्तः सुखाय और जग हिताय का समन्वय ही सिद्ध होता है - कला का दृष्टि कोण तो स्वयं ही बन जाता है क्योंकि कलात्मक अभिव्यक्ति के बिना साहित्य प्रभाव शाली नहीं बन सकता और प्रभावोत्पादिनी शक्ति से रहित साहित्य न मनोरंजन ही कर सकता है न हितकारी ही सिद्ध होवे। साहित्य का एक ही उद्देश्य होता है वह यही कि सत्य के स्वरूप को मनोरम रूप में मानव के सम्मुख रखना और उसे इस प्रकार आकर्षित करना कि वह इससे आकृष्ट होकर अपने व समाज के कल्याण निमित्त अग्रसर हो जाय।

साहित्य वह कला है जो जीवन को चेतना प्रदान करती है, मनोरमता देती है और साथ ही साथ आनंदित भी करती है अतः साहित्य को 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' कहते है और उसे सच्चिदानन्द के समान आनन्द प्रदान करने वाला माना गया है वास्तव में कला के प्रयोजन बहुत है पर मुख्य प्रयोजन "ब्रह्मानन्द सहोदर" आनन्द ही है। सदाचार और सामाजिक सामर्थ्य ये उसके अवश्यम्भावी गौण फल हैं।

अध्याय २

हिन्दी साहित्य

विभिन्न कालीन प्रवृत्तियों का विश्लेषण ।

मनुष्य मात्र की यह स्वाभाविक प्रवृति होती है कि वह अपने भावों तथा विचारों को दूसरों पर प्रकट करे और स्वयं बड़ी उत्सुकता से दूसरे के भावों और विचारों को सुने व समझे । मनुष्य की इसी प्रवृति की प्रेरणा से ज्ञान और शक्ति के उस भंडार का सृजन, संचय और संवर्धन होता है जिसे हम साहित्य कहते हैं । साहित्य के मूल में स्थित सौंदर्य प्रियता की भावना से साहित्य में एक अलौकिक और अनिर्वचनीय आनन्द की उपलब्धि होती है । इस प्रकार एक ओर तो हम अपने भावों, विचारों, आकांक्षाओं तथा कल्पनाओं की अभिव्यंजना करते हैं, और दूसरी ओर अपने सौंदर्य-ज्ञान के सहारे उन्हें सुन्दरतम बनाने तथा उनमें एक अद्भुत आकर्षण का आविर्भाव करते हैं । इन्हीं दो मूल तत्वों के आधार पर साहित्य के दो पक्ष माने जाते हैं :–

(१) भाव पक्ष (२) कला पक्ष

भौगोलिक कारणों से अथवा जलवायु के फल स्वरूप या अन्य किसी कारण से प्रत्येक देश अथवा जाति के साहित्य में अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं । साहित्य के साधारण विकास में जातीय भावनाओं और विचारों की छाप किसी न किसी रूप में अवश्य होती है भारतीय कलाओं और साहित्य पर भारतीय आध्यात्मिक और लौकिक विचारों की गहरी छाप है । हमारे साहित्य एवं कलाओं के उद्देश्य में आदर्शवादिता की प्रचुरता देख पड़ती है । इन्हीं साहित्यिक विशेषताओं के कारण जातीय साहित्य का व्यक्तित्व निर्धारित होता है ।

हिन्दी साहित्य का वंशगत संबंध प्राचीन भारतीय साहित्य से है । संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि की विकसित परम्परा ही हिंदी कहलाई । समस्त भारतीय साहित्य में भी सबसे बड़ी विशेषता आध्यात्मिक प्रभाव और उसका मूल समन्वय की भावना है । उसकी यह विशेषता इतनी प्रमुख तथा मार्मिक है कि केवल इसी के बल पर संसार के अन्य साहित्यों के सामने वह अपनी मौलिकता की पताका फहरा सकती है और अपने स्वतंत्र अस्तित्व की सार्थकता प्रमाणित कर सकती है ।

भारतीय साहित्य का उद्देश्य धर्म अर्थ काम आदि की सिद्धि के साथ

मोक्ष की सिद्धि रहा इसलिये साहित्य में धार्मिक भावों की प्रचुरता है। हिन्दी भाषा और साहित्य का चरमोन्नति काल भी भक्ति काल ही है।

जातिगत विशेषताओं के अतिरिक्त हमारे साहित्य के कला पक्ष में भी कुछ स्थायी जातीय मनोवृत्तियों का प्रतिबिम्ब अवश्य दिखाई देता है। उदाहरण के लिये भारतीय कवियों में वर्णनात्मक शैली की प्रधानता होने के कारण गीति काव्य जैसी कविता का अभाव रहा। शब्द समुदाय में क्रियाओं में सूक्ष्म विभेदों तथा वस्तुओं के आकार प्रकार व रूप रंग संबधी छोटे अन्तरों को व्यंजित करने की अपेक्षाकृत कम शक्ति रही। स्वर लय के सामंजस्य से युक्त भारतीय संगीत का प्रभाव काव्य साहित्य पर पर्याप्त मात्रा में पड़ा।

अपने प्रौढ़ काल में संस्कृत काव्य का अलंकारों से लदा वह रूप जो निष्प्रभ और निस्सार हो चुका था, हिन्दी कविता के स्वतंत्र विकास में रुकावटें डालता रहा। वीर गाथा काल का साहित्यिक क्षेत्र इसीलिये बहुत कुछ परिमित होगया। हिन्दी भक्त कवियों के प्रयत्न से उन परिणामों का निवारण हुआ, पर उनकी परम्परा समाप्त होते ही हिन्दी के कवि फिर पिछले संस्कृत साहित्य की रीति धारा से प्रभावित होकर उसका अनुसरण हिन्दी में करने लगे जिसके फल स्वरूप भाषा में तो शक्ति और प्रांजलता आई परन्तु भावों की नवीनता तथा मौलिकता बहुत कुछ जाती रही।

हिन्दी साहित्य का अधिकांश युग अशांति पराधीनता और निराशा का काल रहा है। हमारे साहित्य में करुणा की जो हल्की सी अन्तंधारा व्याप्त मिलती है, वह इसी के फल स्वरूप है। दार्शनिक चिन्तन का क्रम विकास, योग और ज्ञान का भक्ति में परिवर्तन, देश और जाति की बदलती स्थिति और बाह्य प्रभाव के कारण हुए हैं। साहित्य जनता की प्रवृतियो और विचारों का प्रतिबिम्ब हुआ करता है अतः राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के कारण साहित्य में भी निरन्तर परिवर्तन होता रहा है।

हिन्दी का प्रारम्भिक रूप अपभ्रंश का रहा और हिन्दी के उस पुराने रूप में जो साहित्य लिखा गया वह बौद्ध सिद्धों और जैन सन्यासियों द्वारा ही अधिक लिखा गया। धार्मिक रूप से वह काल बौद्ध-धर्म के पतन और ब्राह्मण धर्म के पुनरुत्थान का था। राजनैतिक रूप से यह काल एक छत्र साम्राज्यों की समाप्ति और शासन शक्ति की विछिन्नता का था। तभी राज्याश्रित कवियों चारणों और भाटों द्वारा वीर गाथाएँ और वीर गीति

(Ballads) काव्य का **सृजन** हिन्दी साहित्य की शृंखला की पहली व्यवस्थित कड़ी है। (१) इस काल में यद्यपि **वीरोल्लासनी** कविताओं और वीर गाथाओं की प्रधानता दिखाई देती है, फिर भी कालक्रम के दृष्टिकोण से अमीर खुसरो का मनोरंजक साहित्य और मैथिल कोकिल विद्यापति की शृङ्गारी रचनाएँ इसी काल में आती हैं। तदन्तर हिन्दी साहित्य अपने (२) **भक्ति युग** में प्रवेश करता है, उसमें वैष्णव, सूफी और निर्गुण भक्ति सम्बन्धी साहित्य की बहुलता मिलती है। राम, कृष्ण एवम् निराकार भक्त कवियों का यह युग हिन्दी साहित्य का स्वर्ण-युग समझा जाता है। इस काल में भाषा और भाव दोनों दृष्टियों से हिन्दी कविता अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गई। इस युग की समाप्ति होने पर (३) रीति-ग्रन्थों की परम्परा चली और शृङ्गारी कविताएं अधिकता से लिखी जाने लगी। यह युग **रीति काल** कहलाया और इसमें साहित्य का सृजन भी दरबारी कवियों द्वारा हुआ, जिन्होंने वासना प्रधान शृङ्गारी काव्य अपने आश्रयदाताओं की मनोवृत्ति के अनुकूल लिखा। इसीलिये हमारे इस साहित्य पर मुगल साम्राज्य की तत्कालीन सुख-समृद्धि तथा तत्सम्भव विलासिता की प्रत्यक्ष छाप दिखाई देती है। कला-कौशल की अभिवृद्धि के साथ साथ कविता में भी कलापक्ष की प्रधानता हो गई। बिहारी, देव, पद्माकर, मतिराम आदि इस युग के प्रतिनिधि कवि हैं। (४) तदन्तर आधुनिक युग के आरम्भ होने पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का साहित्याकाश में उदय हुआ और एक सर्वतोमुखी नवीन प्रकाश चारों ओर व्याप्त हो गया। हिन्दी-गद्य का विकास और साहित्य की विभिन्न पूर्वी और पश्चिमी शैलियों का जन्म इस काल की सबसे बड़ी विशेषता है। साहित्य की पश्चिमी प्रणालियों, शैलियों और आदर्शों का प्रभाव इस साहित्य पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। हिन्दी साहित्य अपने विकास के नवीन रूप को अपनाकर, इस काल में ही विभिन्न धाराओं में प्रवाहित होने लगा, इसीलिये हम इसे हिन्दी के नवीन विकास का युग मान सकते हैं। द्विवेदी युग इस साहित्य के विकास की अगली कड़ी है। जिसमें महावीरप्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, डा० श्यामसुन्दरदास, प्रेमचंद और रामचन्द्र शुक्ल जैसी प्रतिभाओं का साहित्य सम्मुख आता है। इस युग में व्याकरण की ओर अधिक ध्यान देकर भाषा का परिमार्जन और विकास हुआ। कहानी, उपन्यास और नाटक साहित्य की वृद्धि और आलोचना का सूत्रपात हुआ। गुप्त और हरिऔध जैसे प्रतिभाशाली कवियों की लेखनी से कई महाकाव्य और खण्ड काव्यों की रचना हुई। पर यह

युग इतिवृत्तात्मक आदर्शवादी युग था—प्रसाद, पन्त, निराला आदि चिन्तन-शील प्रतिक्रियावादी कवियों के प्रादुर्भाव से छायावादी कविता का जन्म हुआ और यह युग छायावादी कहलाया। प्रकृति के विभिन्न रूपों में आत्मा की खोज इन कवियों का ध्येय था और जीवन से उदासीनता इनकी मन प्रवृत्ति। अतः इस युग को पलायनवादी युग भी कहते हैं। यह युग हिन्दी कविता की चरमोन्नति का काल था, भाषा की सजावट और कलापक्ष की ओर कवियों का निरपेक्ष भाव होते हुए भी इनके काव्य में प्रभावोत्पा-दकता के साथ साथ उत्तम कविता के सब गुण विद्यमान हैं।

छायावादी युग की अन्तर्मुखी कविता के पश्चात् क्रान्तिकारी कवियों में जीवन-संघर्ष की प्रवृत्ति जागृत हुई। 'दिनकर' जैसी स्वतन्त्र विचारों वाली प्रतिभाएं यथार्थ को आदर्श से दबाने में सन्तोष न कर पाईं। उन्होंने यथार्थ का नग्न चित्रण करके ध्वंसात्मक वृत्तियों का परिचय दिया। भूख, पीड़ा और वेदना की चीत्कारों को मिटाने के लिये बीड़ा उठा कर तत्परता से संलग्न हो गये—यह युग प्रगतिवादी युग कहलाया। बच्चनजी के प्रादुर्भाव से कवि विचार धारा ने एक और मोड़ पकड़ा कि जीवन के दुःखों को हाला (शराब) के प्याले की मस्ती में भुलाया जाय—अतः यह युग हालावादी हुआ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास की इन प्रवृत्तियों का संक्षिप्त विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है:—

(१) **वीरगाथा काल में** राज्याश्रित कवियों द्वारा आश्रयदाता राजाओं की वीरता और पराक्रम का गुणगान करते हुए युद्ध व वर्णन तथा उनकी विलासपूर्ण भावनाओं को जागृत करने के लिये सुन्दरियों का वर्णन।

(२) **भक्ति काल में** मुसलमानों के आतंक से पीड़ित हिन्दू जनता का ध्यान भगवान के कारुण्य और शक्ति की ओर ले जाने के लिये भक्ति-काव्यों की रचना एवम् राम और कृष्ण को आलम्बन बना कर काव्य कला का सामन्जस्य स्थापित करना।

(३) **रीति काल में** राजाओं की विलासिता के कारण सौन्दर्य के नग्न चित्रों द्वारा शृङ्गार वर्णन, नख-शिख वर्णन और नायक नायिकाओं के सौन्दर्य वर्णन के अतिरिक्त कुछ नहीं।

(४) **भारतेन्दु युग** नवजीवन जागृति का युग था। इसमें सुधारवादी काल रचना हुई। गद्य रचना का श्री गणेश हुआ। राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत कविता लिखी गई। रीति काल की शृङ्गारिक भावनाओं का भी कुछ प्रभाव शेष था।

(५) **द्विवेदी युग** इसी वृत्तात्मकता को लिये हुए आदर्शवाद का युग था। पौराणिक आदर्शवाद की ओर कवि प्रवृत्ति रही। राम और कृष्ण को आश्रय बना कर भारतीय संस्कृति का नव जागरण हुआ। इस युग क काव्यों में भक्तिकालीन कविता वाली रसात्मकता नहीं थी।

(६) छायावादी युग में द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया स्वरूप भावनात्मक शैली का पुनरारम्भ। स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह और जीवन के प्रति पलायन शीलता।

(७) प्रगतिशील युग में छायावादी पलायन् शीलता के स्थान पर जीवन संघर्ष से जूझने की प्रवृत्ति और एक ऐसी नई समाज व्यवस्था को जन्म देने की आकुलता उत्पन्न हुई जिसमें व्यक्ति का सर्वोच्च विकास हो सके और समाजवादी अर्थ व्यवस्था अपनाई जा सके। इस युग में एक प्रकार की नास्तिकता की भावना समा गई, ईश्वर पर विश्वास करने के स्थान में बुद्धि बल पर सब कुछ होने लगा।

(८) तत्पश्चात् साहित्य क्षेत्र में एक अनोखी मस्ती की भावना जागृत हुई जिससे संसार की समस्त वस्तुएं हाला, प्याला और मधुशाला से आभासित होने लगी, अतः काव्य की इस प्रवृत्ति का नाम 'हालावाद' विख्यात हो गया। इस युग के कवियों की रचनाएं कल्पना के रंग में रंगी दृष्टि आ रही हैं।

(९) साथ ही प्रतीक पद्धति चलने लगी और राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के प्रभाव से अनेक विचारधाराएं प्रवाहित होकर वादों के नाम से प्रचलित हो, जिनका उल्लेख यथा स्थान किया जायेगा।

प्रगतिवाद, हालावाद और प्रतीकवाद आदि को लेकर कई कवि हिन्दी साहित्य कार्य सेवा में रत हुए और समाजवाद, गांधीवाद, उपयोगितावाद आदि अनेक अन्य विचार धाराओं को लेकर नित्य नये कवि साहित्य क्षेत्र में अवतीर्ण हो रहे हैं।

अध्याय २

हिन्दी साहित्य का इतिहास और काल विभाजन:—हिन्दी साहित्य के व्यवस्थित इतिहास का काल विभाजन पं० रामचन्द्र शुक्ल ने निम्न प्रकार से किया है:—

(१) ऐतिहासिक दृष्टि से:—

(क)	आदि युग	संवत् १००० से १४०० तक
(ख)	पूर्व मध्य युग	संवत् १४०० से १७०० तक
(ग)	उत्तर मध्य युग	संवत् १७०० से १९०० तक
(घ)	आधुनिक युग	संवत् १९०० से अब तक

(२) रस, वृत्ति अथवा विषय की दृष्टि से:—

(क)	वीर गाथा काल (चारण-काल)	संवत् १००० से १४०० तक
(ख)	भक्ति काल (सन्त-काल)	संवत् १४०० से १७०० तक
(ग)	रीति काल (दरबारी कवि-काल)	संवत् १७०० से १९०० तक
(घ)	आधुनिक काल (स्वतन्त्र युग)	संवत् १९०० से अब तक

वीर गाथा काल से पूर्व की साहित्यिक पृष्ठ भूमि
(५०० ई० से १००० ई० तक)

ऐसा माना जाता है कि शौरसेनी प्राकृत में आभीरों की भाषा के मिश्रण से जो नवीन परिवर्तन हुआ वही अपभ्रंश के जन्म, विकास और उसे साहित्यिक भाषा बनाने में सहायक हुआ। गुजरात, सौराष्ट्र राजस्थान और आसाम बंगाल के प्रदेश अपभ्रंश साहित्य सृजन के केन्द्र रहे।

५०० ई० के प्रथम शतक में अपभ्रंश को अभीरों की भाषा कहा गया है और उसे भारत के पश्चिमोत्तर सीमान्त की भाषा माना गया है। अनुमान है कि अभीरों के हाथ राज-सत्ता आने के बाद इस भाषा में साहित्य लिखा जाने लगा था। दण्डी, भामह आदि अलङ्कारिकों ने अप-भ्रंश भाषा और साहित्य का उल्लेख किया है। अतः छठी शताब्दी तक इस भाषा में साहित्य लिखा जाने लगा था। नवीं शताब्दी तक अपभ्रंश साहित्य की वृद्धि एवम् उसका विकास होता रहा। ग्यारहवीं शताब्दि में वैयाकरणों ने सिद्ध किया कि अपभ्रंश कोई साहित्यिक भाषा नहीं अपितु स्थान भेद से अपभ्रंश का अर्थ लोक भाषा (बोली) के रूप में होता है। आज की उत्तर भारत की अधिकांश बोलियों का आदि रूप उस काल की लोक भाषा अपभ्रंश में दिखलाई देता है।

अपभ्रंश भाषा का जो साहित्य मिलता है उसके विषय निम्नाङ्कित रहे:—

(१) वीर और शृंगार रस के स्फुट पद ।
(२) लोक प्रसिद्ध कथाओं पर आश्रित प्रबन्ध-काव्य ।
(३) नीति सम्बन्धी उपदेश ।
(४) धार्मिक उपदेश ।
(५) रहस्य भावना ।

हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद राज्याश्रय से रहित अधिकांश बौद्ध भिक्षुओं और सन्यासियों को ब्राह्मण धर्म के पुनरुत्थान के कारण उत्तर-पूर्व दिशा के पहाड़ी और जंगली प्रदेशों की ओर चला जाना पड़ा था। बिहार, आसाम, नैपाल, बंगाल आदि को इन सन्यासियों ने अपनी साधना और संस्कृति का केन्द्र बनाया था। प्रवृतिमूलक बाम-मार्ग की हठयोगी साधना प्रणाली ने उन रहस्यात्मक भोगवादी भावनाओं को जन्म दिया जो ८४ सिद्धों के साहित्य में परिलक्षित होती है। मद्य और नारी इनकी धर्म-साधना में सम्मिलित हुए। ब्राह्मण, जैन, बौद्ध सभी धर्मों में उन दिनों तन्त्र-मन्त्र जादू-टोने आदि की प्रधानता हो गई थी। महात्मा बुद्ध की मृत्यु के बाद बौद्ध धर्म कई शाखाओं में परिवर्द्धित हो गया था जिनमें से महायान, हीनयान, वज्रयान, मन्त्रयान और सहजयान आदि मुख्य थे। इन्हीं व्रजयानी और सहजयानी बौद्धों में से ८४ सिद्धों की परम्परा का जन्म हुआ। अधिकांशतया सिद्धों में समाज के निम्न वर्ग से आने वाले सन्यासियों ने वर्णाश्रम धर्म और जाति भेद का अपने साहित्य में विरोध किया। इन्होंने मन्दिर, तीर्थ, उपासना आदि बाह्याचारों का विरोध किया; तथा अन्तर्मुखी साधना को अपनाया जिसका पूर्ण प्रभाव परवर्ती नाथों और निर्गुण सन्तों पर पड़ा। सिद्धों ने जो साहित्य लिखा है उसकी भाषा मूलतः सीधी सादी और सरल है परन्तु अन्तर्मुखी साधना द्वारा अनुभूत अनुभूतियों को चित्रित करने के प्रयास के कारण भाषा को प्रतीक प्रधान होना पड़ा। भावों की अस्पष्टता भाषा में भी झलकने लगी और बाद में दुर्बोधता के कारण सिद्धों की भाषा "साध्य-भाषा" अथवा सन्ध्या की भांति धुंधली कहलाने लगी। अधिकांश सिद्ध कवियों ने फुटकर पदों, दोहों और मुक्तकों की रचना की है अथवा तांत्रिक सिद्धान्तों पर काव्य-ग्रन्थ लिखे हैं। चौरासी सिद्धों की इस परम्परा में सरहपा (काल ७६० ई०) कण्हपा (८४० ई०) लुइपा, दारिकपा आदि कवि हुए। गोरखनाथ के नाथ पन्थ का मूल भी वज्रयानी सिद्धों के साहित्य में परिलक्षित होता है। नाथों ने सिद्धों के अश्लील और बीभत्स साधना-विधानों से अपने को अलग रखा और हठयोग प्रयोग ईश्वर-प्राप्ति के लिये किया।

सिद्धों की लीला भूमि उत्तर-पूर्वी प्रदेशों को छोड़कर नाथों ने अपने पन्थ का प्रचार पंजाब और राजस्थान में अधिक किया और उत्तर-पश्चिम प्रदेशों को अपना प्रभाव क्षेत्र बनाया। नाथ सम्प्रदाय के ६ प्रसिद्ध योगी हुए। इन नाथों ने जो साहित्य लिखा वह भी सिद्ध-साहित्य की भांति आन्तरिक अनुभूतियों से भी सम्बन्धित था, इसलिये आन्तरिक साधना को अभिव्यक्त करने वाली शब्दावली इन्होंने सिद्धों के साहित्य से ही ली। उसका ही अगला विकास निर्गुण सन्तों का रहस्यवादी साहित्य है। नाथों ने भी अधिकतर गीतों, पदों और मुक्तकों की ही रचना की। आदिनाथ, मच्छेन्द्रनाथ, गोरखनाथ चर्पटीनाथ, ज्ञाननाथ (ज्ञानेश्वर) आदि कवि नाथ-सम्प्रदायी साहित्य के रचयिता थे। सिद्धों और नाथों के अतिरिक्त जैन साधुओं द्वारा रचित अपभ्रंश साहित्य भी मिलता है, जो धार्मिक होने के अतिरिक्त साहित्य की दृष्टि से भी उच्चकोटि का है। जैन धर्म ५०० से १००० ई० के लगभग गुजरात, सौराष्ट्र और राजस्थान में लोकप्रिय था। विशेषतया गुजरात के राजपूत राजाओं के राज्यों में प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्रों में रहने वाले व्यापारियों ने इसे अपनाकर जैन साधुओं को अत्याधिक सुविधाएं प्रदान करदी थी। इन जैन साधुओं ने लोक-सुलभता के लिये अपने धार्मिक साहित्य को अपभ्रंश भाषा में लिखा। इन्होंने अपनी कथाओं के द्वारा जैन धर्म के कर्म दर्शन अहिंसा आदि सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। इस प्रयत्न में कई रमणीय और कलात्मक प्रबन्ध काव्यों और नीति उपदेश आदि पर सुन्दर मुक्तकों की रचना की। हेमचन्द्रसूरि सोमप्रभ, स्वयंभू, पुष्पदन्त, हरिभद्रसूरि आदि ऐसे ही जैन साधु हैं जिन्होंने जैन धर्म के सिद्धान्तों की रक्षा करने के प्रयत्न में साहित्य के भण्डार को अपूर्व रत्नों से भरा, जिसका प्रभाव बाद के हिन्दी साहित्य पर स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है।

वीरगाथा काल और उसके प्रतिनिधि कवि (सं. १००० से १४०० तक)

हिन्दी साहित्य का व्यवस्थित इतिहास उस समय से प्रारम्भ होता है जब राजनैतिक रूप से भारतीय शक्ति विकेंद्रित हो चुकी थी और दिल्ली, कन्नौज, अजमेर, धार और कलिंजर आदि राज्यों में राठौर, चौहान, चालुक्य और चंदेल राज्य स्थापित हो चुके थे। लूट-पाट के लिये होने वाले विदेशी (विशेषतः मुस्लिम) आक्रमणों का आतंक शनैः शनैः राज्य-शक्ति विकेंद्रित होने पर, बढ़ता ही गया और दार्शनिक विचारों और अहिंसा आदि के सिद्धान्तों पर विश्वास रखने वाली जाति बर्बर आक्रमणकारियों

से अधिक दिन अपनी रक्षा नहीं कर सकी। आपसी फूट और वैमनस्य भी पतन का कारण बना। इन राजनैतिक परिस्थितियों में वीर गाथा काल का साहित्य रचा गया। राजपूत राजाओं के दरबारों में राजाश्रित चारण, भाट और कवि, नीति शृंगार वीर रस आदि के मुक्तक सुनाया करते थे, अथवा अपने आश्रयदाताओं के पराक्रमपूर्ण कार्यों का वर्णन अतिरंजित शैली में करते थे। इस प्रकार की प्रबन्ध-परम्परा ही 'रासो' नाम से प्रचलित हुई जिसकी प्रधानता के कारण ही इस काल को वीर गाथा काल कहा जाता है। उस समय के प्रबन्ध-काव्यों का विषय किसी राजा के पराक्रम, विजय, शत्रु-कन्या-हरण इत्यादि का अत्युक्ति पूर्ण वर्णन होता था, और गीति-काव्यों का विषय उत्साह पूर्ण भावना और उसकी युद्ध क्षेत्र में अभिव्यक्ति होता था।

ऐसी दशा में काव्य या साहित्य के विभिन्न अंगों की पूर्ति और समृद्धि असम्भव थी। केवल वीर और शृंगार रस ही इन प्रबंध-काव्यों और गीति मुक्तकों में प्रधान थे। इस प्रकार का प्राचीनतम प्रबन्ध-काव्य 'पृथ्वीराज रासो' और गीति-काव्य 'बीसलदेव-रासो' है। चन्द्रबरदाई, विद्यापति, भट्ट केदार, जगनिक, श्रीधर आदि इस काल के प्रमुख कवि हैं तथा बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, खुमान रासो, आल्हा-खंड और 'कीर्ति लता', कीर्तिपताका आदि इस काल की मुख्य रचनाएं हैं।

वीर गाथाओं का काल स्थूल रूप में हमीर तक माना जाता है और उसके बाद भी बदली हुई राजनैतिक परिस्थितियों में पराजित जाति के लिये वीरता के गीत गाना संभव नहीं रहा। मुसलमानों के आक्रमण और राज्य-स्थापन ने हिन्दुओं का ध्यान धर्म-रक्षा की ओर अधिक आकर्षित किया। इस प्रकार समय के साथ विचारों में परिवर्तन हुआ और साहित्य की यह बदली हुई विचार-धारा भक्तिकाल कहलाई।

चंद्रबरदाई

महा कवि चंद्रबरदाई का नाम हिन्दी साहित्य के इतिहास में आरम्भ से बड़ा सम्माननीय चला आ रहा है, परन्तु फिर भी निर्भ्रान्त रूप से निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वास्तव में इस नाम का कोई कवि हुआ भी है। उन के नाम से प्रसिद्ध रचना पृथ्वीराज रासो की वास्तविकता पर विद्वानों के विभिन्न मत मतान्तर होते चले आ रहे हैं। महामहोपाध्याय पं० गौरी शंकर हीराचंद ओझा ने अपनी शोध प्रणाली और तर्क बुद्धि के बल पर पृथ्वीराज रासो तथा उसके कवि चंद्रबरदाई को जाली

या कल्पित प्रमाणित करने का प्रयास किया है ।

'पृथ्वीराज रासो' में संवत् सम्बन्धी, घटना सम्बन्धी और शब्द सम्बन्धी भूलों की प्रचुरता के कारण वास्तव में रासो की प्रमाणिकता विद्वानों के लिये संशय का विषय बनी हुई है । पर जो भी हो 'पृथ्वीराज रासो' जिस रूप में हमारे सामने है, अत्यन्त विशालकाय हिन्दी का प्रथम महा काव्य है । मानव जीवन का कोई अंग ऐसा नहीं जो इस में छूट गया हो । एक एक काव्य वर्णन अनेक २ ढंगों से हुआ है । वास्तव में यह एक वीर रस का काव्य है — पर केवल वीरता नहीं विलास भी है, धर्म ही नहीं काम भी है, अर्थ ही नहीं मुक्ति भी है ।*

इस ग्रन्थ की महिमा के विषय में कहा है —

"काव्य समुद्र कवि चन्द कृत, मुगति समप्पन ज्ञान
राजनीति वोहित सुकल, पार उतारन यान "

इस महाकाव्य के रचयिता 'चन्द्रवरदाई' हिन्दी के प्रथम महा कवि माने जाते हैं । यह दिल्ली के अन्तिम हिन्दू सम्राट महाराज पृथ्वीराज के सामंत और राज कवि प्रसिद्ध हैं । रासो के अनुसार यह भट्ट जाति के जगात नामक गोत्र के थे । इन के पूर्वजों की भूमि पंजाब थी जहां लाहौर में इन का जन्म हुआ । चन्द्रवरदाई महाराज पृथ्वीराज के राज कवि ही नहीं उन के सखा और सामंत भी थे, तथा षट् भाषा, व्याकरण, काव्य, साहित्य, छंद शास्त्र, ज्योतिष, पुराण और नाटक आदि अनेक विद्याओं में पारंगत थे ।०

इन का साहित्यिक जीवन काल पं० रामचन्द्र शुक्ल ने सं. १२२५ से १२४९ तक माना है - जन्म संवत् के विषय में अनेक वाद विवादों के उपरान्त भी कुछ निश्चय नहीं किया जा सका है ।

दीर्घ कालीन साहित्यिक पिष्टपेषण के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि वर्तमान रूप में उपलब्ध 'रासो' की कहां कितनी कविता चन्द की है और कितनी किसी और की; परन्तु यह कहना अनुचित न होगा कि चन्द्र बरदाई ने अपने 'रासो' को सभी प्रकार से रस पूर्ण बनाने का प्रयत्न अवश्य किया होगा और अवश्य ही इस में पृथ्वीराज की कीर्ति के साथ साथ काव्य कौशल भी दरशाया गया होगा ।

---

* हिन्दी कवि चर्चा — चन्द्रवली पांडे पृ १४

० हिन्दी साहित्य का इतिहास - शुक्लजी : पृ. ३८

'पृथ्वीराज रासो' ढाई हजार पृष्ठों का बहुत बड़ा ग्रन्थ है जिस में ६९ सर्ग अथवा अध्याय हैं। प्राचीन काल में प्रचलित कवित्त (छप्पय), दूहा, तोमर, त्रोटक, गाहा और आर्या आदि लगभग सभी छंदों का इस में प्रयोग हुआ हैं। 'रासो' के अनुसार पृथ्वीराज के शहाबुद्दीन गोरी द्वारा बन्दी होकर गजनी ले जाये जाने पर जब चन्दबरदाई भी वहां चला गया तो जल्हण के हाथ में 'रासो' पूर्ण करने को दे गया। "पुस्तक जल्हन हत्थ दै चलि गज्जन नृप काज"

विद्यापति

वीर गाथा काल के प्रमुख कवि विद्यापति अपभ्रंश में "कीर्ति लता" और "कीर्ति पताका" जैसी ऊच्च कोटि की रचना के कारण प्रसिद्धि प्राप्त कर ही चुके थे, पर अपनी पदावली की रचना के कारण साहित्य जगत ने आपको 'मैथिल कोकिल' की उपाधि से भूषित किया। इन्होंने प्रचलित मैथिली भाषा में पदों की रचना की जो अधिकतर शृंगार के हैं और जिन के नायक नायिका राधा-कृष्ण हैं। विद्यापति शैव थे पर इन्होंने पदों की रचना शृंगार काव्य की दृष्टि से की है, भक्त के रूप में नहीं। यही कारण है कि शैव होते हुए भी उन्होंने अपने गीतों में शिव को उतना महत्त्व नहीं दिया जितना कि माधव को।

उनके एक पद में कहा है :—

तातल सैकत वारि बिन्दु सम,
सुत मित रमनि समाज।
तोहे बिसारि मन तोहे समर्पिन,
अब मझु दब कोन काज।
माधव हम परिनाम निरासा,
तुहुँ जग तारन दीन दयामय,
अतए तोहर बिसवासा।

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हीं के पदों के आधार पर अपने इतिहास में लिखा है कि विद्यापति सं० १४६० में तिरहुत के राजा शिवसिंह के यहां वर्तमान थे।

सर जार्ज ग्रियर्सन ने इनके पदों की भाषा मैथिली को मागधी से निकली होने के कारण हिन्दी से अलग माना है पर भाषा की दृष्टि से कुछ प्रत्ययों के आधार पर ही साहित्य सामग्री का विभाग नहीं किया जा सकता। खड़ी बोली बांगड़ू, ब्रज, राजस्थानी, कन्नौजी, बैसवारी और

अवधि आदि भाषाओं में रूपों और प्रत्ययों का परस्पर इतना भेद होते हुए भी सब हिन्दी के अन्तर्गत मानी जाती हैं और उनके बोलने वाले एक दूसरे की बोली समझते हैं। अतः जिस प्रकार हिन्दी साहित्य 'बीसलदेव रासो' पर अपना अधिकार रखता है उसी प्रकार विद्यापति की पदावली पर भी।

इनकी पदावली का वर्णन अत्यन्त कवित्वपूर्ण और मनोहारी है। इन पदों की रचना गीति काव्य के अनुकरण पर हुई प्रतीत होती है। पदों का माधुर्य अद्भुत है।

विद्यापति के विषय में एक विचारणीय बात यह है कि इन्होंने अपनी पदावली में लोक जीवन को लिया है, राज जीवन को नहीं, यही कारण है कि आज भी मिथिला में घर २ उनकी वाणी का समादर होता है। स्त्रियां उसे समय २ पर गा गाकर अपनी विगूढ़ वेदना को जगाती रहती हैं।

'नर नारी के रूप की विभिन्न प्रकृतियों के प्रदर्शन में उन्हें पूर्ण सफलता मिली' यह उनकी पदावली को देख कर निःसंकोच रूप से कहा जा सकता है।

लोगों ने विद्यापति के पदों की शृंगारिक प्रवृत्ति को देख कर उनपर अनेकों लांछन लगाये हैं कि 'वह कामुक थे, विलासी थे और दरबारी थे।' परन्तु यह कल्पनातीत है कि एक विलासी कवि ऐसी पूत रचना कर सकता है। विद्यापति को काव्य कला की कसौटी पर कसने के लिये उनका वह पद उद्धृत करना पर्याप्त होगा जिसके बल से उन्होंने अपने स्वामी राजा शिवसिंह का उद्धार कराया। विद्यापति से कहा गया कि 'यदि सचमुच कवि हो तो एक ऐसी रमणी का वर्णन करो जो नहाती हो पर जिसको तुम देख नहीं रहे हो।' आशुकवि ने तुरन्त कविता करके सुना दी। इससे प्रकट होगा कि विद्यापति काम, कला और रस के पथिक हैं, विषय वासना और भोग विलास के नर नहीं।

कविता:—

कामिनी करए सनाने।
हेरतहि हृदय हनए पंचवाने॥
चिकुर गरऐ जल धारा।
जनि मुख–ससि डर रोअये अन्धारा॥
कुच–जुग चारु चकेवा।

निग्र कुल मिलिग्र ग्रानि कोन देग्रा ॥

ते सङ्का भुज-पासे ।

बांधि धरल उड़ि जाएत ऊकासे ॥

तितल वसन तन लागू ।

मुनिहुत मानस मनमथ जागू ॥

मनई विद्यापति गावैं ।

गुनमति धनि पुनमत जन पावैं ॥

वर्णन कितना कवित्वमय है ? इसके बताने की कोई ग्रावश्यकता नहीं । 'चारु चकेवा' के उड़ने की कल्पना कितनी सटीक ग्रौर ग्रनुपम है ग्रौर चन्द्रमा के डर से ग्रन्धकार का रोना भी कितना सजीव है इसे कोई भी सहृदय समझता है ।

ग्रन्य कवि गण

नाम	काल	रचनाएं
१. खुम्माण	[वि०सं० ८१०–१०००]	खुमान रासो
२. बीसलदेव	[वि० सं० १२१२]	बीसलदेव रासो
३. भट्ठ केदार ग्रौर मधुकर कवि	[सं० १२२४–१२४३]	जयचन्द प्रकाश, जयमयंक जैसे चंद्रिका
४. जगनिक	[सं० १२३०	ग्राल्हा ऊदल के गीतों का संग्रह "ग्राल्हा खण्ड"
५. श्रीधर	[सं० १४५४	रण मलछंद

(ग) भक्ति–काल (संवत् १४०० से १७०० तक)

देश में मुस्लिम शासन प्रतिष्ठित हो जाने से हिन्दु जनता के हृदय में गौरव-गर्व ग्रौर उत्साह के लिये ग्रधिक ग्रवकाश नहीं रहा । राजनैतिक उलट फेर, मन्दिरों ग्रौर मूर्तियों की लूट-पाट, स्त्री-बच्चों की नृशंस हत्यायें ग्रौर ग्रपहरण ग्रादि से हिन्दु जन-समुदाय में उदासी छा जाना स्वाभाविक था । ग्रपने पौरुष से हताश जाति के लिये भगवान की करुणा ग्रौर शक्ति के ध्यान में डूब जाने के ग्रतिरिक्त ग्रौर कोई चारा नहीं था । इस भावना से प्रेरित होकर जो साहित्य रचना हुई उसमें धर्म के भिन्न २ ग्रंगों का निरुपण, जीव ग्रौर ईश्वर का सम्बन्ध एवम् उससे एकाकार होने के विभिन्न साधनों ग्रौर मार्गों की विवेचना की गई । जीव ग्रौर ईश्वर की एकात्मकता के लिये ज्ञान ग्रौर योग के स्थान पर भक्ति ही ग्रब एक मात्र

अवलम्बन बन गया, इसी लिये हिन्दी साहित्य के इस स्वर्ण-युग का नाम भक्ति-काल रखा गया ।

धर्म के साधन पक्ष में—कर्म,ज्ञान तथा उपासना, तीन मुख्य मार्ग अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित रहे है । इनमें एक की प्रधानता समय समय पर होती रही है, पर तीनों का मूल स्त्रोत वेद है । ब्राह्मण काल में कर्म काण्ड की प्रधानता रही, बौद्ध धर्म को मिटा कर वेद सम्मत धर्म की पुनः स्थापना की और उनके समय में उपासना धर्म प्रबल होने लगा कालान्तर में इसी धर्म ने सम्पूर्ण भारत में प्रचार प्राप्त किया ।

धार्मिक क्षेत्र में इस समय तीन प्रवृत्तियां प्रचलित थी । [१] मुसलमानों ने राज्य स्थापित कर लिया था और वे शासन जमाये रखने के लिये जन-सम्पर्क में आने के लिये प्रयत्नशील थे । [२] हिन्दू भी अपने धर्म की एकता, मूल धार्मिक सिद्धान्तों के आधार पर अन्य धर्मों से कर रहे थे । मुसलमानों के धर्म का फल "प्रेम मार्गी भक्ति शाखा" के रूप में प्रकट हुआ और हिन्दुओं के प्रयत्नों का फल "निर्गुण भक्ति शाखा" हुआ । [३] मुस्लिम विरोधी न होते हुए भी अधिकांश हिन्दू ऐक्य की बलि वेदी पर अपने आदर्श पूर्वजों और इष्टदेवों के प्रति अनन्य भावना का बलिदान नहीं करना चाहते थे ।

साकार भक्ति के द्वारा निराश, पीड़ित, पददलित और मृतप्रायः हिन्दू जाति में नव जीवन का संचार करना उनका अभीष्ट था । जो उपदेश श्री रामानुजाचार्य, रामानन्द, मध्वाचार्य और चैतन्य महाप्रभु आदि सन्तों ने दिये उसे सूर और तुलसी की काव्य प्रतिभा ने सुलभ और लोकप्रिय बना दिये ।

उपरोक्त तीन प्रवृत्तियों के फल स्वरूप भक्तिकाल में काव्य त्रिवेणी निम्न धाराओं में प्रवाहित हुई:—[१] प्रेम मार्गी सूफी धारा । [२] निर्गुण भक्ति धारा । [३] सगुण भक्ति धारा ।

[१] सूफी प्रेमवाद के पोषक जायसी, कुतबन, मझन आदि मुसलमान फकीरों ने अपने सूफी सिद्धान्तों में भारतीय अद्वैतवाद का सम्मिश्रण कर, जन-सुगम भाषा में प्रेम की भारतीय लोक कथाओं को लेकर प्रबन्ध काव्य लिखे । पद्मावत, मृगावती आदि ऐसे ही सूफी फ़कीरों द्वारा रचित ऐसे ही प्रबन्ध काव्य हैं जो अवधी में लिखे गये हैं ।

[२] निर्गुण भक्ति धारा के प्रवर्तक कबीर थे । उनके बाद इस निर्गुण भक्ति को रैदास, चरणदास, मलूकदास, सुन्दरदास आदि सन्तों ने

बनाये रक्खा जो आज भी किसी न किसी रूप में जीवित है।

[३] सगुण ब्रह्मोपासना के अन्तर्गत पंचोपासना, ईश्वर के लीला विग्रह की उपासना, चतुर्व्यूहोपासना, ऋषिदेवता, पितृगण की उपासना तथा क्षुद्रदेव और प्रेतादि की उपासना सम्मिलित हुई। पंचोपासना में सगुण ईश्वर के पांच रूपों—शिव, शक्ति, विष्णु, सूर्य और गणेश की उपासना रही। तत्त्व ज्ञान की दृष्टि से भारतवर्ष में अनेक आस्तिक मत प्रचलित रहे हैं, जिनमें मुख्य ये हैं:—

१. अद्वैतवाद शङ्करवेदान्त [श्री सम्प्रदाय १०३७–११३७] २. विशिष्टाद्वैतवाद, [श्री माधव सम्प्रदाय १२७६] ३. रामानुजाचार्य का द्वैताद्वैतवाद। ४. निम्बार्काचार्य का निम्बार्क सम्प्रदाय ११६२। ५. अचिन्त्यशुद्धाद्वैतावादी श्री विष्णु स्वामी का रुद्र सम्प्रदाय। १

इन आचार्यों के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर १४ वीं से १६ वीं शताब्दी के अन्त तक जो प्रथक सम्प्रदाय बने उनमें निम्नलिखित मुख्य हैं:—

१. श्री रामानन्दजी का रामानन्दी सम्प्रदाय।
३. श्री चैतन्य महाप्रभु का चैतन्य सम्प्रदाय [गौड़ीय सम्प्रदाय और अचिन्त्य भेदाभेद वादी सम्प्रदाय]
४. श्री वल्लभाचार्यजी का पुष्टि मार्ग [शुद्धाद्वैतवादी]
४. राधावल्लभी सम्प्रदाय।
५. हरिदासी सम्प्रदाय।

सगुण भक्ति धारा राम भक्ति और कृष्ण भक्ति धाराओं में विभक्त हो गई जिसका प्रतिनिधित्व हिन्दी साहित्य में तुलसी और सूर करते हैं।

श्री रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैती भक्ति मार्ग को रामानन्द उत्तर भारत में लाये। उन्हीं के सगुण भक्ति और निर्गुण भक्ति के उपदेशों को मानने वाले शिष्यों की परम्परा में तुलसी और कबीर आते हैं। तुलसी के सगुण राम और कबीर के निर्गुण राम में मूलतः विशेष अन्तर नहीं है।

धार्मिक सुधार की भावना से बौद्ध मत और जैन मत की भांति वैष्णव मत का उद्भव ईसा के ४०० वर्ष पूर्व हो गया था। (१) इसका परिवर्द्धित रूप भागवत् धर्म है। नारायण की भावना के मिश्रण से यह धर्म और भी विस्तृत हो गया और ईसा के कुछ वर्षों पश्चात् आभीरों ने इसमें कृष्ण की भावना सम्मिलित कर दी। तत्पश्चात् आठवीं शताब्दी के लगभग शङ्कर का अद्वैतवाद आविर्भूत हुआ; रामानुजाचाचार्य ने जिसे

१ अष्ट छाप और वल्लभ सम्प्रदाय भाग १ पृ० ४०]

विशिष्टाद्वैत का रूप दिया, और निम्बार्क ने कृष्ण रूप की भावना पर बल देकर राधा के स्वरूप का भी उसमें सम्मिश्रण कर दिया। १३ वीं शताब्दी में मध्वाचार्य ने इस विचार को और अधिक पनपा कर विष्णु भाव को अत्यधिक महत्व प्रदान किया। रामानन्द ने विष्णु भगवान के राम रूप का प्रचार करके भक्ति का स्रोत बहाया। इधर वल्लभाचार्य ने राधा और कृष्ण के प्रेम मय रूप की झांकी प्रस्तुत की तथा चैतन्य महा प्रभु ने बाल कृष्ण और राधा के स्वरूप का समन्वय करके वैष्णव धर्म में प्रेम मार्ग को पल्लवित किया।

इस प्रकार रामानुजाचार्य्य, मध्वाचार्य्य, विष्णु स्वामी और निम्बार्क नामक महान् आचार्य्यों ने वैष्णव धर्म का प्रचार किया और कालान्तर में रामानन्द, चैतन्य महा प्रभु और वल्लभाचार्य्य ने इसे व्यापकता दी। प्रत्येक आचार्य्य ने इस धर्म को समझाने के लिये विभिन्न ढङ्गों से विष्णु के रूप की विवेचना की [१] रामानुजाचार्य्य ने विशिष्टाद्वैत भाव से। [२] मध्वाचार्य्य ने द्वैत भाव से। [३] विष्णु स्वामी ने शुद्धाद्वैत रूप में और निम्बार्क ने द्वैताद्वैत सिद्धान्त की स्थापना की, परन्तु धर्म की साधारण बातों से चारों आचार्य्य सहमत हैं, जैसे—१. भक्ति के लिये जाति का बन्धन नहीं होना चाहिये। २. ब्रह्म का निरूपण अद्वैतवाद से किसी रूप में भिन्न है। ३. गुरु को ब्रह्म का प्रतिनिधि मानना। ४. भक्ति का चरम लक्ष्य स्वर्ग प्राप्ति है।

रामानुज का विशिष्टाद्वैतः—रामानुज का जन्म मद्रास से कुछ दूरी पर श्री परम बिट्टूर स्थान पर सं० १०७४ में हुआ। इन्होंने शङ्कर मतानुयायी यादवप्रकाश से शिक्षा प्राप्त की। पर अन्त में यह उनके सिद्धांतों से सहमत नहीं हुए और शंकर द्वारा आत्मा की मिथ्या सत्ता के विरुद्ध सिद्धित्रय में आत्मा की सत्य सत्ता घोषित की। शङ्कर के मायावाद या अद्वैतवाद का खण्डन करके उन्होंने जीव की स्थिति में सत्य की भावना उपस्थित की। उनका कहना है कि यद्यपि ब्रह्म और चित् (जीव) एक ही तत्व से निर्मित (अद्वैत) है, तथापि उनका अन्तर मायाजनित नहीं है। इसी विशेषता के कारण रामानुज का सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत कहलाता है। उनके मत में जीव और ब्रह्म समान नहीं हो सकते—ब्रह्म अनन्त ज्योति है, पवित्र विश्वात्मा है—पर जीव ऐसा नहीं है। वह अनन्त सत्य है और ज्ञान कोष है तो झूठी माया का निर्माता और अविद्या का स्रष्टा कैसे हो सकता है।

रामानुजाचार्य्य के अनुसार साधक एक बार में ही अन्तर्यामी को हृदयंगम नहीं कर सकता, उसे क्रमशः चार परिस्थितियों—मूर्ति, अंशावतार, पूर्णावतार और सूक्ष्म—का ज्ञान प्राप्त करने पश्चात् हृदयाकाश में स्थित ब्रह्म की अनुभूति होती है तब वह वैकुण्ठ प्राप्त करके परब्रह्म के अनन्त आनन्द का उपभोग करता है। यह अभिज्ञान मिलन(Conscious Assimilation) विशिष्टाद्वैत की विशेषता है । १

मध्वाचार्य्य का द्वैतवाद:—आचार्य मध्व का जन्म सं० १३१४ में मङ्गलोर से ६० मील उत्तर की ओर उदीपी स्थान में हुआ । यह द्वैतवाद के प्रतिपादक थे, इनका मत था कि एक विष्णु ही अविनाशी ब्रह्म है, जीव ब्रह्म से ही उत्पन्न अवश्य होता है पर वह परतन्त्र है । दोनों में स्वामी-सेवक अथवा राजा-प्रजा का सम्बन्ध माना है, ब्रह्म आराधना है जीव आराधक, फिर दोनों में समानता कैसे सम्भव हो सकती है । उनका कहना है कि शरीर और शक्ति में जो अन्तर है, वही जीव और ब्रह्म में है । एक बार ब्रह्म से उत्पन्न होने पर जीव सदैव के लिये स्वतंत्र सत्ता है । जिस प्रकार कारण से कार्य्य की उत्पत्ति होने पर भी कार्य्य कारण नहीं, न कारण ही कार्य्य है, उसी प्रकार ब्रह्म से जीव की उत्पत्ति होते हुए भी जीव ब्रह्म नहीं हो सकता न ब्रह्म जीव है ।

मध्वाचार्य ने ब्रह्मा, शिव तथा अन्य देवताओं को भी नश्वर माना है । २ कृष्ण ही ब्रह्म हैं, उनकी भक्ति ही ब्रह्म प्राप्ति का एक मात्र साधन है, इन्हें राधा भी मान्य नहीं है । इन्होंने अपने सिद्धान्त भागवतपुराण से लिये और यह अपने सम्प्रदाय में वायु के अवतार माने जाते हैं । उनके दो प्रधान ग्रन्थ वेदान्त सूत्र पर भाष्य और अनुभाष्य हैं ।

विष्णु स्वामी का शुद्धाद्वैत सिद्धान्त:—विष्णु स्वामी भी सम्भवतया दक्षिण भारत के निवासी थे, उन का समय लगभग सं.१३७७ माना जाता है । यह यद्यपि मध्वाचार्य्य के मतानुयायी थे पर इन्होंने अद्वैतवाद को माया से रहित मान कर शुद्धाद्वैत का प्रतिपादन किया । बाद में महा

---

१ हिं० सा० का आलो० इति प्र० १८४, १८५, डा० रामकुमार वर्मा ।

प्रभु वल्लभाचार्य ने इस मत का अनुकरण किया। उस सम्प्रदाय में कृष्ण को आराध्य मानने के साथ साथ राधा को भी स्थान मिला है। विष्णु स्वामी ने गीता, वेदान्त सूत्र और भागवत् पुराण पर भाष्य लिखे।

निम्बार्क का द्वैताद्वैत सिद्धान्तः—१२ वी शताब्दी में निम्बार्क स्वामी का आविर्भाव हुआ—यह सूर्य के अवतार माने जाते है। यह तैलगू प्रदेश से आकर वृन्दाबन में बस गये थे। इनके विषय में जन श्रुति है कि इन्हें सूर्यास्त से पूर्व किसी सन्त को भोजन देना था, तब इन्होंने सूर्य की गति रोक कर उसे नीम के वृक्ष की आड़ में कुछ काल के लिये छिपा दिया था। ये रामानुज से प्रभावित थे, परन्तु इनका सम्प्रदाय द्वैताद्वैत के नाम से विख्यात हुआ और कृष्ण के साथ राधा की महानता इस सम्प्रदाय की विशेषता है। इनका मत है कि कृष्ण परब्रह्म हैं, उन्हीं से राधा और गोपियों का आविर्भाव हुआ—इस लिये राधा-कृष्ण की उपासना ही प्रधान है। कहते हैं ब्रह्म से भिन्न होते हुए भी जीव उसमें अपना अस्तित्व खो देता है फिर उसकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रह जाती। निम्बार्क स्मार्त नहीं हैं, इस लिये राधा-कृष्ण के अतिरिक्त अन्य देवी-देवताओं को नहीं मानते। वेदान्त सूत्र पर भाष्य वेदान्त, परिजात सौरभ और दशश्लोकी इसके प्रधान ग्रन्थ हैं।

इन चारों आचार्यों के चार सिद्धान्तों–विशिष्टाद्वैत, द्वैत, शुद्धाद्वैत और द्वैताद्वैत के फल स्वरूप उत्तर भारत में चार सम्प्रदाय प्रचलित हो गये, जो निम्नलिखित है :–

१. श्री सम्प्रदाय। २. ब्रह्म सम्प्रदाय। ३. रुद्र सम्प्रदाय। ४. सनकादि सम्प्रदाय।

श्रीसम्प्रदाय के अनुयायी रामानुजी वैष्णव थे, ब्रह्म सम्प्रदाय के माधव वैष्णव, रुद्र सम्प्रदाय के विष्णु स्वामी मत के और सनकादि सम्प्रदाय के अनुयायी निम्बार्क मत के थे।

पीछे लिखे अनुसार रामानन्द, चैतन्य महाप्रभु और वल्लभाचार्य्य ने इन चारों सम्प्रदायों को अत्यधिक व्यापकता प्रदान की।

रामानन्दजी का रामानन्दी सम्प्रदायः— १४ वीं शताब्दी

आचार्य्य रामानन्द ने रामानुजाचार्य्य के श्री सम्प्रदाय को अत्यन्त व्यापक और लोक प्रिय रूप दिया। रामानन्द ने काशी में विद्याभ्यास किया था, इन के गुरु राघवानन्द ने इनकी प्रतिभा के फल स्वरूप अपना

आचार्य पद प्रदान किया । समस्त भारत में भ्रमण कर के रामानन्द ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया । इन्होंने विष्णु के स्थान पर राम की भक्ति पर बल दिया और रामानुज के कर्म काण्ड की उपेक्षा की । भक्ति क्षेत्र में जाति भेद को हटाने तथा संस्कृत के स्थान पर बोलचाल की भाषा में धार्मिक सिद्धान्तों के प्रचार से इन का मत अत्यन्त लोक प्रिय बन गया । राम सीता की मर्य्यादा पूर्ण भक्ति के प्रचार से उत्तर भारत में वैष्णव धर्म की नींव पूर्णतः जम गई ।

चैतन्य महाप्रभु का चैतन्य सम्प्रदाय (अचिन्त्य भेदाभेद वादी) — चैतन्य महाप्रभु का जन्म सं० १५४२ में बंगाल के नदिया नामक स्थान में हुआ – इन का वास्तविक नाम विश्वम्भर मिश्र था । प्रारम्भ से ही न्याय और व्याकरण में इनकी प्रतिभा चमत्कृत होती दृष्टि आती थी - २२ वर्ष की अवस्था में यह मधवाचार्य के ब्रह्म सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये, किन्तु इन्हें द्वैतवाद रुच्यानुकूल प्रतीत नहीं हुआ अतः रुद्र और सनकादि सम्प्रदायों से भी प्रभावित हुए । इनके मधवाचार्य के द्वैतवाद की अपेक्षा निम्बार्क के द्वैताद्वैत को अधिक महत्व देने के फल स्वरूप राधा को भक्ति में प्रमुख स्थान दिया और उन की आराधना में गान और नृत्य के साथ संकीर्तन भी करते थे ।

इन्होंने अपनी भक्ति का दृष्टि कोण अधिकतर भागवत पुराण से लिया और जगन्नाथ पुरी जाकर अपने सिद्धान्तों को लोक प्रिय रूप में प्रचार किया । राधा और कृष्ण को प्रधानता देकर उन्हीं के चरित्रों में रमकर आत्मा का परिष्कार करना इनका सिद्धान्त था जिस के लिये पांच साधन बताए :—

मनन, सेवा, मैत्री, स्नेह और दाम्पत्य । इस प्रकार इन के द्वारा वैष्णव धर्म का अत्यन्त आकर्षक स्वरूप पूर्व बंगाल में प्रस्तुत किया गया ।

वल्लभाचार्य्य का पुष्टि मार्ग (शुद्धाद्वैत वादी) :– वल्लभाचार्य्य विष्णु स्वामी मतावलम्बी भक्त के पुत्र थे और चैतन्य के समकालीन । इन का जन्म सं १५३६ में हुआ था । संस्कृत के अध्ययन और अनेक विद्वानों को वादविवाद में पराजित करने के कारण अल्पावस्था में ही इन्हें यश प्राप्ति होने लगी और विजयनगर के राजा कृष्णदेव की सभा में ये महाप्रभु घोषित किये गये ।

विष्णु स्वामी के सिद्धान्तों को मानते हुए भी वल्लभाचार्य्य ने चैतन्य की भांति निम्बार्क के मत का अवलम्बन किया । इन का सिद्धान्त शुद्धाद्वैत है – शंकर की माया के लिये इस में स्थान नहीं है । शंकर के अद्वैत

में भक्ति के लिये कोई स्थान नहीं था – इस शुद्धाद्वैत में माया के बहिष्कार के साथ भक्ति के लिये विशेष विधान है ।

वल्लभाचार्य्य के मतानुसार सत् चित् और आनन्द त्रिगुणात्मक ब्रह्म अपने गुणों के आविर्भाव और तिरोभाव से इस संसार में प्रकट हुआ । प्रकृति और जीव अग्नि से चिनगारी की भांति उससे प्रकट हुए । यह रचनात्मक कार्य्य ब्रह्म केवल अपनी शक्ति और गुणों के फल स्वरूप करता है - माया से नहीं ।

जिस भक्ति से ब्रह्म की अनुभूति होती है वह भगवान कृष्ण का ही अनुग्रह स्वरूप है – इस अनुग्रह को वल्लभाचार्य ने पुष्टि कहा है इस लिये इनका मार्ग पुष्टि मार्ग कहलाता है । उन्हों ने पुष्टि को ही अपने सम्प्रदाय का चरम लक्ष्य माना है । तदनुसार जीव के राधा कृष्ण के साथ गोलोक में निवास कर जाने पर ही उसे सार्थक समझा जाता है । वल्लभाचार्य्य के सर्व प्रधान शिष्य सूरदास थे, उन्होंने कृष्ण भक्ति में लवलीन होकर सूरसागर की रचना की जिसमें इस भक्ति को आसक्ति नाम देकर ११ रूपों में वर्णन किया है :– १. गुण माहात्म्यासक्ति २. रूपासक्ति ३. पूजासक्ति ४. स्मरणशक्ति ५. दास्यासक्ति ६. सरका सक्ति ७. कान्ता सक्ति ८. वात्सल्यासक्ति ९. आत्म निवेदना सक्ति १०. तन्मयता सक्ति और ११. परमविरहा सक्ति ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैष्णव धर्म के चार प्रधान आचार्य्यों में से रामानुजाचार्य ने केवल विष्णु की भक्ति और ज्ञान पर बल दिया, उन के अनुयायी रामानन्द ने विष्णु का रूपान्तर करके राम की भक्ति का प्रचार किया और शेष तीन आचार्यों ने विष्णु के रूप में श्री कृष्ण की भक्ति का प्रचार किया । इन के अनुयायी चैतन्य और वल्लभाचार्य्य ने भी कृष्ण भक्ति का प्रचार किया – परन्तु रामानुज की और शेष तीन आचार्य्यों की भक्ति में भी कुछ भेद हैं । रामानुज अपने सिद्धान्तों में भक्ति और ज्ञान का समुच्चय मानते हैं । अन्य आचार्य्य केवल आत्म समर्पणमय भक्ति के पक्ष में है ।

रामानुज की भक्ति श्वेताश्वतर उपनिषद् से ली गई प्रतीत होती है[१] जिसका रूप गीता में भली प्रकार स्पष्ट हो गया है और फिर पुराणों

---

१. आउट लाइन ऑफ रिलिजियस हिस्ट्री ऑफ इण्डिया
जे. एन. फरकुहर पृ. २४३.

और तन्त्रों आदि में भी इस भक्ति का शास्त्रीय विवेचन मिलता है। अन्य तीन आचार्यों की भक्ति भागवत पुराण से ली गई है जिस में ज्ञान की अपेक्षा प्रेम का अधिक महत्त्व है – आत्म चिन्तन की अपेक्षा श्रवण, कीर्तन, स्मरण, अर्चन और वन्दन द्वारा आत्म समर्पण की अधिक आवश्यकता है।

राधा वल्लभी सम्प्रदाय :– राधा वल्लभी नामक एक नए सम्प्रदाय का सूत्रपात श्रीहित हरिवंश द्वारा हुआ। इस सम्प्रदाय को चलाने के कारण हित हरिवंश का स्थान विशेष महत्त्व रखता है – इन के पदों में सरसता और सिद्धान्तों में मौलिकता थी। पहले यह मध्वाचार्य्य के द्वैत सम्प्रदाय के समर्थक थे। पीछे इन्होंने अपना स्वतंत्र हित सम्प्रदाय चलाया जो राधा वल्लभी सम्प्रदाय कहलाया। कहा जाता है कि उन्हें राधिका ने स्वप्न में दर्शन देकर मंत्र दिया था तभी से राधा की उपासना को प्रधानता देने लगे[1]। इस सम्प्रदाय में राधा का स्थान कृष्ण से ऊँचा है, और भक्तगण राधा का पूजन करके ही कृष्ण का अनुग्रह प्राप्त करते हैं।

हित हरिवंश का आविर्भाव काल सं. १६२२ माना जाता है। इन का ब्रज भाषा पर पूर्ण अधिकार था और संस्कृत के भी पंडित थे। हित चौरासी नामक ग्रन्थ इन की प्रमुख रचना है जिस में ८४ सरस पदों का संग्रह है। राधा की शोभा वर्णन में माधुर्य्य और सरसता उच्च कोटि की बन पड़ी है। 'राधा सुधानिधि' ग्रन्थ उनकी संस्कृत रचना है। इन में सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का कोई शास्त्रीय विवेचन नहीं है।

ओरछा नरेश के राजगुरु श्री हरिराम व्यास इन से दीक्षित हुए जो ४५ वर्ष की अवस्था में ओरछा छोड़ कर वृन्दावन चले गये और वहां वल्लभी सम्प्रदाय का प्रचार किया। बाद में उन्होंने भी हरि व्यासी नामक एक और पन्थ की स्थापना की,[2] इस सम्प्रदाय के सिद्धान्त चैतन्य सम्प्रदाय से बहुत मिलते हैं। स्वामी हरिदास के पदों का कीर्तन इस सम्प्रदाय का प्रधान आधार है।

वल्लभ सम्प्रदाय ने राधा को महत्त्व पूर्ण पद दिया, किन्तु राधा-वल्लभी सम्प्रदाय ने राधा को सर्व श्रेष्ठ पद प्रदान किया।

सं. १६०० से १६१७. स्वामी हरिदास जी ने 'टट्टी वाली' सम्प्रदाय

---

१. हि. सा. का आ. इति० – डा. रामकुमार वर्मा पृ. ७१५
२. „ „ „ „ पृ. ७१८

की स्थापना की और यह सम्प्रदाय उन्हीं के नाम पर हरिदास सम्प्रदाय कहलाने लगा। स्वामी हरिदास अष्टछाप कवियों के समकालीन भक्त और धर्म प्रचारक थे, इन्हों ने राधा कृष्ण की युगल उपासना का सखी भाव से प्रचार किया। ये राधा कृष्ण के आनन्द विहार का अवलोकन सखी भाव से ही करके युगल केलि के रस को लूटा करते थे। गान विद्या में हरिदास गन्धर्व थे और अपने गान से सखी रूप में सेवा करते हुए श्याम और श्यामा को तुष्ट किया करते थे। अकबर के दरबार का प्रसिद्ध गवैया तानसेन इन्हीं का शिष्य था।* अकबर भी इनकी भक्ति, संगीत शास्त्र तथा कला के गुणों की प्रशंसा सुन कर हरिदास जी से मिलने गया था।

स्वामी हरिदास जी तथा उन के सम्प्रदाय के अन्य आचार्यों ने ब्रज भाषा में ही रचना की जो भक्ति भाव की द्योतक होने के साथ २ काव्य गुण भी रखती है। हरिदास द्वारा रचित ग्रन्थ हैं 'साधारण सिद्धान्त, और 'रस के पद' 'केलि माला' और 'भरथरी वैराग्य' और 'हरिदासजू'। हरिदास जो प्रथम वृन्दावन में रहे और फिर निधुवन में। वृन्दावन में उन के ही समय का बना हुआ इस सम्प्रदाय का बिहारी जी का मन्दिर अति प्रसिद्ध है। इस सम्प्रदाय के सिद्धान्त चैतन्य सम्प्रदाय से बहुत मिलते है, स्वामी हरिदास के पदों का कीर्तन इस सम्प्रदाय का प्रधान आधार है।

सखी सम्प्रदाय :— तुलसीदास ने भक्ति को अपने पूर्ण रूप में श्रद्धा-प्रेम समन्वित रूप में, सब के समक्ष उपस्थित करके सदाचार को उसका नित्य लक्षण निर्धारित किया था। परन्तु कालान्तर में कृष्ण भक्ति की भांति राम भक्ति भी शृंगारी भावनाओं में लिपट कर विकृत रूप धारण करने लगी। राम भक्ति में इस शृंगारी भावना के प्रवर्तक हुए राम चरित मानस के प्रसिद्ध टीकाकार राम चरणदास। इन्होंने भगवत्प्रेम को पति पत्नी भाव में मान कर सखी भाव की उपासना चलाई और अपनी शाखा का नाम 'स्वसुखी' शाखा रक्खा। इस शाखा में भक्त को स्त्री वेश धारण करके राम रूप पति 'लाल साहब' से मिलने के लिये सीता की सपत्नी रूप में चित्रित किया गया है। राम चरणदास ने अपने मत की पुष्टि में लोमश संहिता, हनुमत्संहिता, भ्रमर रामायण, भुशुण्डी रामायण,

---

* अष्ट छाप और वल्लभ सम्प्रदाय — डा. दीनदयाल गुप्त पृ. ६८

कोशल खंड और राम नवरत्न आदि अनेक ग्रन्थों का प्रचार किया।*

राम चरणदास की इस शृंगारी उपासना में चिरान छपरा के जीवाराम जी ने और हेर फेर करके पत्नी भाव के स्थान पर सखी भाव कर दिया और उन्होंने अपनी शाखा का नाम तत्सुखी शाखा रक्खा। इस सखी भाव की उपासना का प्रचार अयोध्या के युगलानन्दशरण ने किया। चित्रकूट की भावना वृन्दावन के रूप में हुई और अयोध्या में भी इस पंथ का खूब प्रचार हुआ। प्रति वर्ष चैत्र कृष्णा नवमी (रामनवमी) को इस पंथ के लोग उत्सव मनाते हैं। ये सीता राम को युगल सरकार कह कर सम्बोधित करते हैं।

इस मत के प्रचार निमित्त कृष्ण निवास पदावली और श्री रामावतार भजन तरंगिणी आदि ग्रन्थ रचे गये।

वल्लभ सम्प्रदाय में माना जाता है कि मधुर भाव से भक्ति करने वाले भक्त सखा रूप होते हैं। सर्वानन्द की सिद्ध शक्ति स्वरूपा राधा अथवा चन्द्रावली सम्पूर्ण अन्य शक्ति स्वरूपा गोपियों में स्वामिनी हैं। इस सम्प्रदाय की आठ मुख्य सखियां मानी गई हैं और आठ ही मुख्य सखा। इन अष्ठ सखा और अष्ट सखियों के अलग २ यूथ भी हैं जिनमें सैकड़ों सखा और सखियां हैं। अष्ट छाप के भक्त कवि इन अष्ट सखा और अष्ठ सखियों के अवतार माने जाते हैं। कृष्ण की गोचारण लीला में ये भक्त सखा रूप हैं और उनकी शृंगारिक कुञ्जलीला में सखी रूप। १

भारतवर्ष के विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों की पृथकता, तत्वज्ञान, ब्रह्म, जीव और जगत सम्बन्धी विचार वैषम्य तथा साधना और आचार क्रियाओं की विभिन्न प्रणाली के कारण रही है। कुछ सम्प्रदाय ऐसे भी हैं जो तात्त्विक सिद्धान्तों की दृष्टि से तो एक मत हैं परन्तु केवल साधन और आचार क्रिया संबंधी पृथकता रखते हैं। २

सगुण भक्ति मार्ग की दो प्रधान शाखाएं राम भक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा समस्त देश में व्यापक होकर आज सैकड़ों वर्ष पश्चात भी अपने प्रतिनिधि महाकवियों तुलसी और सूर को अमर बनाए हुए हैं।

वल्लभ संप्रदाय के जन्म और विकास ने सूर, नन्ददास, चतुर्भुजदास छीतस्वामी आदि प्रतिभाओं के साहित्य को जन्म दिया और समस्त उत्तर

---

१ हि. सा. का इतिहास – पं० रामचंद्र शुक्ल पृ. १४३

२ अष्ट छाप वल्लभ सम्प्रदाय भाग १

भारत में व्याप्त हो गई। कृष्ण लीला पर लिखे सूर के डेढ़ लाख पद सूर सागर में संग्रहीत हैं जो आज भी भारतीय जनता को कृष्ण भक्ति में अवगाहन करा कर हृदय में आनन्द का प्रसार करते हैं। मीरां के भक्ति साहित्य पर भी वल्लभ सम्प्रदाय का वैष्णव प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। आगे चलकर कृष्ण भक्ति में विशेषतः कृष्ण का राधा आदि गोपियों से प्रेम, मिलन आदि के प्रतीकमय स्वरूप को भुला कर रीति-काल के कवियों ने अपने शृंगार साहित्य का उन्हें आलम्बन और आश्रय बना लिया। लौकिक शृंगार के वासना प्रधान स्वरूप को अधिक से अधिक उद्दीपक बना कर अपने आश्रय दाता राजा की काम वृत्ति भड़काना रीति काल के कवियों का प्रधान ध्येय हो गया।

भक्ति काल के युग प्रतीक कवियों के अतिरिक्त 'मीराबाई' 'रसखान' 'सेनापति' दादू और नानक आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

सन्त कबीर

भक्ति काल में निर्गुण पंथ की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि संत कबीर थे, जिन्होंने जुलाहा परिवार में लालन पालन होते हुए भी हिन्दू धर्म तथा उसकी पौराणिक कथाओं का प्रचुर ज्ञान प्राप्त कर लिया था, जिसके बल पर अपनी असाधारण प्रतिभा के योग से इन्होंने निर्गुण ब्रह्म की उपासना का सुन्दर स्वरूप चित्रित किया है।

आपका जन्म काशी में सं० १४५६ वि० में हुआ। नीरू और जुलाहा दम्पति ने इन्हें पाला अतः इनके संस्कार यवनों के अनुसार हुए। पर किसी प्रकार कबीरजी स्वामी रामानन्द के शिष्य बन गये और साधु सत्संग करने लगे। कबीर अधिक पढ़े लिखे नहीं थे, परन्तु आपके शील तथा सदाचार की वार्ताएँ अत्ययंत मनोहारी हैं। आपकी स्त्री अत्यंत सती साध्वी महिला थी और पुत्र कमाल भी एक भक्त हुआ, पर उसके सिद्धान्त पिता के धार्मिक सिद्धान्तों से भिन्न थे।

कबीर की मृत्यु सं० १५५८ में मगहर में हुई। उनके विषय में

---

१. अष्ट छाप और वल्लभ सम्प्रदाय भाग २ (डा० दीनदयाल गुप्त पृ० ५०६)

२. अष्ट छाप वल्लभ सम्प्रदाय भाग १ प्र० ३६ (डा० दीनदयाल गुप्त)।

मनोरंजक बात यह है कि हिन्दु और मुसलमान दोनों धर्मावलम्बी उनके शिष्य थे, जब मृत्यु के समय दोनों में झगड़ा होने लगा तो शव अन्तर्ध्यान हो गया और चादर खोल कर देखा तो केवल पुष्प दृष्टि आये, जो आधे २ बांटकर हिंदुओं ने जलाए और मुसलमानों ने दफन किये।

कबीर का आविर्भाव ऐसे समय में हुआ जब कि देश की स्थिति को सुधारने के लिये हिन्दू और मुसलमानों का सामंजस्य आवश्यक था। परिस्थितियोंवश दोनों ओर से मिलने की प्रवृत्ति चालू थी। उस प्रवृत्ति को प्रदीप्त करने के लिये 'ईश्वर' और 'अल्ला' की एकता स्थापित करके कबीर ने प्रशंसनीय कार्य किया। हिन्दु मुस्लिम द्वेष भाव को कम करके दोनों हृदयों को निकट लाने वालों में कबीर का नाम अग्रगण्य है। जिस प्रकार मुसलानों के आचार विचारों पर उन्होंने शुद्ध भाव से कटाक्ष किये उसी प्रकार प्राचीन रूढ़ियों से जकड़े हिन्दू समाज के विचारों की संकीर्णता पर व्यंगबाण कसे। इस प्रकार निष्पक्ष आलोचना पूर्ण स्पष्ट वाणी से कबीर दोनों समाजों में लोकप्रिय बन गये और दोनों ने ही इनसे शिक्षा ग्रहण की—इस दृष्टि से भक्ति काल के इस युग में इनका अत्यधिक महत्व है।

शैली और विचार:—कबीर रहस्यवादी कवि थे, उन्होंने आत्मा और परमात्मा की एक रूपता पर अत्यन्त बल दिया है ईश्वर को पति के रूप में देखा है। प्रेम की तल्लीनता और मस्ती का पूर्ण आभास उनके पदों में मिलता है। कबीर के रहस्यवाद का स्वरूप है:—

> लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
> लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

अथवा

> गागर बिच सागर अरु सागर बिच गागर ज्यों।

इस प्रकार उन्होंने हिन्दुओं के अद्वैतवाद को माना है पर उसके प्रत्येक अङ्ग से सहमत नहीं हैं। उनकी कविता दार्शनिकता से ओतप्रोत है। स्थान २ पर संसार की असारता बता २ कर और माया को 'ठगनी' कह २ कर उन्होंने मानव जीवन की क्षण भंगुरता पर प्रकाश डाला है:—

ठगनी क्या नैना चमकावै, कबिरा तेरे हाथ न आवै। आदि उक्तियां अनेकों हैं। उनका कहना है कि माया जनित अहङ्कार को

लेकर ही जीव कामनाओं और वासनाओं में भटकता है। ज्ञान द्वारा माया का आवरण हट जाने से उसे संसार क्षणभंगुर और ब्रह्म सत्य दिखाई देने लगता है। पर माया का छोड़ना सरल नहीं।

"मीठी मीठी माया तजी न जाई।"

इसका उपाय बताया है भक्ति। भक्ति को ज्ञान से भी ऊपर श्रेय देकर मुक्ति की नसैनी कहा है और भक्ति में नाम स्मरण मुख्य है।

कबीर की उलटवासियों को समझने में कठिनाई अवश्य होती है पर क्लिष्ठ कल्पना होते हुए भी उनके पद मन को भाने वाले हैं।

कबीर उपदेशक के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। नीति, धर्म और सदाचार संबंधी अनेक पद बड़े प्रभावशाली हैं—सत्संग का महत्व दया-धर्म, प्रेम, विनय और विवेक आदि पर सुन्दर कविता की है परन्तु उनकी उक्तियां अधिकतर व्यंगात्मक और उपालम्भ पूर्ण होने के कारण नीरस भी लगती हैं।

हिन्दुओं के कर्म काण्ड, मूर्ति पूजा और अवतारवाद आदि का कबीर ने विरोध किया है, जैसे:—

"माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माँहि।
मनुवा तो चहुँ दिस फिरै, यह तो सुमिरन नाँहि॥"

और

"पाथर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहाड़।"

कबीर की कविता में प्राणायाम और यौगिक क्रियाओं का भी समावेश है। उत्प्रेक्षा, रूपक और अन्योक्तियों द्वारा उन्होंने सुषुम्ना, इंगला पिंगला ऐवम् अनहद शब्द और षटदल कमल इत्यादि अनेक योग संबंधी बातों का उल्लेख किया है।

कबीर अत्यंत भावुक संत कवि थे, उनकी कविता, कल्पना और अनुभूति से परिपूर्ण होने के कारण अत्यंत प्रभावशालिनी हुई। धर्मोपदेशक होने के नाते ज्ञानियों की शुष्कता का प्रभाव उनकी कविता में है पर उनकी कविता हृदय की सच्ची पुकार होने के कारण मर्मस्पर्शिनी हुई है। उनकी गर्वोक्तियों में भी विनम्रता की कमी दृष्टि नहीं आती। हिन्दू मुसलमान दोनों को समान रूप से फटकारने में उन्हे कोई संकोच नहीं था—यदि

हिन्दुओं से कहते हैं "कंठी बांधे हरि मिले, तो बंदा बांधे कुन्दा" तो मुसमानों से भी कह कर फटकारने में नहीं चूकते कि—"ऊंचो चढ़के बांग दे, क्या बहरा भया खुदाय ?"

कबीर के ग्रन्थों का संकलन उनके शिष्यों ने किया । उनके ग्रन्थों की संख्या बहुत बड़ी है, परन्तु उनमें अधिकांश संशयपूर्ण माने जाते हैं । 'बीजक' और 'चौरासी अङ्ग की साखी' दो प्रसिद्ध ग्रन्थों के अतिरिक्त 'साखी' 'शब्दावली' 'गोरखनाथ की गोष्ठी' 'सुख निधान' 'मङ्गल' 'हिन्दोल' 'बसन्त' 'होली' और 'अलफ नाना' आदि ग्रन्थ उनके हैं । बहुत से ग्रन्थ तो उनके प्राप्त भी नहीं हैं ।

भाषा और छन्द:—कबीर की भाषा ब्रज, अवधी और खड़ी बोली के मिश्रण से बनी होने के कारण खिचड़ी कहलाती है, जिसमें यत्र तत्र अरबी व फारसी शब्दों का भी प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। उनकी भाषा साहित्यिक और सुसंस्कृत न होकर 'सधुक्कड़ी' बोली के नाम से प्रसिद्ध है । पर फिर भी भाषा की सरलता और सरसता पाठकों के हृदय पर प्रभाव डालने वाली है । व्याकरण की दृष्टि से उनकी भाषा में अनेकों त्रुटियां मिलेंगी और मात्राओं की कमी बेशी एवम् शब्दों की तोड़ मरोड़ भी पर्याप्त रूप से दृष्टि आती है । पर विद्वता पूर्ण साहित्यिक भाषा की कविता न होते हुए भी कबीर के दोहों और पदों का जनता में अधिक प्रचार हुआ ।

कबीर ने दोहों, साखियों और पदों में रचना की । कहीं २ छंदोभंग और अश्लीलता भी दृष्टिगत होती है ।

रस और अलंकार:—कबीर की कविता धार्मिक सिद्धान्तों की होने के कारण अधिकतर शांत रस में हुई—शृंगार रस का प्रयोग केवल अध्यात्म पक्ष में हुआ है, अलौकिक नहीं ।

अलङ्कारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से भावों के स्पष्टीकरण निमित्त हुआ है, सप्रयास नहीं ।

अव्यक्त निर्गुण ईश्वर की उपासना को अपनी कविता का विषय बना कर निष्पक्ष भाव की रचना द्वारा कबीर ने हिन्दू और मुस्लिम जनता के हृदयों को मिलाने का सराहनीय प्रयास किया और उस दृष्टि से विशेषकर उनका स्थान हिन्दी साहित्य के इतिहास में अमर रहेगा ।

मलिक महुम्मद जायसी

मलिक महुम्मद जायसी प्रेम मार्गी सूफी कवियों में सर्वप्रधान थे। इन का निवास स्थान जायस था और जन्म सं. १५८२ के लगभग हुआ। सं. १५६७ में इन्होंने शेरशाह के समय में पद्मावत की रचना की। जायसी अपने समय के एक सिद्ध फकीर थे, उन्होंने हिन्दू निर्गुण साधुओं के सत्संग से हठयोग, वेदान्त, रसायन, इंगला, पिंगला, सुषुम्ना आदि नाड़ी, नाभी चक्र, हृदकमल और ब्रह्म रन्ध्र आदि की जानकारी प्राप्त की तथा सिंहल द्वीप में पद्मिनी स्त्रियों का होना तथा योगियों का सिद्ध होना आदि गोरख पंथियों से सीखा। आप अत्यन्त सरल प्रकृति के ईश्वर भक्त और जिज्ञासु साधु थे। अमेठी के राजा मानसिंह इनके परम भक्त थे। भक्ति काल में कबीर आदि ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच भेदभाव मिटाने की जो रीति अपनाई थी वह केवल बौद्धिक होने के कारण दोनों धर्मों की जनता को प्रभावित न कर सकी। किन्तु जायसी ने हिंदू घरों में प्रचलित रत्नसेन पद्मावती की कहानी ले कर उस में कल्पना का सुन्दर योग करके बड़े लोकरंजक प्रबन्ध काव्य की अवतारणा की, जिससे यह हिन्दू और मुसलमान हृदय को पास पास ला कर दोनों के अजनबीपन को मिटाने में सफल हुए।

जायसी अपने ढंग के निराले और अनूठे कवि थे - उन्होंने कहा नहीं, कवि कर्म किया है; लिखा नहीं रचा है - अतः उन की रचना भी काव्य मई हुई है। जायसी ने रस पर ध्यान दिया, अलंकार को अपनाया और चमत्कार का विधान किया। पर पिंगल शास्त्र का ज्ञान उन को नहीं प्रतीत होता। इतने बड़े काव्य पद्मावत में उन्होंने केवल दोहा और चौपाई- दो छन्दों - का प्रयोग किया है। हां 'अखरावट' में उन्होंने सोरठा भी अपनाया है। अलंकारों की योजना उन की अच्छी और अपने लक्ष्य के अनुकूल हुई है। उत्प्रेक्षा उन का प्रधान अलंकार है, पर रूपक में उन्हें सफलता न हुई।

जायसी की कविता शृंगार प्रधान है जिस के अन्तर्गत 'संयोग' तथा 'विप्रलम्भ' दोनों का विशद वर्णन है। वीर शान्त तथा अद्भुत रस के भी सुन्दर उदाहरण अनेक स्थानों पर मिलते हैं और युद्ध वर्णन में बीभत्स रस का वर्णन मिलता है, किन्तु हास्यरस का पद्मावत में पूर्ण अभाव है।

जायसी संयोग शृंगार में तर्क वितर्क और वाद विवाद को जितना महत्त्व देते हैं उतना भाव, भावना और आवेश को नहीं। इस से यह

दोष उत्पन्न हो जाता है कि एक ओर तो उनके संयोग शृंगार में अश्लीलता आ जाती है और दूसरी ओर उन के पात्र बहुत ही निम्न कोटि के जीव दिखाई देते हैं। शृंगार में जायसी का विप्रलंभ वर्णन उच्च कोटि का है। उनके विरहवर्णन में सब से बड़ी विशेषता है कि वह सामान्य मानव भूमि से उठता हुआ विश्व में अपना रूप दिखाता जाता है।

जायसी की प्रेम की अत्यन्त व्यापक एवम् गूढ़ भावना तथा विशुद्ध प्रेम का विस्तृत प्रत्यक्षीकरण उन के काव्य में है। कवि ने अपने काव्य द्वारा हमें उस परोक्ष सत्ता के दर्शन कराने का प्रयत्न किया है। पद्मिनी को ईश्वर का रूपक मानकर उस के सौंदर्य में ईश्वर के अनन्त सौंदर्य के दर्शन कराये हैं। पद्मावती, नागमती तथा रत्नसेन के वियोग वर्णन की व्यापकता में परमात्मा के विरह में सृष्टि की व्याकुलता का संकेत मिलता है। पद्मावत की लौकिक कथा को जीव और ईश्वर का रूपक बांध कर प्रस्तुत किया है :—

तन चितउर मन राजा कीन्हा, हिय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा।
गुरु सुआ जेइ पंथ दिखावा, बिन गुरु जगत को निरगुन पावा
नागमती यह दुनिआ धंधा, बांचा सोइ नएहिचित बंधा
राघव दूत सोई सैतानू, माया अलादीन सुलतानू।

इसी प्रकार पद्मावत की सारी कथा में अध्यात्म पक्ष छाया हुआ है :—

"चटपट चोर गंठि छोरा, मिले रहाई ओहि नाच।
जो ओहि हाट सजाया, गथ ताकर पै बांच॥"

पद्मावत की कथा में सम्बन्ध निर्वाह अच्छा है, किन्तु काव्य की प्रचलित परिपाटी के अनुसार अनावश्यक एवम् अन्योक्ति पूर्ण वर्णन यत्र तत्र बहुत बहुत हुए हैं; जैसे कुंअरो तथा सरदारों की तैयारियां और राजा तथा बादशाह का युद्ध अनावश्यक विस्तार से हुआ है, एवम् दृश्य वर्णन आने पर बगीचा राजप्रभा, बाजार किला महल, भोज और उत्सव आदि के वर्णन भी व्यर्थ विस्तार से हुए हैं। भद्दी वर्णन परम्परा के दृष्टान्त भी कम नहीं है, सिंहल वर्णन में तथा शृंगार और ज्योतिष आदि के पूरे उद्धरण जायसी ने मानों अपनी जानकारी प्रदर्शित करने के लिये ही किये हों। हां उन के कुछ वर्णन अति श्रेष्ठ हुए हैं, जिन के चुनने में आप का अनुभव ज्ञान तथा सहृदयता परिलक्षित होती है। जैसे सिंहल द्वीप वर्णन में पनघट का वर्णन, जल क्रीड़ा वर्णन में युवावस्था के अल्हड़पने तथा मैंके की स्वच्छंदता का वर्णन एवम् समुद्र की भयंकरता, विवाह की

सजावट के वर्णन तथा बारहमासा और नख शिख वर्णन आदि अति श्रेष्ठ हैं।

प्राचीन रूढ़ि में जकड़ी हुई तथा परम्परागत होते हुए भी जायसी की कविता में एक नवीनता, एक ताजगी तथा अपनापन है।

पात्रों के चरित्र चित्रण में जायसी उच्च आदर्श की स्थापना नहीं कर सके। पद्मिनी के प्रेमिका रूप से पीछे के सती रूप में महान् अन्तर होने के कारण सीता का सा गंभीर चरित्र चित्रण पद्मिनी का नहीं हुआ। इसी प्रकार रत्नसेन को प्रेम के आदर्श तथा गोरा बादल को वीरता के आदर्श के रूप में चित्रित किया है पर राम जैसा सर्व गुण सम्पन्न उन में से कोई नहीं है।

जायसी ने अवधी भाषा में कविता की है, पर पूर्वी भाषा में कहीं २ पश्चिमी रूप मिल जाता है। इन की भाषा व्यवस्थित साफ तथा परिमार्जित है। इन की नित्य प्रति की भाषा में स्वाभाविकता माधुर्य, कोमलता और प्रवाह है और मुहावरों तथा कहावतों का भी यत्र तत्र प्रयोग हुआ है। हां इनकी वाक्य रचना तुलसी के समान सुव्यवस्थित नहीं है, विभक्तियों का कहीं २ लोप कर दिया गया है।

जायसी का स्थान :— सूफी कवियों में जायसी का स्थान सर्व श्रेष्ठ है; कबीर से उनकी तुलना की जा सकती है, पर दोनों की भाव प्रकाशन शैली में महान् अन्तर है। तुलसी और जायसी की तुलना करने पर प्रकट होता है कि दोनों का प्रबन्ध काव्य एक ही भाषा तथा छंद में लिखा होते हुए भी उद्देश्य की भिन्नता के कारण भावों के स्पष्टीकरण, चरित्र चित्रण तथा घटना वर्णन की शैलियों में अन्तर है। शुद्ध काव्य कला की दृष्टि से भी जायसी तुलसी से बहुत पीछे है। अन्य कई हिन्दी के कवियों की कविता से जायसी की कविता में साम्य है और आप हिन्दी के उच्च श्रेणी के कवियों में है — हिंदी साहित्य इन सूफी कवियों का अत्यन्त ऋणी है।*

जायसी की निधन तिथि पर बहुत मतभेद हैं पर सं. १५४२ ई. ठीक मानी गई है।

महा कवि सूरदास

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल का विशेष महत्त्व है। राजनैतिक उलटफेर के कारण हताश हुई हिन्दू जनता के मानस में भक्ति का

* हि. के प्रतिनिधि कवि - प्रे.ना.टंडन पृ. २८

स्रोत बहाकर आनन्द की लहर उत्पन्न करने का श्रेय भक्ति-कालीन कवियों को ही है। सूर और तुलसी इन कवियों के शिरोमणि हैं। शुक्लजी के शब्दों में यह दोनों कवि हमारे हिन्दी साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र हैं।

जीवन वृत :– महात्मा सूरदास सगुण भक्ति – धारा में वल्लभ सम्प्रदाय के कृष्ण-भक्ति शाखा के कवि हैं। आपका जन्म-स्थान कुछ लोग देहली के पास सीहीं गांव को, और कुछ लोग आगरे से मथुरा जाने वाली सड़क पर स्थित रुनकुता को, मानते हैं। सूर जाति के सारस्वत ब्राह्मण कहे जाते हैं। कुछ लोगों के मतानुसार सूरदास कविवर चन्द्वरदाई के वंशज और जाति के ब्रह्मभट्ट थे।

सूरदास का समय साधारणतया १५४० से १६२० तक माना जाता है कुछ ने १५४० से १६४२ तक माना है।

सूरदास अंधे थे पर जन्मान्ध थे या बाद में अंधे हुए यह निश्चित नहीं है। अधिक राय यह है कि वे जन्मान्ध नहीं थे क्योंकि उन्होंने प्राकृतिक दृश्यों तथा रंग रूपादि का जो वर्णन किया है वह जन्मान्ध के लिये संभव नहीं जान पड़ता।

युवावस्था में सूरदास मथुरा व आगरा के बीच गऊ घाट पर रहते थे और भगवत भजन करते थे। वे गान बहुत अच्छा करते थे। विनय के अनेक पद भी उन्होंने रचे थे। एक बार महाप्रभु वल्लभाचार्य वहां पधारे, तब सूरदास उनके दर्शनार्थ वहां गये। सूर की कृष्ण भक्ति देख कर वे बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें अपना शिष्य बनाया। उन्हीं आचार्य के उपदेश से सूर के हृदय में भक्ति भाव प्रबल हुआ और सोई हुई कवित्व की सहज प्रतिभा जाग उठी।

महाप्रभु के उपदेश ने सूर की सुप्त प्रतिभा को सहसा जागरित कर दिया। बाह्य दृष्टि बन्द थी पर अन्तर्दृष्टि खुल गई। जब महाप्रभु ब्रज पधारे तो सूर भी उनके साथ वहीं चले आये। गोकुल में आने पर उन्होंने बाललीला के पद बनाये। कुछ समय पश्चात् महाप्रभु ने अपने इष्टदेव श्रीनाथ जी के कीर्तन की व्यवस्था सूरदास को सौंप दी।

कहा जाता है सूरदास जी ने सवा लाख पद बनाये थे। विभिन्न संस्करणों में उपलब्ध पदों की संख्या ६–७ हजार ही है। उनकी ख्याति सुनकर बादशाह ने उनको अपने दर्बार में बुलाया। सूर ने उनके सामने भगवान की लीला के पद गाकर सुनाये। उसने अपना यश वर्णन करने के लिये सूर से कई बार कहा पर सूर ने बराबर भगवद्-यश विषयक पद

ही गाये। महाप्रभु के देहान्त के बाद उनके पुत्र विट्ठलनाथ जी उनकी गद्दी के अधिकारी हुए। विट्ठलनाथ जी (उनकी गद्दी के) ने चार अपने पिता के और चार अपने, इस प्रकार सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्द दास कृष्ण दास छीत स्वामी, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास इन महान् व्यक्तियों की अष्टछाप नाम की मंडली बनायी। भक्तशिरोमणि सूरदास जी अष्ट छाप के इन कवियों में अग्रगण्य माने जाते है।

रचनाएँ : सूरदास के लिखे तीन ग्रन्थ मिलते है –

(१) सूर सागर (२) सूर सारावली और (३) साहित्य लहरी। साहित्य लहरी मे कूट पदों का संग्रह है। सूर सागर ही उनका प्रधान ग्रन्थ है।

सूर सागर भागवत पुराण के आधार पर लिखा गया है और उसकी भांति बारह स्कधो में विभाजित है, पर यह भागवत का बिलकुल अनुवाद नहीं है। भागवत की भांति यह प्रबन्ध काव्य भी नही है। भागवत से सूर ने केवल कथा क्रम ही लिया है। भागवत में वर्णित कथाओं को वे बहुत संक्षेप में कह गये हैं। सूर के प्रधान विषय तो विनय, कृष्ण की बाल लीला, गोपी कृष्ण और राधा कृष्ण की प्रेम लीला तथा गोपी विरह और भ्रमर गीत हैं। भागवत में भी इनका वर्णन है पर अत्यन्त संक्षेप में। इस प्रकार सूर सागर का अधिकांश सूर की मौलिक रचना है।

सूर सागर एक सुन्दर गीत काव्य है। राग रागिनियो का यह अक्षय भंडार है। गायक समाज म सूर के भजनों का बड़ा प्रचार है। उनका प्रचार उत्तर भारत तक ही सिमित नही किन्तु दक्षिण भारत के गायक में भी उसी प्रकार है। कबीर और मीरा के भजनों की भांति सूर के भजनों के बिना गायक समाज का काम ही नहीं चल सकता।

भाव पक्ष :– वात्सल्य और शृंगार के सूरदास सर्वश्रेष्ठ कवि है। बाल जीवन का ऐसा मार्मिक वर्णन करने वाला कवि संसार के साहित्य में भी कदाचित ही मिले। बालकों के स्वभाव और उनकी विविध चेष्टाओं और कार्यों का सूर ने जो चित्र अंकित किया है वह बड़ा ही स्वाभाविक, मनोवैज्ञानिक और हृदय स्पर्शी है। जो लोग रात दिन बालकों के साथ रहते हैं वे भी ऐसा मार्मिक वर्णन नहीं कर सकते जो सूर ने वैरागी और अंधे होते हुए किया है। इसके साथ ही माता के स्नेह पूर्ण हृदय का जितना भी चित्रण हो, उन्होंने उसी भावुकता से किया है। मातृ हृदय का जितना ज्ञान सूर को था उतना किस को हो सकता है? उसी

उमंगों का, अभिलाषाओं, आशंकाओं, और आकुलता का सूर ने जो सजीव चित्र खींचा है, अत्यन्त हृदय ग्राही है। डा. हजारी प्रसाद त्रिवेदी के शब्दों में सूरदास पुत्रवती माता के प्रेम-पेलव हृदय को भी उसी सतर्कता से छू सके हैं।

कृष्ण के मथुरा चले जाने पर यशोदा के हृदय की स्थिती और उससे उत्पन्न उद्गारों का यह चित्रण कितना मर्मस्पर्शी है —

"सुमिरि सनेह बिहरि उर अन्तर ढरि आवत ढरिजात
जद्यपि वसुदेव देवकी है निज जननी तात्
बार एक मिल जाहु सूर प्रभु ! धाई हू के नात।"

सरल और साधारण शब्दों में व्यक्त भावों के साथ मातृ हृदय लिपटा चला आ रहा है।

सूर हिंदी के सबसे बड़े शृंगारी कवि है। रीति काल में यद्यपि शृंगार काव्य की प्रधानता रही, तो भी कोई रीति कालीन कवि शृंगार वर्णन में सूर से आगे नही बढ़ सका। प्रेम के इतने नाना रूपों का साक्षात्कार हिंदी के किसी अन्य कवि ने नहीं किया। संयोग और विप्रलंभ-शृंगार के इन दोनों पक्षों का सूर ने विस्तृत वर्णन और पूर्ण चित्रण किया है। शृंगार रस का तो उन्होंने ऐसा सांगोपांग वर्णन किया है कि पिछले कवियों के लिए कुछ नही छोड़ा, रीति कालीन कवियों की कविता सूर की जूठन जान पड़ती है।

सूरदास ने शृंगार के भाव और विभाव दोनों पक्षों का विस्तार से वर्णन किया है। राधा और कृष्ण के रूप वर्णन में उन्होंने सैकड़ों पद कहे हैं। यह रूप वर्णन अलंकार प्रधान है। उद्दीपनों के रूप में सूर ने प्रकृति के विभिन्न रूपों, व्यापारों और दृश्यों का मनोहर चित्रण किया है। संचारी भावों और अनुभवों का सूर-सागर अटूट खजाना है। उनका जैसा बाहुल्य अत्यन्त दुर्लभ है।

सूर ने जिस प्रेम का वर्णन किया है वह केवल रूप-लिप्सा-जनित एक क्षणिक घटना नहीं है। प्रतिदिन साथ रहते, साथ २ खेलते कूदते, साहचर्य द्वारा उनका धीरे २ विकास हुआ है। बचपन के खेल के साथी ही आगे चलकर यौवन-क्रीड़ा के भी साथी बन जाते हैं।

सूर की राधा, साहित्य जगत की एक अनुपम कृति है। कृष्ण के साथ उनका सम्बन्ध केवल युवा काल का ही नहीं, वह कृष्ण की बाल-संगिनी है। वाग्विदग्धता सूर की राधा का एक विशेष गुण है जो उसके चरित्र में ओतप्रोत है। पहले ही दिन उसे देख कर कन्हैया उसकी ओर

आकर्षित होते है। परिचय बढ़ता है, साथ २ खेलते खिलाते हैं। धीरे २ आकर्षण बढ़ता है और प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। प्रेमोदयकाल में प्रेमियों मे जो विनोद की, परस्पर छेड़छाड़ की प्रवृत्ति पाई जाती है उसकी ओर भी सूर ने ध्यान दिया है और उसका अत्यंत ही सजीव चित्रण किया है। दान लीला का प्रसंग भी इसी प्रकार का है।

गोपी कृष्ण की प्रेम लीला के प्रसंग मे सूर ने मुरली के सम्बन्ध मे भी सैकड़ो पद कहे हैं। कृष्ण की चिरसंगिनी मुरली ने क्या चर, क्या अचर सारी प्रकृति को मुग्ध कर रक्खा है, उसकी जादू भरी स्वर लहरी ने चराचर जीवों की प्रकृति ही बदल डाली है। उस मुरली को सुनने की ब्रजवासियों की प्यास कभी बुझती ही नहीं। उनका हृदय मानो सदा पुकारता रहता है:—

"छबीले, मुरली नेकु बजाउ"

संयोग के साथ वियोग संसार का नियम ही ठहरा। कृष्ण अपने स्नेहालु माता-पिता, प्यारे सखाओं प्रेमिका, गोपियों और प्राणोपम राधा को छोड़कर मथुरा चले जाते हैं। उस वियोग का वर्णन भी सूर ने वैसी ही मार्मिकता से किया है। वियोग की अवस्था में जितनी भी मानसिक दशायें हो सकती है, सब तक सूर की अन्तर्दृष्टि पहुँची है। परम्परा से चले आते हुए "चन्द्रोपालम्भ" आदि सब विषयों का विधान सूर के वियोग वर्णन के भीतर है, कोई बात छूटी नहीं है।

सूर के वियोग वर्णन का सबसे सुन्दर अंश भ्रमर गीत है। वह शृङ्गार साहित्य का सर्वश्रेष्ठ उपालम्भ काव्य है। इसमें गोपी और उद्धव संवाद के द्वारा सूर ने निर्गुणोपासना की शुष्कता, दुर्बोधता एवम् अव्यवहारिकता तथा सगुणोपासना की सरलता और सरसता की विवेचना की है। भ्रमर गीत हृदय प्रेरित व्यंग्योक्तियों का अनन्त भंडार है। उदाहरण के लिये:—

निर्गुन कौन देस को बासी ?
मधुकर ! हँसि समुझाय, सौंहे दे बूझति, साच न हांसी।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी ?
कैसो बरन, भेष है कैसो, केहि रस में अभिलासी।"

सूर ने तुलसी की विनय पत्रिका के ढंग के बहुत से विनय के पद भी लिखे हैं। वे बड़े ही भावपूर्ण और काव्यमय हैं। तुलसी के विनय

पदों में दार्शनिकता की पुट अधिक है—उनकी शैली दार्शनिकता के बोझ के नीचे दबी सी है, पर सूर की शैली सर्वत्र सरल और सुबोध है। इन पदों में भगवान की भक्त वत्सलता, अपनी दीनता, उद्धार के लिये भगवान से विनय, माया की महिमा, ईश्वरीय लीला की विचित्रता और अगोचरता, जन्म को व्यर्थ खो देने पर पश्चाताप, मन को चेतावनी आदि विषयों का सुन्दर वर्णन है। ये पद भक्ति की विकलता से ओतप्रोत हैं। इनमें भक्त की दीनता के साथ २ अगाढ़ प्रेम की मधुर व्यंजना हुई है। उदाहरणः—

प्रभु हौं ! सब पतितन को राजा।
पर निन्दा मुख पूरि रह्यो जग यह निसान नित बाजा।
तृसना देसरु सुभर मनोरथ इन्द्रिय खड़ग हमारे॥
मंत्रि काम कुमत देवे को कोध रहत प्रति हारे॥

इस प्रकार वात्सल्य, दाम्पत्य, भक्ति आदि प्रेम के विविध रूपों का सूर ने अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया है।

कला—पक्षः—तुलसी की भांति सूर की कविता भी विद्वान् और साधारण जन सबको समान रूप से आनन्द देने वाली है। उसका भाव सौंदर्य अनुपम है। काव्य के विविध अंगों का उसमें यथावत् सन्निवेश मिलेगा। अलंकार प्रेमी अलंकारों की सुन्दर योजना देखकर प्रसन्न होंगे। वैसे तो सूर की कविता में सभी अलंकारों का प्रयोग मिलता है, पर उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। रूप वर्णन करते समय तो कवि पर मानो अलंकारों की झक सी चढ़ जाती है और वह उपमा पर उपमा तथा उत्प्रेक्षा पर उत्प्रेक्षा कहता चला जाता है। अनुप्रास, यमक आदि बाह्य सौन्दर्य के और चित्र-काव्य के प्रेमियों को भी सूर ने निराश नहीं किया है। सूर दृष्टि कूट साहित्य-संसार में काफी प्रसिद्ध हो चुके हैं। प्रकृति वर्णन जहां सूर ने किया है, बहुत सुन्दर किया है। वह मुख्यतया उद्दीपन के ही रूप में हुआ है। पर कई स्थलों में स्वतंत्र रूप से भी किया गया है।

भाषा :— सूर सागर की रचना ब्रज भाषा में हुई है। उसकी भाषा बहुत ही स्वाभाविक, प्रांजल, ब्रज के मिठास से भरी और संगीतमय है। उस में प्रवाह है, भावों को ठीक २ व्यक्त करने की पूर्ण क्षमता है, तथा हृदय को स्पर्श करने की शक्ति है। कहीं २ छन्द के बन्धन वश शब्दों

में अधिक तोड़-मरोड़ करनी पड़ी है, व्याकरण-दोष भी आगये हैं और कहीं २ क्लिष्टता भी आ गई है पर सामान्यतः उनकी भाषा सुसगंठित सुबोध, प्रवाह पूर्ण और मुहावरे दार हैं। उनकी रचना में अलंकारों का बहुत ही अच्छा प्रयोग हुआ है। उनकी भावव्यंजना की शैली प्रसाद गुण-मयी है तथा उनके वर्णन स्वाभाविक है।

उपसंहार :– निःसन्देह सूर और तुलसी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। कुछ लोग तुलसीदास को श्रेष्ठ मानते हैं, तो कुछ सूरदास को ; पर यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो अपने २ क्षेत्र में दोनों ही अनुपम हैं। लोक–संग्रह और समाज-मर्यादा का ध्यान रखते हुए मानव-जीवन की नाना परिस्थितियों का चित्रण तुलसी ने किया है। सूर आत्मानन्दी थे। उनकी मधुरा या प्रेम-भक्ति का क्षेत्र भगवान् की मधुर लीलाओं तक ही – विशेषतः वात्सल्य और शृंगार के संयोग-वियोग तक ही - परिमित था पर अपने इस वात्सल्य और शृंगार के क्षेत्र में सूर अनुपम हैं, अद्वितीय है।

गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास केवल हिन्दी के ही सर्वश्रेष्ठ कवि नहीं है अपितु विश्व कवियों में भी उनका पूर्ण सम्मान है। इन्होंने राम का आधार ले कर मानव जीवन के ऐसे आदर्शों की स्थापना की जो विश्व जनीन हैं और समय के प्रवाह से नहीं वह सकते।

जीवन वृत :– तुलसीदास के जीवन-वृत के सम्बन्ध में बहुत मतभेद है। अधिक मत के अनुसार वे सरयू पारी दूबे ब्राह्मण थे और उनका जन्म राजापुर (जिला बांदा) में हुआ था उनका जन्म संवत् उनकी शिष्य–परम्परा में संवत् १५५४ माना जाता है और जन्म तिथि श्रावण शुक्ला सप्तमी। गोस्वामीजी बचपन में ही मातृ–पितृ हीन होगये थे। नरहरिदास नाम के एक महात्मा ने उनका पालन पोषण किया और उनको राम कथा सुनाई। बड़े होने पर उनका विवाह हुआ। उनकी स्त्री का नाम रत्नावली था। प्रसिद्ध है कि वे अपनी स्त्री से बहुत प्रेम करते थे। एक बार जब वे बाहर गये हुए थे उनकी स्त्री अपने भाई के साथ पीहर चली गई। तुलसी को जब इस बात का पता लगा तो वे रातों-रात बरसते पानी में नदी पार करके स्त्री के पास पहुँचे। इससे वह बहुत लज्जित हुई और उसने फटकारते हुए कहा –

"लाज न लागति आपु को, दौरे आयेहु नाथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥

हांड-मांस की देह मम, ता पर जितनी प्रीति।
तासौ आधी जो राम प्रति, अवसि मिटति भवभीति।।"

यह कथन तुलसी को बहुत लगा और वे तुरंत वहाँ से काशी चले आये और विरक्त हो गये। उत्कट पत्नी-प्रेम सहसा उत्कट राम भक्ति में बदल गया। विरक्त होने के बाद उन्होंने दूर-दूर तक का भ्रमण किया और साधुओं का सत्संग करते रहे। अयोध्या और काशी उन के मुख्य निवास-स्थान थे। उनका देहान्त संवत् १६८० में श्रावण कृष्ण तृतीया के दिन काशी में असी घाट पर हुआ। उनके परम मित्र टोडर के वंशज अभी तक इस दिन तुलसी के नाम पर ब्राह्मण को सीधा दिया करते हैं।

गोस्वामी जी अपने समय के प्रसिद्ध महापुरुष थे। उस काल के अनेक प्रसिद्ध व्यक्ति उनके मित्र अथवा परिचित थे। इनमें कविवर रहीम, महाराजा मानसिंह, भक्तमाल के रचयिता नाभादास, संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान मधुसूदन सरस्वती, ठाकुर, टोडर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। कहते हैं कि सूरदास जी से भी उनकी भेंट हुई थी। मीरा के साथ भी उनका पत्र व्यवहार हुआ था। ठाकुर टोडर काशी के जमींदार थे। गोस्वामी जी को भी उनसे बड़ा प्रेम था; उन्होंने किसी मनुष्य की प्रशंसा में कभी कुछ नहीं लिखा पर टोडर की मृत्यु पर उन्होंने कुछ दोहे उसकी स्मृति में कहे थे (यद्यपि इनमें भी राम-महिमा को वे भूले नहीं)।

रचनाएँ :- तुलसी के नाम से पचासों ग्रंथ प्रसिद्ध हैं पर निम्नलिखित चौदह प्रामाणिक माने जाते हैं।

(१) राम लला नहछू (२) वैराग्य संदीपनी (३) बरवै रामायण (४) पार्वती मंगल (५) जानकी मंगल (६) रामाज्ञा (७) दोहावली (८) तुलसी-सतसई (९) रामचरितमानस (१०) कवितावली (११) हनुमान बाहुक (१२) गीतावली (१३) कृष्ण गीतावली (१४) विनय पत्रिका। इनमें प्रथम नौ अवधी में लिखे गये हैं और पाँच व्रज भाषा में। (१) रामलला नहछू में श्री राम और उनके भाइयों के नहछू उत्सव का वर्णन है (२) वैराग्य संदीपनी में वैराग्य विषय का वर्णन है। (३) बरवै रामायण में बरवै छन्द में रामायण की कथा अत्यन्त संक्षेप में कही गयी है। यह बड़ी मधुर और भाव पूर्ण रचना है। (४) पार्वती मंगल में शिव-पार्वती के विवाह की कथा है। (५) जानकी मंगल में राम के धनुष तोड़ने और सीता-राम के विवाह का वर्णन है। (६) रामाज्ञा शकुनावली है। इसमें रामचरित्र सम्बन्धी दोहे हैं। यह शकुन लेने के लिये लिखी

गयी थी । (७) दोहावली में भक्ति आदि विविध विषयों के दोहे हैं। उनका चातक प्रेम-प्रसंग बड़ा ही ललित है । इसमें कवि ने प्रेम का उत्कृष्ट आदर्श उपस्थित किया है । (८) तुलसी सतसई को राम सतसई भी कहते हैं । इसमें भी विविध-विषयक दोहे हैं जिनमें से बहुत से दोहावली के हैं । (९) कवितावली में राम चरित्र सम्बन्धी प्रकीर्णक कवित्त और सवैया छन्द हैं । यह केशव गङ्ग आदि रीति कवियों की शैली पर लिखा गयी है । इसकी कविता बहुत मनोहर है और भाषा भी इसकी बड़ी मधुर है । इसके उत्तरकाण्ड मे विनय के छन्द हैं। इसमें के कतिपय पद्यों में कवि ने अपने जीवन पर भी कुछ प्रकाश डाला है । (१०) हनुमान बाहुक में हनुमान जी की विनय के कवित्त हैं (११) गीतावली में विविध राग रागनियों के पदों में सूर सागर की शैली पर राम-चरित्र का वर्णन किया गया है । (१२) **कृष्ण गीतावली** में कृष्ण की बाल लीला गोवर्द्धन धारण और गोपी विरह तथा भ्रमर गीत के पद हैं। (१३) **विनय पत्रिका** में विनय के पद हैं। आरम्भ के कुछ पदों में विविध देवी देवताओं की स्तुतियां हैं जिनकी भाषा अत्यन्त संस्कृत-गर्भित है । इस ग्रन्थ में कवि ने अपनी दीनता का बड़ा ही भाव पूर्ण वर्णन किया है। इसमें भक्त तुलसी दास के हृदय के वास्तविक दर्शन होते हैं । शान्त रस और भक्तिभाव के उत्कर्ष का ऐसा प्रवाह अन्यत्र दुर्लभ है। (१४) **रामचरित मानस** कवि की सर्व प्रधान अमर कृति है। इसमें भगवान रामचन्द्र का चरित्र बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है । इसमें सात सोपान हैं । इसकी रचना मुख्यतया अध्यात्म-रामायण के आधार पर हुई है, पर स्थान स्थान पर पुराणादि अन्यान्य ग्रन्थों का सहारा भी लिया गया है । इस प्रकार यह समस्त हिन्दु धर्म ग्रन्थों का निचोड़ है। उत्तर भारत की जनता में जितना प्रचार इस ग्रन्थ का हुआ है उतना किसी का नहीं । इसका भाव गांभीर्य बड़े बड़े विद्वानों को मुग्ध करता है । इसकी भाषा अवधि है। यह हिंदी का सर्व श्रेष्ठ प्रबन्ध काव्य है ।

मानस में तुलसी का दर्शन बहुत विस्तृत, व्यापक और परिमार्जित है । उन्होंने घटना प्रसंग में भी दर्शन का पुट दे दिया है। तुलसी के दर्शन सम्बन्धी अवतरणों से ज्ञात होता है कि वे राम को । विधि हरि शंभु नचावनहारे ' के रूप में मानते थे । उन्होंने अद्वैतवाद के भीतर ही विशिष्टाद्वैत वाद की सृष्टि कर दी। राम चरित मानस के समस्त अवतरणों को देखने से ज्ञात होता है कि तुलसीदास अद्वैतावाद को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हुए भी रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत के अनुयायी थे । उन्होंने

सभी स्थलों पर राम नाम के साथ नारायण के गुणों का समन्वय कर दिया है ।

तुलसी अपने समय के असाधारण प्रतिभा शाली महापुरुष और महान लोक नायक हुए थे । डाक्टर ग्रियर्सन के कथानुसार बुद्ध के बाद भारत में सबसे बड़े लोकनायक तुलसीदास ही थे । हिन्दु जीवन पर तुलसी का गहरा प्रभाव पड़ा है । वे हिन्दु धर्म और हिन्दु जाति के संरक्षक के रूप में अवतरित हुए । उन्होंने विनाश के किनारे खड़े हुए हिन्दु धर्म को सहारा दिया और घोर नैराश्य के गम्भीर गर्त में निमग्न हिन्दु जाति में नवजीवन का संचार कर उसकी रक्षा की । उनके राम आज हिन्दु जीवन के रोम-रोम में रम गये हैं ।

लोक-संग्रह पर गोस्वामी जी की पूर्ण दृष्टि थी । हिन्दु समाज के भिन्न २ सम्प्रदायों के पारस्परिक विद्वेष को कम करने के लिये उन्होंने बहुत प्रयत्न किया । उस समय वैष्णव, शैव, शक्ति, निर्गुण आदि विभिन्न सम्प्रदायों में सत्यानाशकारी द्वेष उठ खड़ा हुआ था । उसका भयङ्कर रूप दक्षिण भारत में आज भी वर्तमान है, पर महात्मा तुलसी की कृपा से भारत में वह सिर न उठा सका । शङ्कर को श्री राम का और श्री राम को शङ्कर का आराधक बता कर उन्होंने दोनों के महत्त्व का प्रतिपादन किया ।

तुलसी की समन्वय शक्ति बड़े गजब की थी । उस समय सारा देश विश्रृङ्खल, परस्पर, विच्छिन्न आदर्श हीन बिना लक्ष्य का हो रहा था । एक ऐसे आदमी की आवश्यकता थी, जो इन परस्पर विभिन्न और विभ्रष्ट टुकड़ों में योग सूत्र स्थापित करें । तुलसी ने यही कार्य किया । विविध विचार पद्धत्तियों, विविध भावनाओं और विविध साधना मार्गों का समन्वय करने में उन्हें अपूर्व सफलता मिली । शैव और वैष्णव, सगुण और निर्गुण, ज्ञान और भक्ति सब का समन्वय उनकी रचनाओं में मिलता है । उनकी विनय पत्रिका का एक एक पद कवि की अटल भक्ति का द्योतक और दीन-भाव का व्यंजक है । कवि भगवान के सामने विह्वल हो कर अधीरता प्रगट करते हैं

"कबहुंक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा ते संत सुभाव गहौंगो ।।"

कभी मोह जीवन अज्ञान को दुतकारते हुए हरि प्रेम और ज्ञान की महिमा बखानते हैं।

> " माधव मोह फाम क्यों टूटै ?
> तुलसीदास हरि गुरु करुना बिन विमल विवेक न होई ॥
> बिनु विवेक संसार घोर निधि पार न पावै कोई ॥"

इस प्रकार सामंजस्य स्थापित करके उन्होंने हिन्दु समाज के विविध अङ्गों में एकता का भाव उत्पन्न किया। समाज और परिवार सम्बन्धी ऊँचे आदर्श खड़े करके उन्होंने हिन्दु जाति के जीवन को सबल और सुखी बनाने का प्रयत्न किया। उनकी वाणी जीवन को ऊंचा उठाने वाली है। उसमें सर्वत्र पवित्र भाव भरे हुए हैं। उनका शृंगार-वर्णन भी बड़ा पावन और मर्यादा पूर्ण है।

हिन्दु जाति के जीवन पर तुलसी का जितना प्रभाव है उतना और किसी कवि का नहीं। उनकी रचना का आज घर-घर प्रचार है। साक्षर और निरक्षर, विद्वान और मूर्ख बड़े और छोटे सभी उनकी रचना को पढ़ कर आनन्द प्राप्त करते और लाभ उठाते हैं। उनकी सैकड़ों सूक्तियां जनता की जबान पर है और अवसर-अवसर पर कहावतों की भाँति ही नहीं धर्म वाक्यों की भाँति भी काम में लायी जाती हैं। उनका 'मानस' आज उत्तर भारत का सर्व प्रधान धर्म ग्रन्थ हो रहा है। हिन्दुओं के वेद आदि धर्म शास्त्र जनसाधारण की पहुंच के बाहर हैं। उन्हें जब धर्म सम्बन्धी व्यवस्था जाननी होती है तो वे मानस का ही सहारा लेते हैं। सामाजिक, पारिवारिक और राजनैतिक आदर्शों के लिए भी उसी की ओर निर्देश किया जाता है।

कवित्व:— महान लोक नायक होने के साथ ही तुलसी महान कवि भी थे। वे हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। संसार के सर्वश्रेष्ठ कवियों में उनका आदरणीय स्थान है। उनका काव्य आत्मा की स्वाभाविक प्रेरणा से लिखा गया है इसलिये यह स्वाभाविक और प्रभावशाली हुआ है। यही कारण है कि तुलसी के काव्य के भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों ही उत्कृष्ट हैं। हृदय के विभिन्न भावों को चित्रित करने में तो उन्होंने कमाल किया है। परिस्थिति अनुसार मन का क्षोभ आनन्द ग्लानि और संकोच आदि भावनाओं को व्यक्त करते समय मानों कवि पात्र के हृदय में स्वयं जा बैठा हो। यह है कवि की वास्तविक सहृदयता और अभिव्यंजनी शक्ति का समन्वय। वन में विचरण करते समय सीताजी के श्रम की व्यंजना कैसी मनोहर की है:—

"पुर तें निकसी रघुवीर वधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै ।
भलकी भरि भाल कनी जल की, पट सूख गये मधुराधर वै ।।
फिर बूझति हैं चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहो कित ह्वै ।
तिय की लखि आतुरता पिय की अंखियां अति चारु चली जल च्वै ।।"

तुलसी का काव्य क्षेत्र अन्यान्य हिन्दी कवियों की भांति सीमित नहीं। वह समस्त मानव जीवन तक व्याप्त है। मानव-जीवन की जैसी विशुद्ध व्याख्या तुलसी ने की, वैसी हिन्दी का और कोई कवि नहीं कर सका है। अनेक रूप मानव-जीवन की कोई ऐसी परिस्थिति नहीं जिस तक उनकी सूक्ष्म दृष्टि न पहुंची हो। उनकी चरित्र-चित्रण-शक्ति हिन्दी में अनुपमेय है। चरित्र चित्रण की स्वाभाविकता और सुन्दरता देखते ही बनती है। मानस के 'भरत' का सा आदर्श चरित्र क्या संसार के किसी साहित्य में मिलेगा ? आख्यान के मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचान कर उनका वर्णन उन्होंने बड़ी सुकुमारता से किया है। माता की करतूत को सुनकर भरत की आत्म ग्लानि का एक चित्र देखिये:—

"ऐसे तैं क्यों कटु वचन कह्यो री ?
'राम जाहु कानन' कठोर तेतो कैसे धौं हृदय रह्योरी ।।
ऐहैं राम, सुखी सब ह्वै हैं ईस अजस मेरो हरि हैं ।
तुलसीदास मोको बड़ो सोच है, तू जनम कौन विधि भरि हैं ।।

गोस्वामीजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उस समय में जितनी काव्य शैलियां प्रचलित थीं उन सब में उन्होंने रचना की और प्रत्येक में पूर्ण सफलता प्राप्त की। उनकी रचनायें अवधि में भी हैं और ब्रज में भी; दोनों भाषाओं पर उनका समान अधिकार है। उनकी भाषा सर्वत्र सरल सुबोध सुगठित, व्यवस्थित और व्याकरण सम्मत है, शिथिलता का कहीं नाम नहीं।

तुलसी के काव्य में रस और अलंकारों का निर्वाह बड़ी स्वाभाविकता के साथ हुआ है। उनके अलंकार अपने उद्देश्य को चरितार्थ करने वाले हैं। यमक, श्लेष, कूट आदि खिलवाड़ के अलंकारों में उनकी रुचि नहीं। उपमा, उत्प्रेक्षा रूपक आदि साम्य मूलक अलंकारों का उन्होंने अधिक प्रयोग किया है। लाला भगवानदीन के शब्दों में 'गोस्वामीजी रूपकों के बादशाह थे।

तुलसीदास कवि थे, भक्त थे, पंडित-सुधारक थे, लोक नायक थे और

भविष्य के स्रष्टा थे। इन रूपों में उनके कोई भी रूप किसी से घटकर नहीं। यही कारण था कि उन्होंने सब ओर से समता (Balance) की रक्षा करते हुए एक अद्वितीय काव्य की सृष्टि की, जो अब तक उत्तर भारत का मार्गदर्शक रहा है।

मीरां बाई

भक्ति-काल में जो अविरल भक्ति का स्रोत हिन्दी के महाकवियों ने बहाया, वह अभी तक साहित्य प्रेमी जनता के हृदयों का आधार बना हुआ है। इस स्वर्णकाल के दो देदीप्यमान नक्षत्र सूर और तुलसी के बाद भक्ति रस का संचार करने वाली मेवाड़ की राज रानी मीरांबाई हुई। हिन्दी की कवयित्रियों में इनका स्थान सर्व श्रेष्ठ है।

जीवन वृत्त:—मीरां मेड़ता के राव रतनसिंह की एकलौती बेटी थीं। वि० सम्वत् १५७३ में कुड़की गांव में इनका जन्म हुआ। बचपन में ही माता का स्वर्गवास हो जाने से पिता और पितामह द्वारा मीरां का लालन पालन हुआ था। कबीर के गुरुभाई रैदास इनके गुरु थे। मीरां के पितामह राव दूदा परम भक्त थे। बचपन से ही उनकी भक्ति का प्रभाव मीरां पर पड़ता रहा।

सीसोदिया वंश के राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज से मीरांबाई का विवाह हुआ था; परन्तु सात साल बाद ही विधवा हो गई। मीरां के बचपन की घटनाओं से प्रकट है कि उन्हें शैशवावस्था में ही श्री गिरधरलाल का इष्ट हो गया था, और विवाह होने पर अपने पति को भी भगवान का स्वरूप ही समझने लगी। इसलिये वैधव्य से इनको इतना शोक नहीं हुआ। कृष्ण प्रेम में पहले से ही रंगी थीं। अब पूर्ण रूप से इन्होंने श्री कृष्ण को आत्म समर्पण कर दिया। वह श्री कृष्ण को ही अपना पति समझ कर उनकी आराधना करने लगी।

इसी अटल भक्ति से प्रेरित होकर मीरां ने साहित्य की रचना की—यही कारण है कि उनके पदों में भक्ति का अविरल स्रोत फूट पड़ा है। राजस्थान में जिस समय मीरांबाई का आविर्भाव हुआ, उस समय आध्यात्मिक साधना के अन्तर्गत तीन विचार धाराएँ प्रबल वेग के साथ प्रवाहित हो रही थीं— (१) ज्ञान योग, (२] प्रेमानुबन्ध (३) भक्ति-भाव। मीरांबाई की मनोवृत्ति पर तीनों का न्यूनाधिक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था परन्तु उतरी भारत के वायुमण्डल ने राजस्थान को प्रभा-

वित किया और प्रांत की परिस्थिति एवम् दैनिक जीवन के परिवर्तनों ने, उनके व्यक्तित्व को एक विशेष रूप से संगठित कर उसे उपलब्ध पदों की रचना के लिये अपनी प्रेरणा प्रदान की और फलतः मीरां के पद भक्ति-भाव से ओतप्रोत रचे गये ।

मीरांबाई की प्राथमिक शिक्षा मेड़ते में पूर्ण हुई थी और अनुमान है कि अन्य आवश्यक बातों के साथ साथ उन्हें समयानुसार, काव्यकला एवम् संगीतादि के अभ्यास का भी अवसर मिला था । मेवाड़ का राजवंश उन दिनों प्रसिद्ध प्रेमी विद्वान महाराजा कुम्भा के कारण संगीत व साहित्य के लिये विख्यात हो चुका था, अतएव ससुराल में भी मीरांबाई को अपनी योग्यता के विकास के लिये अनुकूल वातावरण प्राप्त होता गया । कुंअर भोजराज अपने जीवन काल में इनके उत्साह में किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुंचाई । उनके मरणोपरान्त भी अपने कठोर वैधव्य को सरल करने में इन साधनों से बराबर सहायता लेती रही । कदाचित उसी काल में उन्होंने अपनी कुछ उपलब्ध रचनाएँ प्रस्तुत की थी और अधिकांश पदों को अपने इष्टदेव के सम्मुख गा गाकर उन्हें रिझाने की चेष्टा भी की थी ।

मीरांबाई की रचनाएँः—(१) नरसीजी रो माहेरो, (२) गीत गोविंद (३) राग गोविंद (४) सोरठ के पद (५) मीरांबाई का मल्हार (६) फुटकर पद ।

इन सब में सबसे अधिक महत्वपूर्ण उनके पद हैं । इनकी संख्या ४००–५०० के लगभग है । मीरांबाई की पदावली के प्रायः सभी पद गीतों के रूप में है । गीतों की परम्परा हिन्दी में आदि काल से चली आती है । उनके पदों का मुख्य विषय रचयित्रि के आभ्यांतरिक भावों का पूर्ण प्रकाश जान पड़ता है, इसी कारण प्रायः सारी पदावली में मीरां के व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट है । मीरांबाई के जीवन भर में केवल एक ही भाव है, एक ही रस है और एक ही रङ्ग है । उसकी स्पष्ट छाया उनकी पदावली में सर्वत्र दिखती है । मीरां के हृदय पर, उनके जीवन भर, एक मधुर भावना की लहरें हिलोरे मारती रही । वे सदा समझती रही कि मैं तो गिरधर लाल की अपनी हूं और उनके द्वारा अवश्य अपनाई जाऊंगी ।

भक्ति का स्वरूपः—मीरांबाई की पदावली में हमें सर्वत्र भक्ति रस की उस धारा का ही प्रभाव लक्षित होता है जिसे माधुर्य भाव अथवा

मधुर रस कहा करते हैं। मधुर रस के अनुसार भक्त भगवान को अपने पति अथवा सर्वस्व के रूप में देखता है और इसी कारण उनके साथ उसका सम्बन्ध अत्यंत घनिष्ठता का हो जाता है। मीरांबाई अपने प्रियतम को सदा 'पिया' 'पिव' 'उग्' 'धणी' 'सैंया' 'भरतार' 'साजन' अथवा 'वर' कह कर सम्बोधित करती हैं। एकाध पद में सौतिया डाह जैसे भाव का भी संकेत मिलता है किन्तु तो भी उन्हें सांसारिक दृष्टि से परोक्ष व अमूर्त अथवा प्रत्यक्ष व मूर्तिमान होने पर भी, निर्जीव दीख पड़ने वाले व्यक्ति को नाच-गाकर रिझाते समय लोक लज्जादि के सङ्कोच बाधा पहुँचाने लगते हैं। उनके स्वजन वास्तविक रहस्य को समझ पाने में असमर्थ हैं और वे उनकी सचाई में सन्देह तक करने लग जाते हैं। परिणाम स्वरूप उनमें 'प्रेम दिवाणी' भार होने पर भी लोग उन्हें 'कुलनासी' आदि कहने से भी नहीं चूकते और हँसी तक उड़ाने में प्रवृत्त हो जाते हैं; परन्तु मीरां को ऐसी बदनामी सदा भली ही लगती है और वे लाख बुरी-भली कही जाने पर भी, अपनी अनूठी चाल चलने पर ही दृढ़ रहती है। वे सदा अपनी राम खुमारी में ही मस्त डोलती फिरती रह जाती है।

मीरांबाई का उक्त माधुर्य भाव निरा उच्छृङ्खल आवेश प्रदर्शन नहीं था। वह वास्तव में ज्ञान-मूलक एवम् सन्त परम्परानुमोदित निर्गुणोपासना द्वारा मर्यादित भी था। जैसा कि उनके पचरंग चोला के आवरण में झिरमिट खेलने 'त्रिकुटी महल' से 'झांकी लगाने' 'सुरत जमाने' अथवा 'सुरत निरत का दिवला' संजोने आदि के प्रयोगों द्वारा प्रकट होता हैं। केवल साहित्यिक व सामाजिक रूढ़ियों के दृष्टिकोण से किसी को हानिकारक दीख पड़ने से ही उक्त प्रेम साधना को उच्च दार्शनिक व आध्यात्मिक सिद्धान्तों के अनुसार, सहसा दूषित नहीं ठहरा सकते।

साधना पक्षः—मीरांबाई हमारे सामने अपने पदों द्वारा कवि से पहले एक भक्त के रूप में प्रकट होती हुई जान पड़ती हैं। उनका सारा जीवन कतिपय, निश्चित एवम् अंतर्निष्ठ भावनाओं से परिपूर्ण रहा और उनकी रचनाओं पर उनके व्यक्तित्व की गहरी छाप सर्वत्र पड़ती रहीं। उनके भाव उनके तल्लीन हृदय-स्थल से सदा स्वतः प्रसूत निकल पड़ते रहें। उन्हें अपने कलेवर के बाह्य रूप की कोई उपेक्षा न थी। फिर भी वे काव्य के अनेक लक्षणों से संयुक्त भी दिखाई पड़ते हैं।

मीरां के हृदय में श्री गिरधरलाल के प्रति जो मधुर रति है, वही

उनके अनेक पदों में प्रदर्शित विभाव अनुभावादि द्वारा परिपुष्ट होकर मधुर रस का रूप ग्रहण करती हुई दिखाई पड़ती है। आलम्बन सर्वत्र वही गिरधरलाल हैं जो 'नन्द नन्दन, मदन मोहन, गोविन्द, हरि, सइंया व सतगुरु, आदि नामों द्वारा सम्बोधित किये गये हैं।

विरह–गर्भित प्रेमः—मीरांबाई ने अपने विरह का वर्णन भी बड़े सुन्दर ढंग से किया है। इनके पदों में विरह का एक अलग महत्व है। मीरां का लौकिक रूप व्यक्त होता हुआ भी परमात्मा से सम्बद्ध होने के कारण वास्तक में अलौकिक आध्यात्मिक व विरह-गर्भित हैं। मीरांबाई को यह बात सिद्धान्त रूप से स्वीकृत है कि उनमें और इष्टदेव में जीवात्मा और परमात्मा की मौलिक एकता के कारण कोई वास्तविक अन्तर नहीं। उसके द्वारा किये गये संयोग व मिलन के वर्णनों में स्वभावतः आनन्द एवं उत्साह के भाव प्रधान रूप से लक्षित होते हैं। उनकी शैली कहीं कहीं परम्परागत साहित्यिक पद्धति और सन्त कवियों की वर्णन-प्रणाली से मेल खाती हुई दिखाई पड़ती है।

वर्णन-कौशलः—मीरांबाई के वर्णन-कौशल की बानगी उनके सौंदर्य वर्णन में मिलती है। उनकी विशेषताओं द्वारा प्रभावित सबसे अच्छे सौंदर्य-वर्णन के मूलों में "कान्हा किन गूंथी जुल्फां कारियां" तथा "सखी! म्हारो कानूड़ो कलेजे की कोर" उपस्थित किये जा सकते हैं। भगवान की महिमा के वर्णन में हमें उनकी अलौकिक शक्ति एवम् भक्त वत्सलता के उल्लेख प्रायः वैष्णव कवियों जैसे मिलते हैं। इसी प्रकार ऋतु-वर्णन में विरह-अवस्था, प्रतीक्षा एवम् मिलन— तीनों की भिन्न २ दशाओं के अनुसार एक ही ऋतु भिन्न प्रकार की सजावटें लेकर सामने आती जान पड़ती है। बारह मासे का वर्णन भी मीरां के हृदय की कहानी प्रकट करता जान पड़ता है। होली की तन्मयता में उनके भाव बहुत ही स्पष्ट है, जैसेः—

"रंग भरी रंग भरी रंग सूं भरी री,
होली आई प्यारी तरंग सूं भरी री॥"

घटनात्मक वर्णन में बाल लीला, बंशी लीला, नाग लीला, चीर हरण लीला, पनघट लीला, फाग लीला और दधि बेचन लीला के प्रसंग आते हैं।

मीरांबाई के अपूर्व वर्णन कौशल के प्रभाव, उनके कतिपय वाक्यों अथवा वाक्यांशों में किये गये शब्द चित्रणों में भी देखे जा सकते हैं।

उदाहरण के लिये 'प्रेम की आंच दुलाते, विरह कलेवा खाये, कसक कसक कस काली, कँगना के झनकारे, कुण्डल की झकझोर, मेल की गांसुरी, कछुक टोनो कर्‌या और हाथ मींजत' रही आदि की भाव गम्भीरता पर विचार किया जा सकता है।

अलङ्कार-विधान:—मीरां की कविता विशेषकर भावमयी होने के कारण उनके काव्य की प्रचुर मात्रा हमें वस्तुतः अपूर्व रसोदभावना अथवा हृदयग्राही वर्णन के अन्तर्गत ही मिल सकती है। फिर भी पदावली का मुख्य विषय एक परोक्ष वस्तु है। अर्थात् हरि अविनाशी प्रियतम होने से भावोत्तेजना द्वारा प्रेम भाव स्पष्ट करने के लिये सादृश्य योजना का आश्रय भी लेना पड़ा और फलस्वरूप उसमें कुछ अलंकारों का विधान स्वभावतः हो गया है। उनकी पदावली में सबसे अधिक रूपकों के उदाहरण मिलते हैं, जैसे:—

"असुवन—जल सींचि—सींचि वेलि बोई।"

इसके अतिरिक्त उपमा, उत्प्रेक्षा, अत्युक्ति, विभावना, स्वाभावोक्ति, उशीन्तरन्यास, श्लेष और अनुप्रास आदि अलंकारों का विधान भी यत्र-तत्र पाया जाता है।

उपमा:—'पाना ज्यूं पीली पड़ी रे।'

उत्प्रेक्षा:—'कुण्डल की अलक झलक।'

विभावना:—'विन करताल पखावज बाजे।'

स्वभावोक्ति:—'बसो मोरे नैनन में नंदलाल।'

भाषा:—मीरां के पद ब्रज भाषा में है जो स्थान २ पर राजस्थानी से मिश्रित है और शुद्ध गुजराती में भी मिलते हैं। कहीं २ पर पंजाबी और खड़ी बोली के प्रयोग भी देखे जाते हैं। कबीर साहिब आदि की रचनाओं की ही भांति मीरां के पदों के विषय में भी यह कहना कठिन है कि जिस रूप में वे पाये जाते हैं ठीक उसी रूप में वे रचे गये थे।

उप संहार:—मीरांबाई राजस्थान की प्रमुख भक्त कवियित्रि थीं। भक्तिकाल के किसी भी प्रमुख कवि और कवियित्रि से उनकी तुलना की जा सकती है। उनकी भक्ति का आदर्श अत्यंत ऊंचा था। उनके 'परम भाव' का निर्वाह किसी साधारण भक्त के वश की बात नहीं।

यदि पुरुष है तो उस पर अस्वाभाविकता का आरोप होगा और स्त्री को अपने ही समाज द्वारा लांछित होना पड़ेगा। मीरां को भी इसके कारण विकट यातनाएँ झेलनी पड़ी, किन्तु वे अपनी धुन की पक्की होने से बराबर आपत्तियों की अवहेलना करती रहीं। मीरां ने जो कुछ कहा वह उनकी आन्तरिक अनुभूति की तीव्रता के कारण रागमय होकर गीत के रूप में निकला।

दादू दयाल

सन्त साहित्य में दादू का महत्त्व पूर्ण स्थान है। इन का जन्म सं. १६५८ में हुआ अतः अकबर के समकालीन थे। दादू के एक शिष्य ने लिखा है कि अकबर और दादू में धार्मिक वार्तालाप हुआ करता था।[1] दादू पंथियों के अनुसार यह गुजराती ब्राह्मण थे, पर जनश्रुति इन्हें धुनियां मानती है और सुधाकर द्विवेदीने मोची जाति के बताया है।

दादू का जन्म अहमदाबाद में हुआ था पर इन्होंने अपने जीवन का विशेष समय राजस्थान के नराना और भराना नामक स्थानों में व्यतीत किया। इन की पहली स्त्री की मृत्यु होने पर दादू वैरागी होगये। इन का पहला नाम महाबली था, पर अत्यन्त दयालु प्रकृति होने के कारण लोग इन्हे 'दादू दयाल' नाम से पुकारने लगे।

दादू ने एक अलग पंथ का निर्माण किया जो 'दादू पंथ' नाम से विख्यात हुआ। यह पंथ दो भागों में विभाजित हुआ एक भाग में वे साधु हैं जो संसार से विरक्त होकर गेरुआ वस्त्र धारण करते हैं, और दूसरे में वे जो श्वेत वस्त्र पहनते और व्यापार करते हैं। इन दोनों भागों में ५२ सिद्ध पीठ हैं जो अखाड़ों के नाम से पंथ में प्रसिद्ध हैं।

इन के सिद्धान्त कबीर के सिद्धान्तों से मिलते हुए भी अपनी विशेषता रखते हैं। इन के पदों में कबीर की भांति चेतावनी का अंश अत्यधिक है और हिन्दू मुसलमानों की एकयता का प्रयास भी इन का कबीर की भांति हुआ। कबीर के दृष्टि कोण के अनुसार ही इन की रचना के विभिन्न अंग हैं, जिन में आध्यात्मिक वातावरण उत्पन्न करने की अनुपम उपादेयता है।

दादू ने कई हजार पद्यों की रचना की जिन में से अधिकांश साधु संतों की स्मृति में हैं, ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं।

---

१. इन्फ्लुएन्स आफ इस्लाम और इण्डियन कल्चर – पृ. १८५ डा. ताराचन्द।

दादू ने धर्म के सभी अंगों पर प्रकाश डाला है। कबीर की भाँति इन के पदों में मूर्ति पूजा, जाति, आचार, तीर्थ व्रत और अवतार आदि विषयों पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। ऐसे ही इन्होंने गुरु का महत्त्व भी अत्यन्त उत्कृष्ट बताया है, कहते हैं बिना गुरु के आत्मा वश में नहीं आ सकती। पशु पक्षी और वृक्ष आदि को महत्त्व प्रदान करते हुए दादू कहते हैं कि–यदि ठीक गुरु प्राप्त न हो तो पशु पक्षी और वृक्षों को ही गुरु मान सकते हैं, क्योंकि ये मनुष्य से अधिक पवित्र और सच्चे हैं, और ईश्वर की व्याप्ति इन में है ही।

डा. ताराचन्द के अनुसार दादू ने सूफी मत की व्याख्या अधिक सफलता से की है, सम्भवतया कमाल के शिष्य होने के कारण।

गासीद तासी के अनुसार दादू रामानन्द की शिष्य परम्परा में छठे शिष्य थे जिन का क्रम है :—

रामानन्द - कबीर - कमाल - जमाल - विमल - बुड्ढन और दादू।

दादू के ५२ शिष्य थे - प्रत्येक शिष्य के द्वारा स्थापित दादू पन्थ के ५२ दादू द्वार हैं। दादू पन्थी गृहस्थाश्रम स्वीकार करने पर सेवक कहलाते हैं और वैरागी अवस्था में दादू पन्थी। वैरागियों के पांच भेद हैं :– (१) खालसा (२) नागा (३) उत्तरादी (४) विरक्त (५) खाकी। दादू द्वार में 'दादू बानी' की पूजा मन्दिर की मूर्ति के समान ही की जाती है। राजस्थान दादू पन्थ का केन्द्र स्थान है।

श्री गुरुनानक

सिख सम्प्रदाय के संस्थापक श्री नानक देव के सम्बन्ध में अनेक विवरण और जन्म साखियां हैं, जिन से उनके जीवन पर प्रकाश डाला जा सकता है। ये जन्म साखियां अधिकतर पञ्जाबी भाषा और गुरुमुखी लिपि में हैं। इन जन्म साखियों में से अस्पष्ट और अतिशयोक्ति पूर्ण बातों को निकाल कर गुरु नानक का जीवन वृत्त इस प्रकार है —

श्री नानक का जन्म लाहौर से ३० मील दूर तलवण्डी नामक स्थान में एक किसान के घर हुआ था जो पटवारी था और कुछ महाजनी भी करता था। अतः बचपन से ही प्रकृति के विस्तृत प्रांगण में व्यतीत होने के कारण छुटपन से ही नानक मौन रह कर विचार मग्न रहते थे, और साधु व फकीरों का संग भी करते थे, जिससे इन के पिता इन से बहुत रुष्ट रहते थे। उन्होंने इन्हें नौकरी करने के लिये सुलतानपुर भेज दिया

इस बीच इन का विवाह भी हो गया था, और श्रीचन्द व लखमीदास दो पुत्र हुए ।

नानक के कमाए हुए धन का बहुत सा भाग साधुओं की सेवा में लगता था । वह दिन भर काम करते और रात को गीत बना कर गाया करते थे ; इन का मित्र मरदाना रवाब बजाया करता था ।

एक दिन नदी में स्नान करते समय इन्हें आत्म ज्ञान हुआ और इन्होंने ईश्वर की विभूति देखी । उसी समय से उन्होंने नौकरी छोड़ कर पर्य्यटन प्रारम्भ किया । मरदाना के साथ इन्होंने चारों दिशाओं में बड़ी २ यात्राएँ की और गा गा कर अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया । अंत में सं. १५९५ में इन्होंने करतारपुर आकर अपने परिजनों के बीच में महा प्रस्थान किया । १

नानक के दार्शनिक सिद्धान्त अधिकांश में कबीर से मिलते हैं, जिन का विवरण इस प्रकार है :—

१. एकेश्वर वाद ।
२. हिन्दू मुसलमानों में अभिन्नता
३. मूर्ति पूजा विरोध ।

गुरु नानक की रचना सिक्खों के गुरु ग्रन्थ सहब में संग्रहीत है ।

जे० डब्ल्यू यङ्गसन को प्राप्त अमृतसर-की एक जन्म साखी [२] के अनुसार गुरु नानक महाराज जनक के अवतार थे । प्रारम्भ में कथा है कि राजा जनक ने एकबार नर्क की यात्रा की थी और अपने पुण्य से सतयुग, त्रेता और द्वापर के पापियों का उद्धार किया था । वे उस समय कलयुग के पापियों का उद्धार नहीं कर पाये थे, अतः तद्‌निर्मित्त कलयुग में गुरु नानक के रूप में अवतरित हुए ।

---

१. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डा. रामकुमार वर्मा

२. एन्साइक्लो पीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स वोल ९ पृ. १८१

भक्ति कालीन अन्य कविगण

(१) ज्ञानाश्रयी शाखा

नाम	रचनाकाल संवत्	रचनाएँ	विशेष विवरण
१. शेख फरीद	१२३०	फुटकर पद	ये प्रसिद्ध मुसलमान संत थे - कई भाषाओं में रचना की ।
२. शेखफरीद सानी	१५५०	,,	
३. धर्मदास	१५७५	,,	कबीरदास के शिष्य थे उनके परलोक वास पर इन्हें ही गद्दी मिली ।
४. रैदास	१६००	संतबानी सीरीज़	रामानन्द जी के बारह शिष्यों में से माने जाते हैं, जाति के चमार थे ।
५. दादू दयाल	१६०६ से १६६० तक	फुटकर पद	कबीर के मार्ग के अनुयायी थे, पर इन्होंने एक नया पंथ चलाया जो दादू पंथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।
६. सुन्दरदास	१६५३ से १७४६ तक	सुन्दर विलास	दादू दयाल के शिष्य थे , उनके देहान्त पर राजपूताना नगर में रहने लगे और फिर काशी चले गये, पर देहान्त सांगानेर में हुआ । ये इस पंथ के सुशिक्षित कवि थे ।
७. मलूकदास	१६३१-१७३६	रत्नखान और ज्ञान बोध	निर्गुण मत के नामी संत थे । इन की गद्दियां कड़ा, जयपुर, गुजरात मुलतान, पटना, नैपाल और काबुल तक में स्थापित हुई ।

८. अक्षर अनन्य	१७६७	राजयोग, विज्ञानयोग, ध्यान योग, सिद्धान्त योग, विवेक दीपिका, ब्रह्म ज्ञान, अनन्य प्रकाश	ये बड़े विद्वान् और वेदांत के अच्छे ज्ञाता थे। कुछ दिनों दतिया रियासत में पृथ्वीचन्द के दीवान रहे फिर विरक्त होकर जंगल चले गये।

(२) प्रेम मार्गी (सूफी) शाखा

नाम	रचनाकाल संवत्	रचनाएं	विशेष विवरण
१. कुतबन	१५५०	मृगावती	चिश्ती वंश के शेख बुरहान के शिष्य थे और जोनपुर के बादशाह हुसैनशाह के आश्रित।
२. मंझन	१५५०-१५९५ के लगभग	मधु मालती	इन के सम्बंध में कुछ ज्ञान नहीं, केवल ग्रन्थ की एक खंडित प्रति मिली है।
३. उसमान	१६१३	चित्रावली	शाहनिजामुद्दीन चिश्ती की शिष्य परंपरा में हाजीबाबा के शिष्य थे।
४. शेखनबी	१६७६	ज्ञानदीप	जौनपुर जिले में मऊ नामक स्थान के रहने वाले थे - इनके साथ प्रेम मार्गी सूफी कवियों की प्रचुरता की समाप्ति समझनी चाहिये।
५. कासिमशाह	१७७८	हंसजवाहिर कहानी	दरियाबाद (बारह पैंकी) के रहने वाले थे।
६. नूरमुहम्मद	१८०१	इन्द्रावती और कई फारसी की पुस्तकें	दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह के समय में हुए और जौनपुर आजमगढ़ की सरहद पर स्थित सबरहद के रहने वाले थे।

(३) सगुण धारा

(क) राम भक्ति शाखा ।

नाम	संवत्	रचनाएँ	विशेष विवरण
१. स्वामी अग्रदास	१६३२	हितोपदेश उपखाणा बावनी, ध्यानमंजरी, राम ध्यान मंजरी और कुंडलिया ।	इन की कविता कृष्णोपासक नंददास जी की कविता के ढंग की है।
२. नाभादास जी	१६५७	भक्त माल अष्टयाम	अग्रदासजी के शिष्य और साधु सेवी थे।
३. प्राणचन्द चौहान	१६६७	रामायण महानाटक	—
४. हृदयराम	१६८०	भाषा हनुमनाटक	पंजाब के रहने वाले और कृष्णदास के पुत्र थे।
५. राम चरणदास	१६०४	लोमश संहिता हनुमत्संहिता अमर रामायण, भुशुंडी रामायण, महा रामायण, कोशल खंड, राम नवरत्न, महा रासोत्सव,	राम भक्ति मार्ग में शृंगारिक भावना का अनर्गल प्रवेश होने लगा था - इस भावना के मुख्य प्रवर्तक यही थे। इन्होंने स्वमुखी शाखा चलाई।
६. प्रियादास	१७०२	भक्त माल पर टीका	
७. युगलानन्द शरण	१८ वीं शताब्दी	स्फुट पद	इन्होंने सखी भाव की स्थापना करके तत्सुखी सम्प्रदाय चलाया।
८. राम प्रिया शरण	१८ वीं	,,	इन्होंने सीतायन सम्प्रदाय की स्थापना की।
९. सुथरादास	१६४०	'मलूक परिचय'	ये बाबा मलूकदास के शिष्य थे और उन्हीं के सिद्धान्तों का प्रचार करते थे।
१०. बीरभान	१६६०		ये रैदास की संत परंपरा में ऊधोदास के शिष्य हुए। इन के

			पंथ का नाम सतनामी है, जिस में जाति बंधन नहीं, न मूर्ति पूजा के लिये स्थान है।
११. लालदास	१७००	—	ये अलवर के निवासी थे कबीर के सिद्धान्तों के आधार पर ही उपदेश करते थे- इन्होंने लालदासी पंथ की स्थापना की जिसके अनुयायी गृहस्थाश्रम का पालन कर सकते हैं। इन की वाणी में उपदेश संगृहीत हैं।
१२. बाबालाल	१७००		ये मालवा के क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुए थे। दारा शिकोह इन का शिष्य था जो अनेक धार्मिक समस्याओं पर इन का परामर्श लेता था फारसी ग्रन्थ 'नादिर उन नुकात' में यह निर्देश गुरु शिष्य वार्तालाप रूप में है।
१३. हरिदास	१७००		ये नारायणी पंथ के प्रवर्त्तक थे - इस पंथ में ईश्वर की साकार भावना नहीं है।
१४. स्वामी प्राणनाथ	१७१०	"कुलजम स्वरूप"	ये बुन्देल खंड के सब से बड़े और प्रभावशाली सन्त थे। इन्होंने पर्यटन कर कर के अन्य परम्पराओं के विरुद्ध निर्भीक प्रचार किया।

			इन के दो सम्प्रदाय 'प्रनामी और धामी'
१५. रज्जब	१७१०	'छप्पय'	ये दादू पंथी सन्त थे, अपनी पुस्तक में इस पंथ के सिद्धान्तों का सरलता से वर्णन किया है ।
१६. धरनीदास	१७१३	'प्रेम प्रकाश', 'सत्य प्रकाश'	ये सर्वमान्य सुन्दर कवि और सच्चे भक्त थे - इनकी भाषा पर पूर्वी प्रसाद लक्षित है इनकी फारसी की रचना 'अलिफनामा' भी सुन्दर हुई है ।
१७. यारी साहब	१७२५	" साखियाँ लिखी है और फारसी का ककहरा	इन की रचनाओं में सरल और सुन्दर ढंग से निर्गुण ब्रह्म का निरूपण हुआ है । इन के कवित्त और झूलने भी सरसता के लिये प्रसिद्ध हैं ।
१८. दरिया साहब	१७३३	अधिकातर साखियाँ लिखी हैं	ये मारवाड़ में जैतारन के निवासी और जाति के धुनियाँ थे ।
१९. बुल्ला साहब	१७५०	फुटकर पद	ये यारी साहब के शिष्य थे हठ योग में इन की विशेष आस्था है ।
२०. गुलाल साहब	१७५०	फुटकर पद	ये बुल्ला साहब के शिष्य थे इन्होंने गृहस्थाश्रम में रहते हुए अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया ।

(ख) कृष्ण भक्ति शाखा

संख्या	नाम	रचना काल	रचनाएँ	
१	नन्ददास	१६ वीं शताब्दी के अन्त में तिथि संदिग्ध	(१) अनेकार्थ भाषा (२) अनेकार्थ मंजरी (३) जोग लीला (४) दसम सम्बन्ध भगवत का पद्यमय अनुवाद (५) नाम चिन्तामणि माला (६) नाम माला (नामो ना कोष) (७) नाम मंजरी (अवमाम वाची शब्द कोष) (८) नासिकेत पुराण भाषा (९) पञ्चाध्यायी (१०) विरह मंजरी (११) भवँरगीत (१२) रस मंजरी (१३) राजनीति हितोपदेश (१४) रुकमणि मंगल (१५) श्याम सगाई (१६) मान मंजरी नाम माला (कोष)	
२.	परमानन्द दास	१६०७ के लगभग	ध्रुव चरित्र और दान लीला एवम् पद संग्रह	
३.	कुंभनदास	" "	केवल फुटकर पद पाये जाते हैं।	
४.	चतुर्भुजदास	—	द्वादशयस, भक्ति प्रताप, हितजू को मंगल	
५.	छीत स्वामी	१६१२	केवल स्फुट पद	अष्ट छाप के कवियों में आदरणीय स्थान है।

६.	गोविन्द स्वामी	१६१२	केवल स्फुट पद	
७.	हितहरि वंश	१६००-१६४०	राधासुधानिधि, हित चौरासी फुटकलावानी	आप राधावल्ल भी सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। सं० १५८२ में इन्होंने वृन्दावन में राधा वल्लभ जी की मूर्ति स्थापित की। ब्रज भाषा काव्य प्रसार में इनके द्वारा बड़ी सहायता पहुँचाई गई है। ये दक्षिणी ब्राह्मण थे। संस्कृत के पंडित होने के कारण शब्दों पर इनके विस्तृत अधिकार थे इन की पद विन्यास अति सुन्दर है।
८.	श्री गदाधर भट्ट	सं. १५८०-१६००	स्फुट पद	ये दक्षिणी ब्राह्मण थे। संस्कृत के पंडित होने के कारण शब्दों पर इनका पूर्ण अधिक.र था इनका पद विन्यास अति सुन्दर है।
६.	स्वामी हरिदास	१६००-१६१७	स्वामी हरिदास जी को ग्रन्थ, स्वामी हरिदास जी के पद, हरिदास जी की वानी।	यह महात्मा वृन्दावन में निम्बार्क मतान्तर्गत टट्टी सम्प्रदाय के संस्थापक थे और अकबर के समय में एक सिद्ध भक्त और संगीत कला को भली भांति जानते थे।

१०.	निपट निरंजन			
११.	लक्ष्मी नारायण			
१२.	पुहकर कवि	१६७३ के लगभग	रस रतन	इनकी रचना जायसी आदि सूफी कवियों की भांति प्रेम कथा लेकर प्रवन्ध काव्य की पद्धित पर हुई, जिसमें संयोग और वियोग की विविध दशाअ का साहित्य की रीति पर वर्णन है ।
१३.	गणेश मिश्र			
१४.	लालचन्द या लक्षोदय	१७०० के लगभग	पद्मिनी चरित्र लिखी (प्रवन्ध काव्य)	इस ग्रन्थ में राजा रत्नसेन और पद्मिनी की कथा का राजस्थानी मिली भाषा में वर्णन है
१५.	वनारसीदास	१७ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध	१२ पुस्तकें लिखी वनारसी विलास, (फुटकल कवित्तों का संग्रह), नाटक समय सार(कुंदकंदाचार्य कृत ग्रन्थ का सार) नाम माला (कोश) अर्द्ध कथानक वनारसी पद्धति, मोक्ष पदी, ध्रुव वंदना, कल्याण मन्दिर भाषा, वेद निर्णय पंचाशिका मारगन विद्या ।	यह जौधपुर के रहने वाले एक जैन जोहरी थे । पहले यह शृंगार रस की कविता किया करते थे, पर पीछे ज्ञान होने पर ज्ञानोपदेश पूर्ण कविताएं करने लगे ।
१६.	सुन्दरदास	१६८८ के लगभग	सुन्दर शृंगार सिंहासन बत्तीसी बारह मासा	यह ग्वालियर के ब्राह्मण थे और शाहजहाँ के दरबार में कविता सुनाया करते थे इन्हें

				बादशाह ने कविराय और महा कविराय की उपाधि दी थी ।
१७.	सूरदास मदनमोहन	१५६०-१६००	फुटकर पद	ये अकबर के समय में संडोले के अमीन थे, जाति के ब्राह्मण और गौड़ीय सम्प्रदाय के वैष्णव थे । इनके पास जो कुछ भी आता साधुओं की सेवा में लगा दिया करते थे ।
१८.	श्रीभट्ट	१६२५	'युगल शतक' आदि बानी	ये निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान केशव काश्मीरी के प्रधान शिष्य थे । इनकी कविता सीधी सादी और चलती भाषा में है । पद भी प्रायः छोटे २ हैं ।
१९.	हरीराम व्यासजी	१६२०	ज्ञान वैराग्य और भक्ति के पद व साखियाँ तथा रास पेचा ध्यायी	ये हित हरिवंश के शिष्य थे कृष्ण की बाल भक्ति और शृंगार लीला में लीन रहने पर भी बीच बीच में संसार पर ही डाला करते थे, प्रेम को इन्होंने शरीर व्यवहार से अलग अतन अवति शुद्ध मानसिक या आध्याकिक वस्तु कहा है ।
२०.	रसखान	१६७१	प्रेम वाटिका और सुजान रसखान थे ।	ये बड़े प्रेमी जीव और प्रेम ही अत्यन्त गूढ

				भगवद्भक्ति में परिणत हो गया ।
२१.	ध्रुवदास	१६६०-१७००	इनके छोटे मोटे सब चालीस ग्रन्थ मिले हैं। वृन्दावन सत, सिंगार सत, रस रत्नावली, नेह मंजरी, रहस्य मंजरी, सुख मंजरी, रति मंजरी, बन विहार, रंग विहार, रस विहार, आनन्द दसा विनोद, रंग विनोद, नृत्य विलास, रंग हुलास, मान रस लीला रहस लता, प्रेम लता, प्रेमावली, भजन कुंडलिया, भक्त नामावली, मनसिगार, भजन सत, प्रीती चौवनी, रस मुक्तावली, वाभगवृहत पुराण की भाषा, सभा मंडली, रसानन्द लीला, सिद्धान्त विचार, रस हीरावली, हित सिंगार लीला, ब्रज लीला, आनंद लता, अनुराग लता, जीव दशा, वैद्य लीला, दान लीला, व्याहलो ।	कृष्णोपासक भक्त कवियों की परम्परा में अन्तिम कवि थे - ये श्रीहित हरि वंश के शिष्य स्वप्न में हुए थे।
२२.	महाराज बीरबल	१६३२	कई सौ कवित्तों का संग्रह भरतपुर में है	महाराज बीरबल अकबर के बड़े ही वाक्चतुर और प्रत्युत्जमाते मंत्री थे । ब्रज भाषा में इन्होंने अच्छी

				कविता की और अन्य कवियों का उदारता से सम्मान करते थे।
२३.	मनोहर कवि	१६२० के पश्चात्	शतप्रश्नोत्तरी और शृंगार रस के फुटकर दोहे।	यह अकबर के दरबार में रहने वाले एक कछवाहे सरदार थे-संस्कृत और फारसी के विद्वान थे।
२४.	गंगा	विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी	फुटकर कवित्त	ये अकबर के दरबारी कवि थे और अत्यन्त निर्भीक होकर बातें कहते थे। ये अपने समय के नरकाव्य करने वाले कवियों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं।
२५.	बलभद्र मिश्र	१६४० के पहले	'नखशिख' बलभद्री 'व्याकरण' हनुमन नाटक' गोवर्धन सतसई' और भूषण विचार।	यह केशवदास के समकालीन रीति के अनुसार काव्य रचना करने वाले कवियों में से थे।
२६.	जमाल	१६२७	कुछ संग्रहीत दोहे।	यह भारतीय काव्य परम्परा से पूर्ण परिचित एक सहृदय मुसलमान कवि थे।
२७.	कादिर	१६६० के आस पास	फुटकर कवित्त	यह बिदानी जिला हरदोई के रहने वाले और सैयद इब्राहम के शिष्य थे।
२८.	मुबारक	१६७० के पीछे	'अलक शतक और तिल शतक	ये संस्कृत फारसी और अरबी के अच्छे पण्डित और हिन्दी के सहृदय कवि थे। यह

			केवल शृंगार की कविता करते थे ।
२९. रहीम	१७ वीं शताब्दी	रहीम दोहावली 'नायिका भेद' 'शृंगार सोरठ' मदनाष्टक और रास पंचाध्यायी ।	ये वैरमखां खान खाना के पुत्र थे - संस्कृत अरबी और फारसी के पूर्ण विद्वान एवम् हिन्दी काव्य के पूर्ण मर्मज्ञ थे ।
३०. छीहल	१५७५	पञ्च सहेली और बावनी	ये राजपूताने की ओर के थे। इनकी रचना में भी राजस्थानी भाषा का मेल है ।
३१. लालचदास	१५८५-१५८७	हरि चरित्र भगवत् दशम स्कंध भाषा	ये रायबरेली के एक हलवाई थे। इनकी पुस्तकें अवधी मिश्रित भाषा में रची गई ।
३२. कृपाराम	१५९८	हित तरंगिणी	इनकी रचना दोहों के रूप में रीति ग्रंथ है।
३३. महापात्र नरहरि वंदीजन	१६०० और १६६७ के मध्य	रुक्मणि मंगल छप्पय नीति और कवित्त संग्रह	ये असली फतहपुर के रहने वाले थे। इन्हें अकबर के दरबार से महाराज की उपाधि मिली थी ।
३४. नरोत्तमदास	१६०२ के लगभग	सुदामा चरित्र, ध्रुव चरित्र (खण्ड काव्य)	यह सीतापुर जिले के वाड़ी नामक कसबे के रहने वाले थे ।
३५. आलम	१६३९ के लगभग	"माधवानता काम कंदला" (प्रेम कहानी)	यह अकबर के समय के एक मुसलमान कवि थे। इनकी रचना शृंगार रस की दृष्टि से हुई प्रतीत होती है।

३६. तेजूमल	१६०० से १६४६ के मध्य	फुटकर कवित्त	यह अकबर के समय में भूमि विभाग के मंत्री हुए। इन्होंने शाही दफ्तरों में हिन्दी के स्थान पर फारसी का प्रचार किया।

(घ) रीति काल और उसके प्रतिनिधि कवि (सं० १७०० से १६०० तक)

वैभवशाली मुगल दरबारों के शानो-शौकत की सस्ती नकल उनके कृपा कटाक्षों पर जीवित रहने वाले हिन्दु राजाओं ने भी उतारनी शुरू की। उनका भी दरबार लगने लगा और पहले राजाओं के चारणों, भाटों और कवियों की भांति राजकवि रखे जाने लगे। पराजित राजा के दरबारी कवि वीरता के गीत क्या गाते ? जैसा उनके आश्रयदाताओं का मानसिक और सांस्कृतिक स्तर था उसी प्रकार की शृंगारी रचनायें ऐसे कवियों ने की। शब्द-अर्थ का चमत्कार दिखाकर चकित करने की प्रवृत्ति ने इन कवियों को अन्तिम दिनों के संस्कृत साहित्य और रस.सम्प्रदाय को आदर्श बनाने को प्रेरित किया। प्राचीन संस्कृत के साहित्याचार्य्यों की भांति इन कवियों ने लक्षण ग्रन्थों की सृष्टि की परन्तु उदाहरण के रूप में स्वयं की रचनायें रख कर अपना कवित्व भी कायम रखा।

भक्ति कालीन कवियों द्वारा हिन्दी काव्य पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त हो चुका था। इसी समय मोहनलाल मिश्र का "शृंगार सागर" एवम् नरहरि कवि के साथी करनेस कवि ने "करण भरण, भूप भूषण तथा श्रुति भूषण" अलंकार संबंधी ग्रन्थ निकाले। केशव ने काव्य के सब अंगों का निरूपण शास्त्रीय पद्धति पर किया। इस प्रकार रीति ग्रन्थों की रचनाएँ होने के कारण इस युग का नाम रीति काल पड़ गया।

परिस्थितियां:—जहांगीर और शाहजहां के राज्य काल में राज्य के वैभव ने कला को प्रोत्साहन दिया। कवियों को राजाओं द्वारा संरक्षण प्राप्त हुआ, परन्तु इस संरक्षण के कारण जो साहित्य की सर्जना हुई वह भोग विलास की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देने वाला था। राज दर्बार के प्रतिष्ठित लोग ही कविता करते थे, हास, विलास और रास तक ही इनका जीवन सीमित था, वही कविता में उतर आया। धर्म से लोगों की आस्था हट गई, पार्थिव प्रेम में ही कवि लोग निरत हो गये। कृष्ण

ओर राधा के प्रेम में भी पार्थिव आकर्षण की बू आ गई। ऐतिहासिकता मूलक शृंगार की चेष्टाओं और प्रेम की रसमयी क्रीड़ाओं के वर्णन की जो संस्कृत की परम्परा थी उससे कवि गण प्रभावित हुए।

आजकल की तरह साहित्य के पठन पाठन का रिवाज उस युग में न था। भक्ति काल में कविता का क्षेत्र मन्दिर था, रीति काल में दर्बार की आवश्यकता पूर्ति के अनुसार ही कविता सृजन होने लगी। पांडित्य और चमत्कार प्रदर्शन का प्रचार बढ़ गया। संस्कृत के ग्रन्थ टटोले जाने लगे। भावानुप्रेरित होने के स्थान पर बहुत कुछ प्रयत्न साध्य होने लगे।

विशेषताएं:—राधा और कृष्ण को आलम्बन तथा आश्रय मान कर कवि लोग अपनी वासनाओं की अभिव्यक्ति करने लगे। फल स्वरूप शृंगार ही रीतिकालीन काव्य का मुख्य विषय हो गया। काव्य का परम लक्ष्य जीवन के गम्भीर तत्वों की अभिव्यंजना को भुला दिया गया, कवियों की दृष्टि संकुचित हो गई। नर नारी के अनेकों सम्बन्धों में से केवल एक ही सम्बन्ध पर इनकी दृष्टि रही। कृष्ण से लेकर भिखारी तक, राधा से लेकर धोबिन तक नायक नायिका बन गये। भूषण और लाल के अतिरिक्त किसी को शिवाजी के पराक्रम, भीम, अर्जुन के वीरत्व तथा युधिष्ठिर और हरिश्चन्द्र की सात्विकता के दर्शन न हुए। रीति कालीन ग्रन्थों की इस परम्परा द्वारा साहित्य के विस्तृत विकास में बाधा पड़ी। इस काल में एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हो जानी चाहिये थी सो न हुई। प्रकृति की अनेक रूपता जीवन की विभिन्न चिन्त्य बातों और नाना रहस्यों की ओर कवियों की दृष्टि न जाने पाई।

शृंगार रस के एक अंग को लेकर कविता हुई, परन्तु रीति काल में शृंगारिक कविता का स्तर बहुत नीचा हो गया। भक्ति काल में राधा और सीता के प्रेम में जो गहराई है वह बिहारी द्वारा वर्णित प्रेम में नहीं मिलती। रीतिकालीन प्रेम में मानसिक भाग अधिक न होकर वासना प्रधान है। इस युग के कवि भक्ति काल वाली प्रेम की उच्च भुमि में स्थित न रह सके।

संस्कृत के रीति ग्रन्थों में शृंगारी बातें भव्य रूप में आईं थीं। बाण भट्ट जैसे उच्च काव्य उस समय सम्भव थे, परन्तु हिन्दी के रीति काल में मुसलमानों के संसर्ग से नैतिक स्तर अति निम्न हो गया था। यद्यपि रीति काल का प्रतिनिधित्व करने वाले बिहारी की रचना शृङ्गार रस प्रधान है। शृङ्गार रस की निष्पत्ति के लिये भाव, विभाव, संचारी

भाव आदि सारे आयोजित भी किये हैं, परन्तु शृंगार का वह अलौकिक रूप उनमें दृष्टि नहीं आया जो भक्ति कालीन सूर और तुलसी की रचनाओं में परिलक्षित होता है ।

रीति कालीन कविता जीवन की संदेशवाहिनी न होकर बाह्य सौंदर्य की परिधि में केन्द्रीभूत हो गई है । इन कवियों की रचनायें विशृङ्खल, निरंकुश और उद्दाम हैं । कहीं २ उच्चतिउच्च भावनाएँ कलुषित प्रसंगों के साथ खड़ी हैं— बिहारी के निम्न लिखित दोहे में पुत्र के प्रति लक्षित किये सात्विक स्नेह में भी शृंगार की दुर्गन्ध है:—

"बिहँसि बुलाई बिलोकि उन प्रौढ़ लिया रस चूमि ।
पुलकि पसीजती पुत्र को प्रिय चूम्यो मुख भूमि ।।"

कहीं उपमा और उत्प्रेक्षाओं के बोझ से भाव दब गया है तो कहीं श्लेष की ऊटपटांग योजना दृष्टि आती है ।

प्रकृति चित्रण:—प्रकृति के रम्य चित्रों में रीति कालीन कवियों को कोई आकर्षण नहीं रह गया था । अलंकार के उदाहरण अथवा वासना उद्दीपन मात्र के लिये ही वे प्रकृति को अपना विषय बनाते थे । उद्दीपन के ही रूप में षट्ऋतु का वर्णन हुआ है ।

रीति ग्रन्थों के कर्त्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे । उनकी रचनाओं में रसों और अलंकारों के सरस एवम् हृदय ग्राही उदाहरण मिलते हैं । उनका भी नायिका भेद की ओर झुकाव अधिक है । शृंगार रस में मुक्तक रचना सुन्दर हुई है । नायिका के नख–शिख वर्णन का सुन्दर रूप बिहारी के दोहों में मिलता है ।

भाषा:—भाषा की दृष्टि से रीति काल में बड़े अभाव की पूर्ति हो जानी चाहिये थी, सो न हुई । जिस समय भाषा सैकड़ों कवियों द्वारा परिमार्जित होकर प्रौढ़ता को पहुँची, उसी समय व्याकरण द्वारा उसकी व्यवस्था होनी चाहिये थी, जिससे भाषा के कवियों में पाये जाने वाला दोष न रहने पाये । भाषा की गड़बड़ी का एक कारण ब्रज और अवधी का था । सूर की भाषा में पूर्वी का प्रयोग हुआ, बिहारी, 'कीन', 'दीन', आदि शब्दों के अवधि प्रयोग अधिक हैं ।

छन्द:—रीति कालीन कवियों के प्रिय छन्द, सवैया और दोहा थे । मुक्तक ही काव्य का एक रूप था । इस युग की कविता शृंगार और

वीर रस प्रधान हुई । शृंगार में अश्लीलता का प्रयोग अपने आश्रयदाता राजाओं की रुचि के कारण हुआ ।

मुख्य कविः—केशव, सेनापति, देव, बिहारी, भूषण और मतिराम आदि रीति काल के प्रमुख कवि हुए, जिनमें केशव की रामचन्द्रिका के अतिरिक्त प्रबन्ध काव्य की रचना किसी ने नहीं की। रामचंद्रिका में भी प्रबन्ध काव्य के लक्षणों का बहुत कुछ अभाव होने के कारण उसे वास्तविक प्रबन्ध काव्य नहीं माना जाता ।

आचार्य्य केशवदास

हिंदी साहित्य में रीति ग्रन्थों की परम्परा स्थापित करने का श्रेय आचार्य्य केशवदास को है । यद्यपि इन से पूर्व कई रस और अलङ्कार आदि के ग्रन्थों की रचना हो चुकी थी, परन्तु विधि पूर्वक साहित्य शास्त्र की विवेचना करके उस में वर्णित सारे काव्यांगो का वर्णन केशव ने ही किया ; अतः इन्हें हिंदी में आचार्य्यत्व की स्थापना करने वाला रीति काल का प्रथम कवि माना जाता है। काल विभाग से और रामचन्द्रिका लिखने के कारण इन्हें प्रायः भक्ति काल में स्थान मिलता है, परन्तु रामचन्द्रिका को यदि बिहारी सतसई की भांति अलङ्कारों का उदाहरण ग्रन्थ मान लें तो वह भी रीति ग्रन्थों में सम्मलित हो जाती है, छन्दों का बाहुल्य भी उस में है ही ।

आचार्य्य केशव सनाढ्य कुल के पं. काशीनाथ के पुत्र थे, इनका जन्म सं. १६१२ और मृत्यु सं. १६७४ माना जाता है । केशव के पिता ओरछा नरेश के भाई श्री इन्द्रजीतसिंह के दरबार में रहते थे जो उन्हें गुरु की भांति मानते थे । इन के वंश में संस्कृत के पठन पाठन की परम्परा पहले से चली आ रही थी, अतः केशव का भी साहित्य का विद्वान होना स्वाभाविक ही था । जीविका की चिन्ता से मुक्त रहने के कारण अध्ययन भी विशेष कर सके, रुपये का मोह तो आप को छू कर भी नहीं गया।

केशव बड़े ऐश्वर्य्य शाली रसिक जीव थे । साहित्य ज्ञान के अतिरिक्त उनका लौकिक अनुभव भी बढ़ा चढ़ा था । राजनीति, दरबारी सभ्यता और व्यवहारशीलता आदि में भी वह पूर्ण कुशल थे ।

भक्ति काल में होने के कारण इन्होंने रसिक प्रिया, कवि प्रिया और रामचन्द्रिका आदि भक्ति काव्यों की रचना की। प्रथम दो में राधा कृष्ण सम्बन्धी और अंतिम में राम सम्बन्धी कथा वर्णन है, परन्तु इन्हें भक्त कवियों की श्रेणी में नहीं रक्खा जा सकता, क्योंकि उनके यह ग्रन्थ

भी छंद और अलंकारों की निधि मात्र हैं। भक्ति पक्ष के लिये जो मर्म स्पर्शिता और भाव प्राबल्य वाञ्छनीय है वह केशव की रचना में दर्शनीय नहीं। उन के ग्रन्थों में अलंकारों को अत्यधिक महत्त्व प्राप्त हुआ है, राम चन्द्रिका अलंकारों की धुन को देख कर तो आलोचकों ने उन्हें अलंकारों के प्रेत" की उपाधि तक दे डाली।

रामचन्द्रिका केशव की सर्वप्रसिद्ध पुस्तक है। रामकथा के नाते उसे प्रबन्ध काव्य माना जाना चाहिये परन्तु प्रबन्ध काव्य के गुणों का उस में नितान्त अभाव होने के कारण उसे भी अलंकार और छंदों का उदाहरण ग्रन्थ मानना अधिक उपयुक्त समझा जाता है। हां उस से उन के राजनीति, कूट नीति, भाषण चातुर्य्य और राजसी ठाठ बाठ आदि के ज्ञान का सुन्दर प्रदर्शन हुआ है। चरित्र चित्रण में कई कमियों के होते हुए भी पात्रों के बीच संवाद अच्छे बन पड़े हैं।

'कविप्रिया' और 'रसिक प्रिया' में क्रमशः काव्य के गुण दोषों और शृंगार रस के विभिन्न अंगों का वर्णन मिलता है। 'विज्ञान गीता' में दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति है, परन्तु शुद्ध काव्य की दृष्टि से यह भी उत्तम ग्रन्थ नहीं। इनके अतिरिक्त 'रतन बावली' 'वीरसिंहदेव चरित्र', 'जहांगीर–जसचन्द्रिका' आदि रचनाएँ केशव की हैं।

शैली :– केशव के लिये कहा जाता है कि वह पहले आचार्य्य थे फिर कवि। यह बात उनकी रचनाओं के अवलोकन से अक्षरशः सत्य प्रमाणित होती है। शास्त्रीय लक्षणों को प्रधानता देने के कारण उन के ग्रन्थों में काव्यत्व दब सा गया है। आप चमत्कार वादी कवि थे, कला-पक्ष को सजाने की धुन में भाव पक्ष की दयनीय उपेक्षा हुई है। संस्कृत के लक्षण ग्रन्थों के रचयिताओं मम्मट और दण्डी आदि इन के आदर्श थे, जिन्होंने रस आदि को भी अलंकारों के अन्तर्गत समझ रक्खा था। संस्कृत के अन्य आचार्य्य विश्वनाथ और आनन्द वर्धनाचार्य्य आदि ने साहित्य शास्त्र को अधिक परिमार्जित रूप दिया - उन का केशव ने अनुसरण नहीं किया।

'राम चन्द्रिका' के सजीव और नाटकीय ढंग के कथोपकथनों से कवि का मानव प्रकृति का सुन्दर ज्ञान परिलक्षित होता है। 'रसिकप्रिया' में उक्ति वैचित्य और कल्पना शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। स्वाध्याय और पाण्डित्य के कारण केशव हिंदी में आचार्य्यत्व के प्रवर्त्तक माने गये ; पर मानव सम्बन्धों में तुलसीदास जैसी कोमलता लाने में वह सफल न हो सके। तुलसी की सीता हृदय की कोमलता के कारण राम के पदचिन्हों को बचा २ कर चलती है :–

"प्रभु पदरेख बीचबिच सीता ।
धरहि चरन मग चलति सभीता ॥"

परन्तु केशव ने सीता को राम के चरण चिन्हों पर चलने में आनन्द का अनुभव व्यंजित किया है :—

"मारग की रज तापित है अति,
केशव सीनहि शीतल लागति ।
ज्यों पदपङ्कज ऊपर पांयनि
दै जो चलै तेहि ते सुख दायिनि ॥"

केशवदास की सीता के प्रेम में तुलसी की सीता जैसी दिव्य कोमलता का दर्शन नहीं होता । मार्मिक उक्तियां भी बन पड़ी हैं पर अलङ्कार प्रियता के कारण वे कहीं २ हास्य जनक हो जाती है, जैसे सीता के मुख की सुन्दरता का वर्णन करते हुए आवेश में आकर कमल और चन्द्र का निरादर तक कर जाते हैं :—

"देखे मुख भावै, अनदेखे ही कमलचन्द ।"

इसी प्रकार एक स्थान पर उन्होंने वियोग दशा का वर्णन करते हुए रामचन्द्र जी की 'उलूक' से उपमा दी है और निकलते हुए सूर्य्य को खून का भरा घड़ा बना दिया है ।

प्रकृति चित्रण का प्रयास भी केशव ने किया है, वन, उपवन और नदी सरोवर आदि का वर्णन कवि प्रिया के उदाहरणों में है - राम चन्द्रिका में भी प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन है, पर उन में उन्हें सफलता नहीं मिली, कवि कर्म पालन मात्र हुआ है । प्रकृति निरीक्षण द्वारा जो स्वाभाविक रूप से प्रकृति प्रेम कवि में होता है उस का उन में नितान्त अभाव है। उन का प्रकृति चित्रण पुस्तकों से प्राप्त ज्ञान के आधार पर हुआ सा लगता है । प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में शब्द पाण्डित्य और आध्यात्मिक उपमाओं का प्रदर्शन दृष्टि आता है । हां कुछ उत्प्रेक्षाएं प्रकृति चित्रण में अच्छी बन पड़ी हैं । निम्न पद में चम्पा की कली के वर्णन में 'श्यामल' ज्योति सुन्दर शब्द योजना हुई है :—

"बहु चम्पक की कलि का हुलसी,
तिन पै अलि श्यामल ज्योति लसी ।"

वास्तव में अलंकार प्रधानता का दोष कवि के स्वभाव गत पाण्डित्य और हृदय गत उत्साह के कारण उत्पन्न हो गया और उसी से उनकी रचनाओं का महत्त्व कम रहा । इससे कवि के गुणों और उन के महत्त्व

को कम नहीं किया जा सकता । केशव एक प्रतिभाशाली रसिक हृदय कवि थे - रीति परम्परा की स्थापना हिन्दी साहित्य के लिये उन की अनुपम देन है ।

भाषा और छंद :- आचार्य केशव की भाषा ब्रज थी, जिस में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है । श्लेषालंकार की प्रधानता संस्कृत शब्दावली के बल पर ही सफल हो सकी । उन की भाषा में बुन्देलखण्डी शब्दों का भी समावेश है । पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति के कारण उनकी भाषा में रसात्मकता और सरलता न आने पाई ; वह क्लिष्ट सी दृष्टि आती है जो कहीं २ कर्णकटु भी हो गई है । हां मुहावरों के चमत्कार पूर्ण आलंकारिक प्रयोग हुए हैं । ब्रज भाषा के कुछ अप्रचलित शब्दों के प्रयोग भी दर्शनीय है, जैसे 'नौ, लाव' इत्यादि ।

छंदों की योजना केशव की अद्भुत बन पड़ी है, संस्कृत का कोई छंद आप के द्वारा प्रयोग से मुक्त न रहा । रामचन्द्रिका में छंद और अलंकारों की तो मानों प्रदर्शिनी लगी है । एक ही छंद में प्रश्नोत्तर प्रणाली का सुन्दर चमत्कार दृष्टि आता है । किन्तु शीघ्रातिशीघ्र छन्द बदलने की आतुरता से काव्य विषय को क्षति पहुंची है ।

रस और अलंकार के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि केशव रसिक व्यक्ति थे, उन्हें सारे रसों में शृंगार रस ही मन भाया । उसी के अन्तर्गत उन्होंने अन्य रसों को भी लाने की चेष्टा की जिस में सफल न हो पाये । हां लव कुश युद्ध वर्णन में वीर रस का अच्छा प्रतिपादन हुआ है - पर करुण रस उन के हृदय में संचरित न हो पाया । सुन्दर भाव व्यंजना की क्षमता होते हुए भी उन्होंने व्यंजना और ध्वनि को महत्त्व नहीं दिया ।

अलंकारों के विषय में अधिक कहने की अपेक्षा ही नहीं - केशव अलंकारों के गुरु थे । आप के ग्रन्थ सब प्रकार के अलंकारों से भरपूर हैं । हां परिसंख्या और श्लेष अलंकारों से इन्हें विशेष प्रेम था । रूपक उत्प्रेक्षा और संदेह भ्रान्तिमान आदि के सुन्दर प्रयोग मिलते हैं ।

केशव के काव्य में अनेक अभावों के होते हुए भी उन की विद्वत्ता, सूझ बूझ एवम् व्यापक तथा गंभीर प्रतिभा प्रशंसनीय है । आप अपने ढंग के एक श्रेष्ठ कवि थे, पाण्डित्य की दृष्टि से साहित्य में उच्च स्थान प्राप्त करते हैं । यद्यपि काव्य के उदात्त गुणों की दृष्टि से सूर और तुलसी से उनकी तुलना करना हास्यप्रद सा लगता है परन्तु उनके साथ लोक मत द्वारा उन्हें दिया हुआ 'उडुगण' स्थान न्यायसंगत ही है ।

सेनापति

सेनापति का जन्म सं० १६४६ के लगभग अनूप शहर में एक काव्य कुब्ज ब्राह्मण के घर में हुआ । यह राज दर्बार में भी रहे ऐसा प्रतीत होता है, पर इन्हें दरबारी जीवन से घृणा हो गई थी तभी एक स्थान पर उन्होंने लिखा है – "वारि वर दानि तजि पाय कमलेच्छव के, पायक मलेच्छन के, काहे को कहाइये ।"

सेनापति भक्ति और रीति काल के बीच की कड़ी थे । आपका प्रादुर्भाव दोनों कालों के बीच में हुआ । अतः उन की कविता में भक्ति भावना तो है पर साथ ही रीति कालीन कलात्मक प्रवृत्ति की छाप है । उन्होंने राम की भक्ति पर बहुत से कवित्त लिखे हैं, परन्तु उनकी भक्ति भावना में भक्ति कालीन कवियों जैसी तल्लीनता और उत्कटता नहीं है । भाव पक्ष की अपेक्षा सेनापति के काव्य में अनुप्रास और श्लेष के चमत्कार की ओर कवि अधिक सतर्क प्रतीत होता है । फिर भी उन में भावुकता का अभाव नहीं था - उन का हृदय भक्ति भावना से परिपूर्ण था - रीति कालीन कवियों की प्रवृत्ति विशेष उत्पन्न नहीं हो पाई थी । सेनापति ने अपने जीवन का उत्तर काल श्री कृष्ण की क्रीड़ा भूमि वृन्दावन में बिताया, फिर भी उन का मन रामोपासना में रमा हुआ था ।

मुक्तक काव्य कारों में इन का स्थान अति श्रेष्ठ है । काव्य कल्प द्रुम और कवित्त रत्नाकर इन के दो ग्रन्थ हैं, जिन में अनुप्रास और श्लेष के चमत्कार से पूर्ण घनाक्षरी में कविता की हुई है । कवि की भाषा शुद्ध साहित्यिक ब्रज भाषा है, जिस में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग है । सेनापति के षट् ऋतु वर्णन में संस्कृत कवि परम्परा की झांकी मिलती है - इस में वह मानवी भावों के साथ प्रकृति का सामंजस्य स्थापित करने में पूर्ण सफल हुए हैं । हिंदी साहित्य मे सेनापति का षट्ऋतु वर्णन सर्वश्रेष्ठ माना जाता है । यद्यपि कवि का ध्येय इस में उद्दीपन रहा है परन्तु साथ ही उसमें संश्लिष्ट योजना और सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय मिलता है ।

'छांह को पकड़ पर पंछियों का बिरमना' और 'पौन का सीरे ठौर को पकड़ कर घाम की घड़ियाँ बिताना' आदि उनकी कल्पनाएँ बड़ी ही मन भावनी और उच्च कवि प्रतिभा की परिचायक हैं :—

"तचति धरति, जग झुर झुरनि, सीरी
छांह को पकरि पंछी पंछी बिरमत है ॥"

"मेरे जान पौन सीरे ठौर को पकरि काहू ,
घरी एक बैठि कहूं घामें वितवत है ॥"

अलंकारों की छटा सेनापति के ऋतु वर्णन में उतनी प्रबल है कि कहीं २ चमत्कार प्रदर्शन के लिये कविता की हुई सी लगने लगती है, परन्तु अधिकतर अलंकारों के अनूठे प्रयोगों से उन की कविता में प्रभाव की वृद्धि हुई है।

भक्ति काल के ढलते हुए अंगों में सेनापति का स्थान अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है ।

महाकवि देव

जीवन वृत्त :- महा कवि देव का जन्म विक्रमीय सं० १७३० में इटावे में हुआ था । आप कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और इटावा शहर के पसारी टोला बललाल पुरा में रहते थे । आप के पिता का नाम बिहारी लाल था ।

कवि वर देव सरस्वती के उन वरद पुत्रों में थे, जिन्होंने १६ वर्ष की अवस्था में ही "भाव-विलास" ऐसे सुन्दर रीति ग्रन्थ लिखने की क्षमता पाई थी ।

देव को औरङ्गजेब के द्वतीय पुत्र आजमशाह का आश्रय मिला था - वह बड़ा ही गुणज्ञ, वीर एवम् साहित्यानुरागी था । उसने देव के अष्ट याम और भाव-विलास को ध्यान पूर्वक सुना और उसकी प्रशंसा की थी।

सामयिक परिस्थितियां :- देव रीति काल के कवि है । उनके जीवन तथा कला आदि पर सामयिक परिस्थिति का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था । रीति काल की राजनीतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा कलात्मक परिस्थितियों पर एक विहंगम दृष्टि डालने से विदित होता है कि वह युग हर बात में उतार पर था । कहीं भी कोई मौलिकता या सजीवता का नाम नहीं । यही पृष्ठ भूमि का उतार इस काल के साहित्य में भी मिलता है ।

रीति काल के कवियों की प्रवृति के अनुसार देव शृङ्गारी कवि थे। अतः उनका जीवन भी कुछ इसी के निकट रहा होगा । उनकी रचनाओं के काल क्रम से प्रकट होता है कि अपने कवि जीवन के उषा काल में वे शृङ्गारी और विलासी प्रकृति के थे पर शनैःशनैः ज्यों ज्यों वे संसार के

हृदय से परिचित होते गये त्यों त्यों उनकी भावना ऊंची उठती गई और वे परम भक्त होते गये।

मृत्यु :– देव की मृत्यु के विषय में लोगों के विभिन्न मतों की छान बीन करने पर यह कहा जा सकता है कि सं० १८२५ से लगभग ६४-६५ वर्ष की अवस्था में कुसमरा के समीप उनका देहान्त हुआ।

रचनाएँ :– कहा जाता है कि देव ने ५२ ग्रन्थ बनाए। कुछ लोग उन्हें ७२ ग्रन्थों का रचयिता बताते हैं। इस अधिकता के कारण यह प्रतीत होता है कि उनके सुन्दर सुन्दर छन्द कई ग्रंथों में ज्यों के त्यों मिलते हैं। उनके २६ ग्रंथों का अब तक पता चला है। जिनमें से मुख्य ये हैं :–
भाव विलास, अष्टयाम, भवानी विलास, सुजान विनोद, राम रत्नाकर, प्रेम चन्द्रिका, रस विलास, सुख सागर तरंग, जगदर्शन पचीसी तथा देव शतक।

इनके अतिरिक्त प्रेम तरङ्ग, कुशल विलास और जाति विलास आदि कई हस्तलिखित रचनाएँ हिन्दुस्तानी एकेडमी तथा भिनगा के पुस्तकालय आदि में प्राप्त हैं। मिश्र बन्धुओं ने देव ग्रन्थावली के नाम से देव का स्फुट-काव्य-संग्रह प्रकाशित कराया था जो अब सुलभ नहीं है।

देव की रचनाएँ चतुर्मुखी हैं। यदि उनके ग्रंथों की खोज कर के साहित्यानुरागी जन, देव की रचनाओं पर प्रकाश डाले तो हिन्दी साहित्य का भण्डार भर जावे और पाठकों का अनन्त उपकार हो।

देव का कवित्व :– देव की कविता का कुछ भाग तो अलंकार पदार्थ निरूपण नायक नायिका भेद तथा गुण आदि रीति विषयों से सम्बन्ध है। शेष भाग में प्रधानता तो शृङ्गार तथा प्रेम की है, पर इनके अतिरिक्त दर्शन तथा नीति की भी कुछ बातें इनमें मिल जाती हैं। शृङ्गार और प्रेम के प्रसंग में तथा यों भी देव में चित्र बड़े सुन्दर सुन्दर मिलते हैं जिनमें प्रधानता प्रकृति दानव तथा तत्कालीन समाज के चित्रों की है।

देव प्रधानतः शृङ्गार रस के कवि हैं। वह शृङ्गार को प्रधान रस मानते थे। इतना ही नहीं, वह कहते थे सब रस इसी में हैं :—

"वहि विधि रस शृंगार में सब रस रहे समाइ"

संस्कृत के भी बहुत से आचार्य्यों ने इस रस को प्रधानता दी है। प्रथम आचार्य्य भरत ने तो यहाँ तक कहा है कि "संसार में जो कुछ पवित्र, उत्तम, उज्जवल तथा दर्शनीय है वही शृंगार है।"

देव के शृंगार में रीति कालीन अन्य कवियों की भाँति वासना की उच्छृङ्खलता नहीं अपितु प्रेम की गम्भीरता है। अन्य कवियों की भाँति परकीया के शृंगार को इन्होंने शृंगार नहीं माना है। वह शुद्ध शृङ्गार केवल दम्पति में या स्वकीया में मानते हैं, साथ ही प्रेम और विषय को बिल्कुल अलग बताया है। प्रेम का लक्षण बताते हुए कहते हैं :—

"सुख दुख में है एक रूप तन मन वचननि प्रीति
सहज बढ़ै हित चित नयो जहां सुप्रेम प्रतीति।"

वे प्रेम को अमृत से भी आकर्षक तथा सुख दुख में एक सा रहने वाला मानते हैं। उन्होंने प्रेम को बहुत ऊँचा और निश्चित स्थान देने का प्रयास किया है। आप कहते हैं — संसार का सार काव्य, काव्य का सार रस, रस का सार शृङ्गार और शृङ्गार का रस प्रेम है।

देव की तत्व चिन्तना या दार्शनिक विचारों के लिए प्रधानता उनके दो ग्रन्थ "देव माया प्रपञ्च नाटक" तथा देव शतक हैं और कुछ थोड़े से छन्द और भी हैं। एक ओर तो देव अद्वैतवादी हैं और दूसरी ओर अद्वैत वाद विरोधी भावनाओं वाले वैष्णव देव ने माया शक्ति का वर्णन करके उसे नियति या भाग्य का समानार्थी भी कर दिया है।

देव के प्राप्त ग्रन्थों में नीति उपदेश के भी कुछ वाक्य या छन्द मिलते हैं पर बिहारी वृन्द आदि अन्य रीति कालीन कवियों की भाँति यह नीति कार नहीं थे।

देव के चित्रों में प्रकृति के सूक्ष्म अध्ययन की छाप कम रहती है, फिर भी अपने शब्द चयन के आधार पर ऋतु वर्णन आदि में आप सुन्दर चित्र उपस्थित करने में सफल हुए हैं। परम्परा का इन्होंने अधिक ध्यान रक्खा है। सेनापति की भांति इनमें नवीनता प्रायः नहीं के बराबर है।

मनुष्य की सहचरी प्रकृति की भांति ही देव ने मनुष्य के भी चित्र खींचे हैं। ये चित्र भी अत्यन्त हृदय ग्राही सफल तथा सजीव है। मनुष्य की अंतः प्रकृति के चित्रण और बाह्य वर्णन - दोनों में इन्हें पूरी सफलता मिली है। गोपियों का कौतूहल, उत्सुकता और आकुलता का चित्र देखिए :—

"घोर तरुनीजन विपिन तरुनि जन ह्वै।
निकसी निसंक निसि आतुर अंके में॥"

बाह्य वर्णन में झूलने आदि का चित्त हृदय ग्राही है :—

"सहर – सहर सोधो, सीतल समीर डोलैं।
घहर घहर घन घेरि कैं घहरिया॥"

कला पक्ष :— रीति काल के अधिकांश कवियों की भांति देव ने व्रज भाषा को अपनाया और इनकी भाषा पर अन्य प्रादेशिक भाषाओं का प्रभाव भी मिलता है। देव कवि होने के साथ आचार्य्य थे, तब भी उनकी भाषा में व्याकरण की त्रुटियां पाई जाती है — कारक चिन्ह, लिंग वचन तथा क्रिया आदि सब प्रकार के दोष इनकी रचनाओं में हैं। पर हां, सुन्दर शब्द चयन के कारण देव की व्रज भाषा की साहित्यिकता प्रशंसनीय है। उनके शब्द चयन से भाषा की कान्ति (Polish) उत्पन्न हो गई है।

देव में संस्कृत शब्दों का प्रयोग तुलसी तथा केशव आदि से कम है पर विहारी भूषण आदि से अधिक है। कुछ प्राकृत तथा अपभ्रंश के भी शब्द हैं।

देव ने मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रचुर और सुन्दर प्रयोग किये हैं। इससे भी उनकी भाषा की अभिव्यंजना शक्ति बढ़ गई है।

छन्द :— देव ने अपनी रचनाओं में बहुत से छन्दों का प्रयोग किया है, पर इनके प्रिय छन्द घनाक्षरी और सवैया हैं।

अलङ्कार :— रीति काल में होने के कारण देव ने 'भाव विलास' या 'शब्द रसायन' जैसे रीति ग्रन्थ लिखे परन्तु वे वास्तव में खण्ड काव्य जैसे बन गये हैं। देव ने अपनी रचना में अलङ्कारों का प्रयोग किया है, पर वह अलङ्कार वादी नहीं थे — उनमें विशेष आग्रह इसका मिलता है। इसी कारण उन्होंने स्वभावोक्ति और उपमा अलङ्कार को प्रधानता दी है पर अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा और श्लेप आदि के प्रयोग भी यत्र तत्र मिलते हैं। इन्होंने प्रसिद्ध प्रायः सभी अलङ्कारों के सुरुचि पूर्ण प्रयोग किये हैं। देव की भाषा में धारा प्रवाह तथा वर्ण-मैत्री सम्बन्धी सौंदर्य्य हिन्दी साहित्य में सब से अधिक है। इसके लिए इन्होंने वीप्सा तथा अनुप्रास का सहारा लिया है जैसे :—

फलि—फलि फलि—फलि फलि फैलि झकि झांकी
झपकि झपकि आई कलै चहु कोदते"

अनुप्रास और अक्षर-मैत्री के क्षेत्र में तो देव हिंदी के सम्राट हैं।

उक्ति वैचित्र्य का भी देव में अभाव नहीं पर इससे वह चमत्कार वादी नहीं कहे जा सकते। उनका चमत्कार केशव की भांति रस विरोधी न हो कर रस का सहायक हुआ है।

कुछ न्यूनताओं और त्रुटियों के होते हुए भी देव का स्थान उच्च है,

उनकी कविता गुणों से ओत-प्रोत है। शृंगार रस के लिए आवश्यक माधुर्य गुण देव में कूट कूट कर भरा है – रस गुण के लिए तो उन्हें शब्दों की तोड़ मरोड़ व्याकरण के नियमों का उलंघन तथा नये शब्दों का बनाना आदि सभी कुछ स्वीकार था।

बिहारी

रीति कालीन शृंगारी कवियों में बिहारी का स्थान सर्वोच्च है। उनकी रचना अपने युग का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है। मुसलमानी शासन के दृढ़ हो जाने के कारण इस समय वीर–काव्यों की रचना के लिए अवकाश नहीं रह गया था। देश के राजा–गण विलास पूर्ण जीवन की ओर झुकने चले जा रहे थे और राजाश्रित कवियो की रचनाएँ बहुधा आश्रय-दाताओं का मनोरंजन करती थीं। अतः उत्तर-मध्यकालीन हिन्दी कवियों की रचनाओं का विषय बहुधा शृंगार रस हुआ करता था। बिहारी की रचना में भी युग की प्रवृत्ति पूर्णतः प्रतिविम्बित हुई है।

जीवन वृत्त :– बिहारी माथुरचौबे थे। इनका जन्म सं॰ १६६० के लगभग ग्वालियर के निकटस्थ बसुवा गोविन्दपुर में हुआ था। इनकी बाल्यावस्था बुन्देलखण्ड में बीती और युवावस्था में वे अपनी ससुराल मथुरा में जाकर रहने लगे थे। बिहारी लाल जयपुर के मिर्जा महाराज जयसिंह के दरबार में रहा करते थे और उनके राज कवि थे। बिहारी द्वारा प्रेषित एक दोहे के प्रभाव से उनकी मोह निद्रा भंग हो गई और अन्तःपुर से निकल कर वह पूर्ववत् राजकाज सम्हालने लगे।

रचनायें :– कहते हैं कि कविवर बिहारी प्रति-दिन सरस दोहे बना बना कर महाराज को सुनाते और उन्हें प्रत्येक दोहे पर एक–एक अशर्फी पुरस्कार मिलता था। इसी प्रकार लगभग सात-सौ दोहे बने– जिनकी 'बिहारी सतसई' के नाम से हिंदी साहित्य में प्रसिद्धि हुई। यही 'सतसई महाकवि की धवल कीर्ति का उज्ज्वल केतु है।

काव्य विषय :– बिहारी का काव्य मुक्तककाव्य है। उसकी सतसई का प्रत्येक दोहा अपने में पूरा है। उसका सम्बन्ध किसी अन्य दोहे से नहीं है। इनके काव्य का प्रधान-विषय यौवन, प्रेम और सौंदर्य है। उसमें सांसारिक जीवन का विशेषतः वैभव तथा विलासमय जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण है। परन्तु भक्ति और नीति के भी अनेक दोहे सतसई में लिखे हैं, जो अपने ढंग के अनूठे हैं।

बिहारी की प्रसिद्धि शृंगार रस के दोहों के कारण ही अधिक है। वास्तव में उनकी सतसई हिन्दी साहित्य में शृंगार रस का एक सफल ग्रंथ है– जिसका स्थान हिन्दी साहित्य के मुक्तक काव्यों में अति उच्च है।

सतसई का कवित्व :– बिहारी सतसई का एक एक दोहा हिंदी साहित्य का रत्न है। शृंगार रस का, प्रधानतः संयोग-शृंगार का बड़ा सुन्दर और सजीव वर्णन इसमें हुआ है। उनके संयोग शृंगार में उछल कूद, ऐन्द्रियता एवम् जीवन की मस्ती है। रीतिकालीन अन्य आचार्य कवियों की भांति साहित्य-शास्त्र का शृंगार ग्रंथ न लिखने पर भी बिहारी ने नख-शिख 'नायिका भेद' 'षड् ऋतु' आदि विषयों के बहु संख्यक दोहे लिखे हैं। अद्भुत कल्पना, मानव–प्रकृति का सूक्ष्म अध्ययन एवम् थोड़े में गम्भीर भाव व्यक्त करने की विशेषताओं के कारण बिहारी के दोहे अत्यन्त प्रभावशाली एवम् सरस हो उठे हैं। थोड़े शब्दों में पूरा पूरा भाव–चित्र अंकित करने में बिहारी को विलक्षण सफलता मिली है। अपने दोहों द्वारा उन्होंने गागर में सागर भर दिया है– इसी से किसी ने कहा है :–

" सतसैया के दोहरे, ज्यों नाविक के तीर।
देखत के छोटे लगें, घाव करें गम्भीर ॥ "

अपनी बात को सरस, रमणीय और प्रभावोत्पादक ढंग से कहने की बिहारी में अद्भुत क्षमता थी। उनके दोहे सहृदय पाठकों की आंखों के सामने चित्र खड़ा कर देते हैं :—

' झीने पट पै झुलमुली झलकति ओप अपार।
सुर–तरु की मनु सिंधु में लसति सपल्लव डार ॥

रस व्यंजना और भाव व्यंजना के साथ २ शृंगार रस के विविध स्वरूपों और नाना अवस्थाओं के बड़े ही आकर्षक चित्र बिहारी ने खींचे हैं :–

" बत रस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै भौंहन हंसे, दैन कहै नट जाय ॥ "

संयोग पक्ष में जिस प्रकार बंधे हुए प्रेम की व्यंजना की और प्रेम के विस्तार की भी उसी प्रकार विप्रलम्भ में भी। बिहारी ने प्रेम की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन करने में तो अपनी व्यापक अनुभूति और निरीक्षण शक्ति का परिचय दिया है, किन्तु उसे अत्युक्ति पूर्ण और ऊहात्मक करके हृदय पर प्रभाव की मात्रा कम कर दी। परम्परा के फेर में पड़ कर सच्ची काव्यानुभूति को दबा दिया है। जैसे नायिका की विरहावस्था का वर्णन करते हुए लिखते हैं :—

"इत आवनि चलि जाति उत, चली छ सातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरै सी रहैं, लगी उसासन साथ॥"

बहुज्ञ होने के कारण उनकी सूक्तियों में दर्शन-वैचित्र्य और शब्द-वैचित्र्य भी प्रभावोत्पादक है। तत्कालीन उर्दू कवियों के प्रभाव से बिहारी ने कहीं कहीं भाव हीन कल्पना के चित्रांकन में बहुत दूर की उड़ान ली है।

वाग् वैदग्ध्य :– बिहारी में वाग्विदग्धता भी अपने पूर्ण उत्कर्ष पर है। एक एक पद की शक्ति, उसका औचित्य, अन्य शब्दों के साहचर्य से उसका चमत्कार खूब ही बन पड़ा है। वाग्वैदग्ध्य के कारण बिहारी के दोहों में बड़ी कसावट है। यह कसावट केवल शब्दों के रूप और वाक्यों की ही नहीं अर्थ की भी है, निम्नलिखित दोहा बिहारी की वाग्विदग्धता का सुन्दर नमूना है :–

"मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झांई परें, स्यामु हरित दुति होइ॥"

अलंकार योजना :– बिहारी के दोहों में अलङ्कारों की योजना भी प्रायः बहुत ही भावोत्कर्षक तथा कलात्मक हुई है। सतसई में शुद्ध अलङ्कारों का चमत्कार भी है और रूप या भाव की अनुभूति में भी सहायता पहुँचती है। जहां उन्होंने काव्योपयोगिता पर दृष्टि रखी है वहां अलङ्कार विधान भी सुन्दर हुआ है। उनके दोहों में अप्रस्तुत विधान प्रायः पाया जाता है और विभावना, असंगति, और विशेषोक्ति आदि विरोध मूलक अलङ्कार भी सुन्दरता से प्रयुक्त हुए हैं, जैसे :—

"दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गांठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति॥"

अलंकारों की आभा से बिहारी की रचना जगमगा उठी है। किसी किसी दोहे को कवि ने कई अलंकारों से बड़ी खूबी से अलंकृत कर दिया है।

भाषा और शैली :– बिहारी की रचना ब्रज भाषा में है। उसमें कहीं कहीं बुन्देल खण्डी और फारसी शब्दों का भी मिश्रण है। भाषा अत्यन्त चुस्त और शब्द नपे तुले हैं। बिहारी ने रीति काल के अन्य कवियों की भांति शब्दों के रूपों को अधिक विकृत नहीं किया है। उनकी भाषा में अभिव्यंजना-शक्ति का अपूर्व चमत्कार है। उनका शब्द-चयन सशक्त और सार्थक है, उसमें भरती का एक भी शब्द नहीं है। बिहारी की ब्रजभाषा चलती और धारावाहिक होने पर भी साहित्यिक है। उसमें माधुर्य्य गुण है, व्याकरणानुरूपता है और साथ ही वह मंजी हुई और सुपरिष्कृत भी है। इनकी काव्य शैली दोहों की है। दोहों में रचना करना और सफल होना साधारण बात नहीं है– क्योंकि, इस छंद में भावों को

अति संक्षिप्त और सशक्त भाषा में रखना होता है।

उपसंहार :– बिहारी की कविता में बाहरी अथवा मुसलमानी प्रभाव के कारण प्रेम के स्वरूप में कुछ ऐसी बातें आ गई हैं– जो भारतीय रस-पद्धति के मेल में नहीं है। वैसे, उन्होंने प्रेम के भीतर सब प्रकार की सामग्री और सब प्रकार के वर्णन प्रस्तुत किये हैं। उनमें बहुत योग्यता थी। यदि बिहारी परम्परा के चक्कर में न पड़ते तो उन्हें कहीं अधिक काव्य-गौरव प्राप्त हो जाता।

बिहारी रस सिद्ध कवीश्वर माने गये हैं। साहित्य शास्त्र में रस कवित्व की आत्मा है। भाषा व छन्द उसके अवयव हैं और अलंकार उसके भूषण। बिहारी ने क्या बाह्य जगत और क्या अन्तर्जगत, सर्वत्र एक सौंदर्य का अनुभव किया है। यही कारण है कि उनकी कला में कृत्रिमता का अभाव है। उनमें उक्ति वैचित्र्य है, भाव की सूक्ष्मता है और सौन्दर्य का विशद चित्रण। सचमुच ही रीति कालीन शृंगारी कवियों में महाकवि बिहारी सर्वोच्च स्थान प्राप्त करते हैं।

भूषण

रीति काल में शृङ्गार की मधुर मुरली बजाने वाले अनेक कवियों के बीच में वीर रस का शंख नाद करने वाले प्रमुख कवि भूषण थे। इनका असली नाम क्या था अब तक पता न लग पाया – चित्रकूट के सोलंकी राजा रूप्र ने 'कवि भूषण' की इन्हें उपाधि दी थी, वहीं 'भूषण' नाम इनका प्रसिद्ध हुआ।

जीवन वृत्त :— सं० १६७० ई० में कानपुर जिले के निकवांपुर नामक ग्राम में भूषण का जन्म हुआ। इनके पिता पं० रत्नाकर त्रिपाठी कान्य कुब्ज ब्राह्मण थे। जिनके चार पुत्रों में से चिन्तामणि, भूषण और मतिराम तीनों ही कवि और साहित्यिक थे। वीर रस राज महाकवि भूषण का जीवन के राजाओं के आश्रय में बीता - परन्तु इनका सबसे अधिक आदर और मान छत्रपति महाराष्ट्रकेसरी महाराज शिवाजी के यहां हुआ। बुन्देलखंड के प्रसिद्ध वीर पन्ना के राजा महाराज छत्रसाल के दर्बार में भी इनका बड़ा आदर सम्मान हुआ। कहा जाता है कि एक छन्द पर शिवाजी ने इन्हें लाखों रुपये दिये।

कवित्व :— भूषण हिन्दी के एक मात्र ज्ञानी कवि माने जाते हैं। उन्होंने अपने आश्रय दाताओं की प्रशंसा की है, इसीसे उनका जातीय दर्प प्रकट होता है। छत्रसाल और शिवाजी दोनों हिन्दू जाति के उन्नायक थे, दोनों ने हिन्दू जाति की मर्यादा की रक्षा की थी। दोनों स्वाधीनता के

प्रेमी थे, इसीलिये भूषण ने उनका यशोगान किया। उन्होंने लोभ या चाटुकारिता के वश होकर शिवाजी और छत्रसाल की झूठी महिमा नहीं गाई है वरन औरङ्गजेब के धर्म-द्वेष पूर्ण कठोर शासन से त्रस्त जनता ने उस समय जिस आदर और प्रेम भाव से महाराष्ट्र केसरी शिवाजी और छत्रसाल को देखा उसी का कीर्तिगान भूषण ने किया है। आजतक भी हिन्दू जनता श्रद्धा के साथ इन वीरों का स्मरण करती है। शिवाजी के दर्बार में पहुँचने के पहले भी भूषण अन्य राजाओं के दरबार में रह चुके थे, पर उन्होंने उनकी झूठी प्रशंसा नहीं की। इस प्रकार भूषण हिन्दू जाति के सच्चे प्रतिनिधि कवि सिद्ध होते हैं।

इनका परलोक वास वि० सं० १७७२ के लगभग माना जाता है।

रचनाएं :— वीर रस के इस कवि की कविताएं ओजस्विनी और वीर रस से परिपूर्ण हैं। इनके दो चार कवित्त शृंगार के भी मिलते हैं पर वे नगण्य हैं। रीति कालीन परिपाटी पर भूषण ने 'शिवराज भूषण' नामक अलंकार ग्रन्थ लिखा। यद्यपि उसके लक्षणों की भाषा में कहीं-कहीं अस्पष्टता है और कुछ उदाहरण ठीक नहीं है। तथापि वीर रस की उनकी कविताएं अत्यन्त ओज पूर्ण और उत्साह युक्त हैं। 'शिवा बावनी' और 'छत्रसाल दशक' वीर रस के मुख्य ग्रन्थ हैं। इनके अतिरिक्त तीन ग्रन्थ और इनके लिये कहे जाते हैं— 'भूषण उल्लास,' 'दूषण उल्लास' और 'भूषण हजारा।'

'शिवाबावनी' बावन कवित्तों का संग्रह है और छत्रसाल दशक में आठ घनाक्षरी और दो दोहे के क्रम से संग्रहीत हैं। यह दोनों ही ग्रन्थ शिवाजी और छत्रसाल दो राजाओं की प्रशंसा में लिखे होने पर भी प्रबन्ध रूप में नहीं है, स्फुट काव्य हैं।

वीरता से ओत प्रोत भूषण का काव्योद्गार समस्त जनता का कंठहार बन गया। यह एक मार्मिक दृष्टान्त है। जनभावनाओं का प्रतिनिधित्व करने वाला कवि जन विश्रुत होता है और जब तक जन हृदय का उसे समर्थन प्राप्त होता है, तब तक कवि की कीर्ति बनी रहती है।

ऐतिहासिक तथ्य :— काव्य सम्बन्धी कल्पना तथा उपमा, उत्प्रेक्षा एवम् अन्य अलंकारों की योजना के कारण जहां-तहां वर्णन अत्युक्ति पूर्ण अवश्य हो गये हैं, पर कहीं भी इतिहास विरुद्ध घटनाएं नहीं दृष्टि आतीं। इन्होंने शिवाजी सम्बन्धी घटनाओं का यथातथ्य वर्णन किया है, सत्य की कहीं भी अवहेलना नहीं मिलती। यही कारण है कि अनेक इतिहासकारों ने भूषण की कविता के आधार पर इतिहास ग्रन्थों तक की रचना की है।

रस राजत्व :– भूषण के कविता का प्रधान रस वीर है पर वीर रस के सहयोगी रौद्र और भयानक रसों का समावेश भी उसमें है। शिवाजी की धाक तलवार की चमक और दानशीलता आदि का वर्णन अतिउत्कृष्ट हुआ है। शिवाजी की धाक से शत्रुओं की स्त्रियों की दुर्दशा का अत्यन्त ही सजीव चित्र खींचा है, जैसे :–

भूषण भनत सिंह साहि के सपूत सिवा,
'तेरी धाक सुने' अरि नारि बिलखाती हैं।
कोउ करैं घाती, कोउ रोती पीठि छाती,
घरैं तीनि बेर खातीं वे बै-तीनि बेर खाती हैं॥

शिवाजी ने कभी भी शत्रुओं की स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार नहीं किया, बल्कि विजित शत्रु की नारियों को सम्मान पूर्वक डेरों पर पहुँचाने के उदाहरण इतिहास में मिलते हैं। भूषण ने शिवाजी के इस गौरव को अक्षुण्ण रखते हुए केवल उनकी धाक से ही शत्रु की व्याकुलता का वर्णन किया है।

भाषा और अलंकार :– रीति कालीन अन्य कवियों की भांति भूषण ने भी ब्रज भाषा में कविता की है। युद्धों का वर्णन करते समय इन्होंने वर्णों की द्वित्व करने की परिपाटी का निर्वाह किया है, जिससे ओज गुण की मात्रा विशेष हो गई है। इसके अतिरिक्त इनकी रचनाओं में बुन्देलखण्डी बोली के शब्द भी पर्याप्त संख्या में मिलते हैं। उस समय मुसलमानों का अधिक सम्पर्क और प्रभाव हो जाने के कारण इनकी रचना फारसी शब्दों से भी मुक्त न रह सकी, पर भूषण ने विदेशी शब्दों को अपनी भाषा का जामा पहना कर अङ्गीभूत किया है। कहीं-कहीं वह आवश्यकता नुसार शब्दों को विकृत करने में भी नहीं चूके हैं। कभी-कभी बिलकुल गढ़ंत रूप भी मिलते हैं। पर जिन कविताओं में यह दोष नहीं है वे अत्यन्त प्रभावोत्पादक और सशक्त हैं।

भूषण की कविता में ओज और प्रसाद गुण की प्रधानता है। अनुप्रासों की छटा सर्वत्र मिलती है, पर उनके कारण कविता बोझिल और दुरूह नहीं होने पाई है, जैसे :–

"साजि चतुरंग वीर रंग मैं तुरंग चढ़ि,
सरजा शिवाजी जंग जीतन चलत है।
भूषण भनत नाद बिहद नगारन के,
नदी-नद मद गब्बरन के रलत है॥"

अन्य अलङ्कारों का भी यत्र–तत्र खूब प्रचुरता से प्रयोग हुआ है - पूर्व कथानानुसार उनका 'शिवराज भूषण' तो अलङ्कारों का ही ग्रन्थ था; जिसमें सारे ही अलङ्कारों के उदाहरण उपलब्ध हैं ।

भूषण की रचनाओं में चित्र कला की प्रधानता है । इसलिये हम उनमें उक्ति वैचित्र्य और अलङ्कारों का चमत्कार विशेष रूप से पाते हैं ।

रीति कालीन अन्य कवि गण

नाम	रचनाकाल संवत्	रचनाएँ	विशेष विवरण
१. चिंतामणि त्रिपाठी	१७०० के लगभग	'कविकुल कल्पतरु' 'छंद विचार', 'काव्य विवेक', 'काव्य प्रकाश' और 'रामायण'	इन्होंने काव्य के सब अंगों पर ग्रन्थ लिखे, भाषा विशुद्ध ब्रज भाषा थी । उत्कृष्ट कवियों में इन की गणना है ।
२. बेनी	१७०० के आसपास	फुट कल कवित्त प्राप्य हैं ।	
३. महाराज जसवन्तसिंह	१६६५ के लगभग	'भाषा भूषण' (अलंकारों पर) 'अपरोक्ष सिद्धान्त' 'अनुभव प्रकाश' आनन्द विलास, सिद्धान्त बोध, सिद्धान्त सार, प्रबोध चंद्रोदय (नाटक) ।	यह हिंदी साहित्य के प्रधान आचार्यों में माने जाते हैं। अलंकार निरूपण की सुन्दर पद्धति के कारण इन का ग्रन्थ 'भाषाभूषण हिंदी काव्य रीति के अभ्यासियों के बीच सर्वप्रिय हुआ ।
४. मंडन	१७१६	'रस रत्नावली' 'रस विलास' 'जनक पचीसी', 'जान कीजूको ब्याह' और नैन पचासा' ।	इनके फुटकल कवित्त सवैये बहुत मिलते हैं, पर कोई ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है - इन पाँच ग्रन्थों का पता पुस्तकों की खोज में लगा है।
५. मतिराम	१७१६-१७४५	'छंद सार', 'रस राज', ललित	यह रीतिकाल के मुख्य कवि हैं । रस और

		ललाम' 'साहित्य सार', लक्षण शृंगार' और 'मतिराम सतसई ।'	अलंकारों पर लिखे इनके दो ग्रन्थ * अति प्रसिद्ध है ।
६. कुलपति मिश्र	१७२४-१७४३	'रस रहस्य' 'द्रोणपर्व' 'युक्ति तरंगिणी', 'नख शिख', और 'संग्राम सार रहस्य ।'	यह रीति कालीन कवियों में संस्कृत के अच्छे विद्वान थे - साहित्य शास्त्र का अच्छा ज्ञान होने के कारण प्रचलित ग्रंथों की अपेक्षा आप का निरूपण अधिक प्रौढ़ हुआ ।
७. सुखदेव मिश्र	१७२०-१७६०	'वृत्त विचार', 'छंद विचार', 'फाजिल अली प्रकाश', रस र्णव' 'शृंगार लता अध्याक प्रकाश', और 'दशरथ राम'।	यह कुछ दिन औरंगजेब का मंत्री फाजिलअली शाह के यहां रहे राजा राजसिंह ने उन्हें कविराज की उपाधि दी थी यह अत्यन्त प्रौढ़ कवि थे और इनमें आचार्यत्व पूरा था ।
८. कालिदास त्रिवेदी	१७४९ के लगभग	'वारवधू विनोद' 'राधा माधव' बुधमिता विनोद' और 'कालिदास हजारा ।'	यह अंतर्वेद के रहने वाले औरंगजेब के समय में एक अभ्यस्त और निपुण कवि हुए हैं- इनके संग्रह ग्रन्थ 'कालिदास हजारा' में २१२ कवियों के १००० पद्य हैं जो कवियों के काल आदि के निर्णय के लिये उपयोगी है ।

* 'रसराज' और 'ललित ललाम' ।

९. राम	१७३०	'श्रृंगार सौरभ' 'हनुमान नाटक'	यह एक अच्छे श्रृंगारी कवि थे– संयोग श्रृंगार वर्णन में विशेष प्रवृत्ति थी जिसमें कहीं २ अश्लीलता की सीमा तक भी पहुँच गये हैं।
१०. नेवा	१७३४	शकुन्तला नाटक	
११. श्रीधर या मुरलीधर	१७६०	'जंग नामा'	
१२. सूरत मिश्र	१७६६	अमर-चान्द्रका और विहारी' सतसई कवि प्रिया व रसिक प्रिया की विस्तृत टीकाएँ और सात * रीति ग्रंथ रचे।	
१३. कवींद्र	१८०४ के लगभग	'रसचन्द्रोदय' 'विनोद चंद्रिका', जोगलीला	इनका रस चन्द्रोदय श्रृंगाररस का सुन्दर ग्रन्थ है।
१४. श्रीपति	१७७७	काव्य सरोज (रीति ग्रन्थ) ६ और ग्रंथ रचे ०	आचार्यत्व के अतिरिक्त इनमें काव्यत्व भी उच्च कोटि का था। रचना विवेक अत्यन्त जागृत और बहुत परिमार्जित थी।
१५. वीर	१७७९	'कृष्ण चन्द्रिका	रस और नयिकाभेद का ग्रन्थ।

* अलंकार माला, रसरत्न माला, सरस रस, रस ग्राहक चंद्रिका, नख शिख, काव्य सिद्धान्त और रस रत्ना का।

० कविकल्पद्रुम, रससागर, अनुप्रासविनोद, विक्रमविलास, सरोज कलिका और अलंकार गंगा।

१६. कृष्ण कवि	१७८५-१७८० के मध्य	'बिहारी सतसई की टीका'	रीति काल के प्रमुख कवियों में इनका स्थान है। टीका में दोहों के भाव पल्लवित करने के लिये इन्होंने सवैये लगाये हैं और और वार्तिक में काव्यांग स्फुट किए हैं। कृष्ण कवि बिहारी के पुत्र प्रसिद्ध हैं।
१७. रसिक सुमति	१७८५	'अलंकार चन्द्रोदय'	
१८. गंजन	१७८६	'कमरुद्दीनखाँ हुलास' (शृंगार रस का ग्रंथ)	इस ग्रन्थ में भावभेद और रस भेद के साथ षट्ऋतु का विस्तृत वर्णन है। यह ग्रन्थ दिल्ली बादशाह के वजीर कमरुद्दीन खाँ को खुश करने के लिये लिखा गया है - इसमें ऋतु वर्णन के अंतर्गत उस में अमीरी शौक व आराम के अनेकों पदार्थ गिनाये गये हैं।
१९. अलीमुहिब खाँ	१७८७	'खटमल बाईसी'	साहित्यिक महत्त्व पूर्ण हास्य रस की यह ग्रन्थ लिखकर इन्होंने रीति कालीन रूढ़ि के विरुद्ध शिष्टहास की कविता का मैदान तैयार किया।
२०. दास (भिखारी दास)	१७८५-१८०७	'रससारांश', 'छंदोर्णव पिंगल', काव्य निर्णय,	काव्यांगों के निरूपण में दासजी को सर्व प्रधान स्थान मिला है

		शृंगारनिर्णय, नामप्रकाश, विष्णुपुराण भाषा, छंदप्रकाश और शतरंज शतिका।	क्योंकि इन्होंने छंद, रस अलंकार, रीति, गुण, दोष, शब्द शक्ति आदि सब विषयों का प्रतिपादन विस्तार से किया है।
२१. भूपति (राजा	१७९?	शृंगार के दोहों की सतसई कंठा भूषण, रस रत्नाकर',	यह अमेठी के राजा थे। आप जैसे सहृदय और काव्य मर्मज्ञ थे वैसे ही कवियों का आदर संमान करने वाले थे।
२२. तोषनिधि	१७९१	सुधानिधि (रस भेद और भावभेद का ग्रंथ), विनयशतक और नखशिख।	तोष जी एक सहृदय और निपुण प्रसिद्ध कवि थे। बिहारी के समान कहीं कहीं इन्होंने भी ऊहात्मक अत्युक्ति की है।
२३. दलपतिराय	१७९२	'अलंकार रत्नाकर'	ये दोनों गुजरात के ब्राह्मण थे - दोनों ने मिलकर उदयपुर के महाराणा जगतसिंह के नाम पर यह ग्रन्थ रचा था - अलंकारों का स्वरूप समझाने का प्रयत्न इस ग्रंथ की विशेषता है।
२४. सोमनाथ	१७९० से १८१०	रसपीयूषनिधि (रीति ग्रन्थ) कृष्ण लीलावती पंचाध्यायी, सुजान	इनका रीति ग्रंथ दास जी के 'काव्य निर्णय' से बड़ा है। विषय निरूपण के अतिरिक्त

		–विलास, और माधव विनोद नाटक ।	थे । कवि कर्म में भी सफल हुए ।
२५. रसलीन	१७९४-	अंगदर्पण, रस प्रबोध (रस निरूपण का ग्रन्थ)	अंग दर्पण सूक्तियों के चमत्कार के लिये काव्य रसिकों में विख्यात है और रस प्रबोध में रस, भाव, नायिका भेद, षट्ऋतु और बारह मासा आदि अनेक प्रसंग आये हैं ।
२६. रघुनाथ	१७९०-१८१०	काव्य कलाधर, रसिकमोहन, जगत मोहन, इश्क महोत्सव, और बिहारी सतसई	'रसिक मोहन' अलंकारों का ग्रन्थ है, पर रीति कालीन प्रथा के अनुसार अलंकारों के उदाहरण इस में शृंगार के ही न होकर वीर आदि अन्य रसों के भी हैं ।
२७. दूलह	१८००-	कविकुल कंठा भरण और फुट –कल कवित्त ।	देव, दास और मतिराम आदि के साथ उनका नाम भी लिया जाता है । इनकी इस सर्व प्रियता का कारण रचना की मधुर कल्पना, मार्मिकता और प्रौढ़ता है ।
२८. कुमार मणिभद्र	१८०३	रसिक रसाल (रीति ग्रन्थ)	
२९. शम्भुनाथ मिश्र	१८०६	रस कल्लोल, रस तरंगिणी और अलंकार दीपक ।	ये तीनों रीति ग्रन्थ हैं - उदाहरण शृंगार वर्णन में अधिक प्रयुक्त न होकर आश्रय

				दाता के यश और प्रताप वर्णन में अधिक प्रयुक्त हुए हैं ।
३०.	शिव सहायदास	१८०६	शिव चौपाई और लोकोक्ति रस कौमुदी ।	
३[illegible].	ऋषिनाथ	१७९०-१८३१	अलंकार मणि मंजरी	काशिराज के दीवान सदानंद और रघुवर कायस्थ के आश्रम में इन्होंने रचना की।
३८.	देवकी नन्दन	१८४१-१८५७	शृंगार चरित्र, अवधूत भूषण, सरफ राजा चन्द्रिका और नखशिख ।	ये सब ग्रन्थ रस और अलंकार के थे ।
४०.	महाराज	१८३९-१८६०	अलंकार दर्पण, रस निवास, और रस विनोद ।	ये नवलगढ़ के राजा थे - एक अच्छे और प्रवीण कवि
४१.	मानकवि	१८४५	नरेन्द्र भूषण (अलंकार ग्रन्थ)	इन्होंने अलंकारों के उदाहरण शृंगार रस के प्रायः बराबर ही वीर, भयानक और अद्भुत आदि रसों के रक्खे है जिससे ग्रन्थ में नवीनता आई है और शृंगार के सैकड़ों वर्ष के पिष्ट पेषण से पाठक को विराम सा मिलता है ।
४[illegible].	थान कवि	१८५८	दलेल-प्रकाश	यह एक रीति ग्रन्थ है जो चँड़रा (वैसवारा) के रईस दलेलसिंह के नाम पर बनाया गया। इस ग्रन्थ में विषयों

			का कोई क्रम नहीं, पुराने टीकाकारों जैसी गति है ।
४३. वेनी बंदीजन	१८४९ से	टिकैतराय प्रकाश, रस विलास और भड़ौवा संग्रह ।	इनका प्रथम ग्रन्थ अलंकार का है जो अपने आश्रय दाता के नाम पर लिखा था और दूसरे में रस निरूपण हुआ है परन्तु इन दोनों से अधिक यह अपने हास्य रस पूर्ण ग्रन्थ भंडौवों के संग्रह के लिये प्रसिद्ध हुए ।
४४. वेनीप्रवीन	१८७४	नवरस तरंग, श्रृंगार भूषण, नानाराव प्रकाश (अलंकार ग्रन्थ) और फुटकल कवित्त ।	यह व्रज भाषा के मतिराम आदि कवियों के समकक्ष हैं । इन का नवरस तरंग रीति काल के रस सम्बन्धी ग्रन्थ ग्रन्थों की भांति श्रृंगार का ही ग्रन्थ है जिसमें नायिका भेद के उपरांत रस भेद और भाव भेद का संक्षेप में निरूपण हुआ है ।
४५. जसवंतसिंह	१८५६	सालिहोत्र और श्रृंगार शिरोमणि ।	यह कन्नौज के पास तेरवां के क्षत्रिय राजा थे और बड़े विद्या प्रेमी थे - इनके पुस्कालय में संस्कृत और भाषा के अनेक ग्रन्थ थे ।
४६. यशोदानन्द	१८२८	बरवै नायिका	इनकी यह छोटी सी रचना रहीम वाणी

			के टक्कर की है• जिस में ९ बरवा संस्कृत में और ५३ ठेठ अवधी में है। यह कवियों की श्रेणी में उच्च स्थान के अधिकारी हैं।
४७. गुरदीन पांडे	१८६०	बाग मनोहर	यह कवि प्रिया के ढंग का साहित्य का एक सवांग पूर्ण ग्रन्थ है जिसमें हर प्रकार के छंद हैं। संस्कृत के वर्णवृत्तों में यह एक सुन्दर रचना है।
४८. ब्रह्मदत्त	१८३०-	विद्वद्विलास और दीप प्रकाश (अलंकार ग्रन्थ)	
४९. पद्माकर भट्ट		हिम्मत बहादुर विरदावली, जग द्विनोद प्रबोध पचासा, और गंगा लहरी।	रीति काल के कवियों में इन का श्रेष्ठ स्थान है। रीति काल की कविता इनकी और प्रताप साहि की वाणी द्वारा अपने पूरी उत्कर्ष को पहुँच कर फिर ह्रासोन्मुख हुई। इन की अंतिम दो रचनाएँ विराग और भक्ति रस से पूर्ण हैं।
५०. ग्वाल कवि	१८७९-१९१८	यमुना लहरी, रसिकानन्द, (अलंकार) रस रंग, कृष्णजू को नख शिख, दूषण	'राधा माधव मिलन' और 'राधा अष्टक' नामक दो और ग्रन्थ इनके लिखे कहे जाते हैं। इनमें रीति काल

		हम्मीर हठ, गोपी पच्चीसी भक्त भावन और कवि हृदय विनोद (कविता संग्रह)	की सनक इतनी थी कि यमुना लहरी में देवस्तान में भी नवरस और षट्ऋतु सूझी हैं। यह एक विदग्ध और कुशल कवि थे पर फक्कड़ पन लिये हुए।
५१. प्रतापसाहि	१८८०-१९००	व्यंगाथ कौमुदी, काव्यार्थ विलास, जयसिंह 'प्रकाश, शृंगार शिरोमणि, अलंकार चिंतामणि, काव्य विनोद, रसराज की टीका, रत्नचन्द्रिका (सतसई की टीका) जगल नखशिख, बलभद्र नखशिख की टीका।	पुस्तकों के नाम से ही इनकी साहित्य मर्मज्ञता और पांडित्य का अनुमान होता है। आचार्य्यत्व में इन का नाम मतिराम, श्रीपति और दास के साथ आता है।
५२. रसिक गोविन्द	१८५०-१८९०	इनके ९ ग्रन्थों का पता चला है- रामायण सूचनिका, रसिक गोविंदानन्दघन, लछिमन चन्द्रिका, अष्ट देश भाषा, पिंगल, समय प्रबन्ध, कलियुग रासो, रसिक गोविन्द, और युगल रस माधुरी।	इनका रसिक गोविंदानंदघन ग्रन्थ बड़ा भारी रीति ग्रंथ है - विशेषता यह है कि इसमें लक्षण गद्य में है और संस्कृत के बड़े २ आचार्य्यों के मतों का उल्लेख भी स्थान स्थान पर है।
५३. बनवारी	१६९०-१७००	शृंगार रस के पद्य	
५४. सबलसिंह चौहान	१७१८-१७८१	महाभारत की कथा, रूप विलास, ऋतु	

		संहार का भाषानुवाद और एक पिंगल ग्रंथ ।	
५५. वृन्द	१७४७-१७६१	वृन्द सतसई, शृंगार शिक्षा, भाव पंचाशु का और दो रस सम्बन्धी पुस्तकें ।	इनकी वृन्द सतसई में सात सौ नीति के दोहे हैं, उसके कारण इन्होंने बहुत प्रसिद्धि पाई ।
५६. छत्रसिंह कायस्थ	१७५७	महाभारत की कथा (स्वतंत्र प्रबन्ध काव्य के रूप में कई छन्दों में वर्णित)	
५७. बैताल	१८३६-१८८६	विक्रम सतसई आदि कई ग्रन्थ	ये जाति के बंदीजन थे और राजा विक्रम साहि की सभा में रहते थे। इन्होंने नीति की कुंडलियां लिखी हैं ।
५८. आलम	१७४०-१७६०	आलमकेलि (कविता संग्रह)	आलम प्रेमोन्मत्त कवि थे और अपनी तरंग के अनुसार कविता करते थे यह जाति के ब्राह्मण थे पर शेख नामक रंगरेजिन के प्रेम में फँस कर मुसल-मान हो गये - शेख रंगरेजन भी अच्छी कविता करती थी । 'आलमकेलि' में बहुत से कवित्त शेख द्वारा रचित हैं ।
५९. गुरु गोविंदसिंह	१७५० के आसपास	सुनीति प्रकाश, सर्वलोह प्रकाश, प्रेमसुमार्ग, बुद्धि सागार, और	यह सिक्खों के महा पराक्रमी अंतिम गुरु थे- आप हिन्दू भावों और आर्य्य संस्कृति की

			चण्डी चरित्र	रक्षा के लिये बराबर युद्ध करते रहे ।
९०.	लाल कवि	१७६४ के लगभग	छत्र प्रकाश और और विष्णु विलास	इन के जैसा काव्य कौशल हिन्दी के इने गिने कवियों में ही पाया जाता है ।
९१.	रसनिधि	१७१० के	रतन हजारा, (विहारी सतसई के अनुकरण पर) ओरल्ल और मौझी संग्रह	इनकी कविता में फारसी और आशकी कविता के शब्द भी इतने अधिक प्रयुक्त हुए हैं कि सुरुचि और साहित्यिक शिष्टता को आघात पहुँचता है ।
९२.	महाराज विश्वनाथ सिंह	१८७०-१९११	इनके बनाये हुए ३२ ग्रंथ बताए जाते हैं । •	यह जैसे भक्त थे वैसे ही विद्या व्यसनी तथा कवियों और विद्वानों के आश्रय दाता थे और काव्य रचना में सिद्धहस्त । इनकी कविता अधिकतर वर्णनात्मक अथवा उपदेशात्मक हुई है ।
९३.	भक्तवर नागरी	१७८०-१८१६	मनोरथ मंजरी, वैनविलास और गुप्तरस के अतिरिक्त इनकी ७३ पुस्तकें कृष्णगढ़ में संगृहीत हैं ।•	इनमें से अधिकतर पुस्तकें पांच पांच, दस दस पद्यों की है जिन्हें पुस्तक न कहकर वर्णन विषय मात्र समझना उपयुक्त होगी । काल गति के अनुसार फारसी काव्य का आशिकी और सूफियान रंग ढंग भी

• देखिये पं. रामचन्द्र शुक्ल का इतिहास पृ. ३४५, ३४८-४९

			इन्होंने कहीं कहीं दिखाया है ।
६४. जोधराज	१८७५	हम्मीररासो (प्रबन्ध काव्य)	नीवंगढ़ (वर्तमान अलवर) के राजा चन्द्रभान चौहान के अनुरोध से यह ग्रन्थ लिखा जिस में रणथंभौर के प्रसिद्ध वीर हम्मीर देव का चरित्र वीर गाथा काल की छप्पय पद्धति पर वर्णित है।
६५. बख्शी हंसराज	१६ वीं शताब्दी का आरम्भ	सनेह सागर, विरही विलास, रायचन्द्रिका बारह मासा।	इनमें प्रथम ग्रन्थ ६ तरंगों में समाप्त हुआ अनूठा और विशाल ग्रन्थ है।
६६. जनकराज-	१७६०	प्रादोष रहस्य	

पठनीय पुस्तकें :—

हिन्दी साहित्य का इतिहास — पं॰ रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास — डा॰ रामकुमार वर्मा
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास — डा॰ राम कुमार वर्मा
हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास — बा॰ गुलाब राय
हिन्दी साहित्य का इतिहास — मिश्र बन्धु
आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका — लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष — शिवदान सिंह चौहान
भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएं — परशुराम चतुर्वेदी
बीसवीं शताब्दी का हिन्दी साहित्य — नन्ददुलारे वाजपेयी
गोस्वामी तुलसीदास — पं॰ रामचन्द्र शुक्ल
त्रिवेणी — पं॰ रामचन्द्र शुक्ल
काव्यानु शीलन — प्रो॰ सुरेश चन्द्र गुप्त
तुलसीदास — माताप्रसाद गुप्त
तुलसीदास और उनका काव्य — रामनरेश त्रिपाठी

अष्ट छाप और वल्लभ सम्प्रदाय २ भाग	डा० दी० द० गुप्त
दादू दयाल की बानी	श्री सुधाकर त्रिवेदी
भारतवर्ष के धार्मिक इतिहास की रूप रेखा	
एनसाइकलोपीडीया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स वौल ट्वैलव	
तुलसी दर्शन	डा० बलदेव प्रसाद
हिन्दी के वैष्णव कवि	डा० दीन दयाल गुप्त
मीरा की प्रेम वाणी	परशुराम चतुर्वेदी
सूर और उनका साहित्य	
मीरा की प्रेम साधना	पं० भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव'
हिन्दी साहित्य	डा० हजारी प्रसाद
पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ	
भागवत सम्प्रदाय	डा० बलदेव प्रसाद
व्रज भारती	वियोगी हरि
व्रज माधुरी सार	वियोगी हरि
तुलसीदास और उनका युग	
'भारतीय साहित्य' पत्रिका	हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्व विद्यालय से प्रकाशित
देव और बिहारी	नंददुलारे भार्गव
पृथवी राज रासो	हरिहर नाथ टंडन
बिहारी की वाग् विभूति	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

चतुर्थ अध्याय

आधुनिक युग

देश की राजनैतिक परिस्थितियां बदली। मुगलों के शासन को विलासिता ने खोखला बना दिया था, जिसे व्यापारी अंग्रेजों की चालाकी ने एक दम समाप्त कर दिया। देश में पश्चिमी विचारों का प्रभाव आया। रहन-सहन आचार विचार पर भी कम प्रभाव नहीं पड़ा। साहित्य पर प्रभाव पड़ना ही था।

पश्चिम के प्रभाव से अबतक का पद्य-प्रधान साहित्य गद्य-प्रधान बन गया। गद्य की विभिन्न शैलियों, निबन्ध, आलोचना, गद्य गीत, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि का इस युग में बड़ी शीघ्रता से विकास हुआ।

यों तो गद्य का अस्तित्व प्राचीन काल से ही रहा परन्तु साहित्य में उसका खुलकर प्रयोग आज के युग में हो रहा है। हिन्दी गद्य का प्रारम्भ मुंशी इंशा अल्लाखां, मुंशी सदा सुखलाल, पं० लल्लु लालजी और पं० सदल मिश्र की रचनाओं से माना जाता है। हिन्दू समाज के सुधारक स्वामी दयानन्द, राजा राममोहनराय आदि के प्रयत्नों से भी हिन्दी गद्य का काफी प्रचार हुआ। मुद्रण-यंत्र (प्रेस) के आविष्कार के भारत में आने के बाद तो समाचार-पत्र और पत्रिकाओं ने गद्य का और भी अधिक प्रचार किया।

प्रसन्नता का विषय है कि इस समय हिन्दी साहित्य की सर्वांगीण उन्नति होरही है। अब तो हिन्दी को देश की राष्ट्र भाषा बनने का गौरव भी प्राप्त हो गया और स्वतन्त्र भारत की सरकार एंव राष्ट्र के हित चिन्तकों का ध्यान हिन्दी के विकास की ओर प्रवृत्त होने से और भी समृद्धि की आशा की जा सकती है।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल को चार भागों में विभाजित किया गया है।—

१—भारतेन्दु युग—सं० १६०० से १६३० तक

२—द्विवेदी युग—सं० १६३० से १६६० तक

३—छायावादी युग या प्रसाद युग— १६६० से १६८० तक

४—प्रगतिवाद, छायावाद आदि विभिन्न वादों का युग १६८० से वर्तमान तक।

(क) भारतेन्दु युग और उसके प्रतिनिधि कवि

अंग्रेजी राज्य की स्थापना से देश की स्थिति विचित्र हो रही थी। अंग्रेजों द्वारा किये कुछ सुधारों से और महारानी विक्टोरिया के १८५७ ई० के गदर के बाद दिये आश्वासन से लोगों पर प्रभाव पड़ा हुआ था। दूसरी ओर अंग्रेजी शासन में किसानों पर लगान लगने लगा, टैक्स की वसूली हुई, अकाल और महामारी आई इन सब कारणों से शिक्षित जनता का अंग्रेजों की सद्भावना से विश्वास उठता जा रहा था अमीरों को खिताब दे दे कर गरीबों को पीसने की चालाकी का भी अनुमान लगाया जा रहा था। इस प्रकार एक मिश्रित भावना साहित्य के क्षेत्र में भी काम करने लगी। इस समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का आविर्भाव हुआ, उन्होंने अंग्रेजों के अत्याचारों के प्रति आवाज उठा कर देश वासियों को सचेत किया। इस प्रकार हिन्दी साहित्य में एक राष्ट्रीय लहर उठी और उन्हीं के नाम पर इस युग का नामकरण हुआ।

भारतेन्दु के हृदयोद्गार तत्कालीन स्थिति को भली भांति प्रकट करते हैं:—

"अंग्रेजी राज सुख साज महा सुख भारी।
पर धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी ॥"

समाज में एक ओर रूढ़ि प्रिय लोग थे, दूसरी ओर कालिज स्कूलों से बिलकुल पाश्चात्य सभ्यता से रंगे निकलते थे ? पुलिस के अदालती लोगों की लूट खसोट मची थी, अमीरों का स्वार्थ जनता पर अत्याचार कर रहा था एवं धार्मिक मिथ्याचार अनाचार, और छल कपट फैला था। दूसरी ओर शिक्षाप्राप्त लोग धर्म के वास्तविक तत्व को भी ग्रहण न करके धार्मिक भावनाओं का विद्रोह करने लगे। शिक्षा का अभाव और बाल विवाह आदि कुरीतियों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित होने लगा।

अपनी दुर्बलताओं के कारण नई लहर के आने से जनता चमत्कृत हो उठी अपने लिये हीनता की भावना और अंग्रेजों को उच्च समझने की धारणा हो गई।

धार्मिक स्थिति—विज्ञान के प्रचार से बुद्धिवाद ने जोर पकड़ा। धार्मिक विश्वासों को बुद्धि पर तोला जाने लगा अतः व्यर्थ की रूढ़ियों के प्रति अविश्वास होने के साथ ही श्रद्धा और भक्ति की जड़ें हिलने लगीं। ऐसी दशा में भारतीय संस्कृति को प्रोत्साहन देने के लिये कुछ व्यक्तियों को चेष्टा करनी पड़ी। १८२८ ई० में राजाराम मोहनराय का ब्रह्म समाज स्थापित हुआ।

१८७५ ई० में स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की, लगभग इसी समय Theosophical आन्दोलन आरम्भ हुआ और रामकृष्ण परमहंस का मिशन भी, जिसका स्वामी विवेकानन्द ने १८६१ से १९०२ तक के काल में व्यापक प्रचार किया।

साहित्यिक स्थिति: —प्रत्येक क्षेत्र में विक्षेप के कारण साहित्य पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। पाश्चात्य विचारकों और साहित्यिकों का भी हमारे साहित्य पर प्रभाव पड़ने लगा। कार्ल मार्क्स, डारविन, मौरिस मैथ्यू आरनल्ड, रस्किन, ब्राउनिङ्ग और टेनीसन आदि पाश्चात्य विद्वानों के विभिन्न सिद्धान्तों से प्रभावित हो कर भिन्न २ विचार धाराएँ साहित्य के क्षेत्र में पनपने लगीं।

विशेषताएँ: —युग की परिस्थितियों के अनुसार भारतेन्दु काल में कई प्रकार की धारणाओं को लिये हुए साहित्य रचना हुई।

१.- अंग्रेजों की दी हुई सुविधाओं से चमत्कृत होकर मोहमय प्रशस्तियां फूटीं जैसे श्री प्रताप नारायण मिश्र का 'सहले स्वागत।"

२. दूसरी ओर देश की दुर्दशा के चित्र खींचे गए; जैसे भारतेन्दु की "भारत दुर्दशा" नामक कविता।

३.—भारत के अतीत का श्रद्धा से स्मरण करते हुए हरिश्चन्द्र और प्रताप नारायण मिश्र आदि ने कविता लिखी: -

"हाय पंचनद हा पानीपत, अजहुँ रहे तुम धरति विराजत,"

४. इधर श्री प्रताप नारायण मिश्र 'प्रेमघन, और अम्बिकादत्त व्यास आदि ने देश की समस्याओं की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा है:—

"सर्वस लिये जात अंग्रेज, हम केवल लेकचर" के पेच।
"भांय भांय आपस में लरैं, परदेसिन के पायन परैं॥"

५.—हास्य रस के विधान के लिये नवीन आलम्बन आने लगे। प्राचीन रूढ़ियों पर चलने वाले, विदेसियों का अनुकरण करने वाले, चंदे द्वारा देश भक्त कहलाने वाले तथा बाबू लोग हास्य का विषय बन गये।

६.—इस समय शृंगार रस की ओर कवियों का कम ध्यान गया। रीति काल की अति शृंगारिक भावना के प्रति प्रतिक्रिया होने लगी। परन्तु शृंगार जीवन की आवश्यकता है। अतः इसके बिना कविता में उत्कृटता नहीं आई? आत्मा सभ्यता व तीव्रता के अभाव में शृंगार वर्णन छिछला सा हुआ या फिर वेदनात्मक व्यंजना हुई।

७.—हरिश्चन्द्र मानव प्रकृति के कवि थे, अतः प्रकृति की ओर इनका ध्यान नहीं गया। प्रकृति चित्रण परम्परा पालन मात्र रह गया। परन्तु किसी किसी कवि में प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण पाया जाता है; जैसे श्रीधर पाठक की 'वसन्तागम' और 'हेमान्तादि' कविताएँ:—

"बीता कार्तिक मास शरद का अन्त है।
लगा सकल सुखदायक ऋतु हेमन्त है।।"

८.—सामाजिक रूढ़ियों ?

भाषा – इस युग के कवियों की भाषा ब्रज ही रही, बाद में खड़ी बोली का आन्दोलन हुआ। भारतेन्दु जी ने भाषा में बहुत सुधार किया। उन्होंने भाषा की अनिश्चितता को हटा कर निश्चित रूप दिया। संस्कृत शब्दों के रहने पर भी भाषा को सुबोध रक्खा फारसी अरबी शब्दों के आने पर उर्दूपन न आने दिया। वाक्य विन्यास की सफाई, विराम की परख बोलचाल से उठे हुए दीह, ईठ और षायों आदि शब्दों को निकाल दिया। रसीले कवित्त सवैयों में चलती भाषा का प्रयोग होने लगा।

मुख्य कवि:—भारतेन्दु युग के प्रतिनिधि कवि तो हरिश्चन्द्र ही थे उनके अतिरिक्त होने वाले कवि और लेखकों में प्रताप नारायण मिश्र, अम्बिका दत्त व्यास, बद्रीप्रसाद चौधरी 'प्रेमघन', जगमोहनसिंह, राधा कृष्णदास, बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुन्द गुप्त और कार्तिकप्रसाद खत्री के नाम उल्लेखनीय हैं। बालमुकुन्द गुप्त भारतेन्दु युग के अंत और द्विवेदी युग के प्रारम्भ में हुए और उनके समय तक कांग्रेस कुछ प्रभावशालिनी हो गई थी, ये स्वदेशी आन्दोलन के समर्थक थे। इनके समय तक भारतेन्दु युग के कवियों की आशाएँ निष्फल सिद्ध हो चुकी थी, इसलिये इनकी रचनाओं में पहले कवियों जैसी चाटुकारी पूर्ण उक्तियाँ और अनुनय विनय नहीं मिलती। गुप्त जी जातीय-एकता और सक्रिय योजना के समर्थक थे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

आधुनिक हिन्दी के जन्म दाता बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म संवत् १९०७ वि० ६ सितम्बर सन् १८५०ई० में काशी में हुआ। इतिहास प्रसिद्ध सेठ अमीचन्द के वंशज बाबू गोपालचन्द आपके पिता थे जो स्वयं हिन्दी के अच्छे कवि तथा अनेक ग्रन्थों के रचयिता थे। प्रखर बुद्धि एवं कवि हृदय लेकर तो हरिश्चन्द्र उत्पन्न हुए ही थे, कवि पिता का भी इनके बाल हृदय पर प्रभाव पड़ा जिस के फलस्वरूप इन्होंने बालकपन से ही कविता करना आरम्भ कर दिया। छोटी अवस्था में ही इन के माता पिता का देहान्त होगया और कुछ चंचल तथा स्वच्छंद प्रकृति के थे अतः इन की शिक्षा नियमित रूप से न हो पाई। पर आपने घर पर ही मराठी, गुजराती, मारवाड़ी, हिन्दी, बंगला, उर्दू और फारसी भाषाएँ सीखली। प्रायः इन सभी भाषाओं में हरिश्चन्द्र जी ने मनो विनोद के लिये कविताएँ लिखी हैं।

भारतेन्दुजी कवियों का आदर करते थे तथा उन्हें प्रोत्साहन देते थे। आप सहृदय, सज्जन, उदार, समाज सुधारक, देशप्रेमी, उत्साही एवं ललित कलाओं के प्रेमी थे। इन्होंने अपनी रचनाओं में देश और समाज की तत्कालीन परिस्थितियों पर प्रकाश डाला है। आप की दान शीलता, सत्य परता, तथा विशाल हृदयता के अनेक उदाहरण हैं।

हमारे इन देश के रत्न का ३५ वर्ष की अल्पायु में ही संवत् १९४१ में स्वर्गवास होगया। हिन्दी साहित्य के इतिहास में कई दृष्टियों से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का विशेष महत्त्व है। आपने परम्परागत ढर्रे के अनुसार रचना न कर के अपने नाटकों और काव्यों के द्वारा उस समय के हिन्दी साहित्य को भाषा भाव और शैली आदि सभी दृष्टियों में नया रूप प्रदान किया। इन के साहित्य क्षेत्र में अवतीर्ण होने के पूर्व रीतिकाल में काव्यका विषय केवल शृङ्गार ही था। वीर रस के कवि इनेगिने थे, हास्य रस का अभाव ही था अन्य रसों के यत्रतत्र वर्णन था भी तो गौण रूप से या शृङ्गार के अन्तर्गत। भारतेन्दु जी ने फैशन, रिश्वत, स्वार्थी देश भक्त, खुशामद, बिगड़े रईस एवं ढोंगी भक्त आदि विषयों पर व्यंगपूर्व तथा हास्य रस की कविता लिख कर यह अभाव दूर किया आपने सभी रसों पर प्रायः कविताएँ की पर शृंगार, शांत तथा करुण रस में विशेष सफलता मिली। सत्य हरिश्चन्द्र नाटक के मरघट आदि वर्णन में वीभत्स रस और शैव्या विलाप में करुण रस का अच्छा प्रतिपादन हुआ है।

प्राचीन प्रबन्ध काव्य का रूप कथात्मक और वस्तुवर्णनात्मक ही था और झूला ऋतुविहार मृगया आदि विषयों पर वर्णनात्मक काव्य रचे जाते थे भारतेन्दु

जी ने इस प्रचलित, परिपाटी की अवहेलना कर के 'विधि विडम्बना, मातृ स्नेह, समाज दशा आदि विषयों पर वर्णनात्मक कविता की। इस प्रकार प्राचीन कथात्मक तथा वर्णनात्मक प्रबन्धों और मुक्तकों के स्थान पर छोटे २ प्रसंगों पर पद्यात्मक निबन्ध लिखे गये।

छन्द सबन्धी परिवर्तन भी भारतेन्दु की रचनाओं में दर्शनीय है। रीति कालीन कविता प्रायः कवित्त, सवैया, दोहा तथा पदों आदि में हुई थी। आपने गीत पदक, रोला, दोहा कुण्डलियों, कवित्ता और सवैया आदि प्राचीन तथा नवीन छन्दों में कविता की। लावनियों, ख्याल तथा गजल भी आपने लिखी हैं और उर्दू की बहर पर भी कविता की। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्यिक परतन्त्रता तथा संकीर्ण प्रान्तीय मनोवृत्तियों का समूलोन्मूलन करके सत्साहित्य संवर्धन का सूत्रपात किया। साहित्यिक रूढ़ियों की अनिष्टकारी प्रथाओं को अंत करने का श्रेय आप को ही है। भारतेन्दु जी नवयुग के निर्माता हैं—आप की छत्रच्छाया में काव्य ने अपना जीर्ण शीर्ण कलेवर बदला और बड़ी बात यह हुई कि हरिश्चन्द्र जी के उदय से काव्य केवल सीमित कवि समुदाय के उपयोग की वस्तु न रह कर समाज तथा शिक्षित जनता से उस का सम्पर्क स्थापित हो गया। रीति कालीन काव्य की प्रवृत्तियों के कारण जो कविता समाज की उपेक्षा और अवहेलना की वस्तु बन गई थी वह भारतेन्दु के उदय से समाजोत्थान का एक आवश्यक अंग समझा जाकर अच्छी दृष्टि से देखा जाने लगा। आपने राष्ट्रीय भावनाओं के बीजारोपण तथा नवीन छन्दों को अपना कर अपने साहित्य में एक नवीन स्रोत बहाया। सुप्त भारत में जागृति के चिह्न दिखाई देनेलगे एवं सार्वजनिक कल्याण तथा उत्थान की पवित्र भावनाओं से कवि समाज भरपूर गया।

प्राचीनता और नवीनता का सुन्दर समन्वय आप की रचनाओं में होने के कारण आप इन दोनों को जोड़ने वाली बीच की कड़ी के समान हैं। भाषा पर केवल विषय सम्बन्धी क्रान्ति कारी परिवर्तन तक ही आप का महत्त्व नहीं 'समाप्त हो जाता, बल्कि आपके द्वारा लाया हुआ भाषा सम्बन्धी परिवर्तन और भी अधिक महत्त्व की बात है। जनता की नित्य प्रति की व्यवहारिक भाषा खड़ी बोली थी किन्तु काव्य भाषा अभी तक बृजभाषा ही थी—इस अस्वाभाविकता को दूर करने के लिये आपने जनता की भाषा को ही काव्यभाषा बनाया, क्योंकि समय के साथ भाषा को भी चलना ही चाहिये।

भारतेन्दु जी की साहित्य सेवा का उद्देश्य केवल अपना मनोरंजन न था बल्कि जन साधारण को उन्हीं की दशा से परिचित करा कर साहित्य की उन्नति करना उनका लक्ष्य था। अतः तीन रूपों में प्रचलित हिन्दी को

कृत्रिम रूपों से मुक्त कर के उसे मध्यम मार्ग ग्रहण करवाना उन्होंने अपना कर्त्तव्य समझा। इनकी भाषा में न तो लल्लू लाल का बृजभाषापन दिखाई देता है, न सदल मिश्र का पूर्वीपन और नहीं वह मुन्शी सदा सुखलाल की पंडिताई भाषा के पक्ष में थे। राजा शिव प्रसाद के उर्दू पन के तो वह विरोधी थे ही पर राजा लक्ष्मण सिंह की हिन्दी की विशुद्धता को भी उन्होंने नही अपनाया। बाबू साहब ने इन सब शैलियों के बीच सामंजस्य स्थापित कर के भाषा को ऐसा सरल और व्यावहारिक रूप प्रदान किया जिस से वह अति मधुर हो गई और भाषा में एक नवीन जीवन का संचार हो गया आपकी भाषा व्याकरण सम्मत है और मुहावरों और लोकोक्तियों के सुन्दर प्रयोग से उसमें सजीवता आगई है।

उनकी भाषा की स्वच्छता तथा मधुरता के लिये एक उदाहरण देखिये:—

"आजु लौ जो न मिले तो कहा,
हमतो तुम्हरे सब भाँति कहावै।
मेरो उलाहनो है कछु नाहि,
सबै फल आपने भाग को पावै॥"

भाषा के प्रारम्भिक अविकसित और अपरिष्कृत अवस्था में होने के कारण बाबू साहब की भाषा में कुछ दोष अवश्य थे, परन्तु भाषा की चुस्ती और एक सीमा तक पहुँची प्रौढ़ता एक रस है, तभी पंत जी ने यह पंक्ति लिखी है:—

"भारतेन्दु कर गये भारती की वीणा निर्माण।"

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भारतेन्दु का स्थान और भी अनेक रूपों में उत्कृष्टता प्राप्त किये परिलक्षित होता है। गद्य का सूत्रपात करने वालों में भी आप अग्रणी हैं। आप के समय तक गद्य का अभाव था— गद्य की इनी गिनी रचनाएं हुई थी वे भी ब्रज भाषा में ही थीं, जो गद्य के लिये उपयुक्त नहीं—थोड़ा बहुत गद्य खड़ी बोली में लिखा भी गया तो उसकी भाषा अव्यवस्थित, मिश्रित और दोष पूर्ण थी। इन्होंने सुव्यवस्थित शुद्ध और साहित्यिक खड़ी बोली में गद्य लिख कर मार्ग प्रदर्शन किया। तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा वैज्ञानिक विषयों तथा भावनाओं की अभिव्यंजना खड़ी बोली के गद्य में ही सम्यग् हो सकती थी। समाज की समस्याएँ विस्तृत तथा जटिल हो चली थी और उनकी व्याख्या की आवश्यकता पूर्ति निमित्त गद्य साहित्य का सृजन तथा संवर्धन आवश्यक था। बाबू शिव प्रसाद 'सितारे हिंद, की उर्दू मिश्रित शैली उन्होंने अनुपयुक्त समझी और राष्ट्रभाषा हिन्दी के गद्य को जन्म दिया।

हिन्दी साहित्य में नाटकों के अभाव की ओर भी इनका ध्यान गया। इस समय तक जो दो चार नाटक थे भी वे मौलिक नहीं थे, भाषा विचित्र थी और न स्टेज पर खेलने योग्य ही थे। भारतेन्दु जी ने अनेक नाटक लिख कर अभाव पूर्ति की, और उपन्यास भी लिखे। सारांश यह है कि उनकी प्रतिभा सर्वतोन्मुखी थी। साहित्य के विभिन्न अंगों पर लिखने के लिये उन्होंने साहित्यिकों का ध्यान आकर्षित किया। काव्य, नाटक, इतिहास, निबन्ध, आलोचना और उपन्यास आदि सभी कुछ लिखा और जनता तथा लेखकों दोनों की रुचि को परिस्थितियों तथा परिवर्तित समय के अनुकूल बनाने की चेष्टा की।

भारतेन्दु जी की ग्रन्थ रचना:—आपको हिन्दी साहित्य विशेष कर नाटक कार के रूप में जानता है, परन्तु कवि के रूप में भी अपने समय का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनके मुख्य ग्रन्थ हैं:—चन्द्रावलि, विषस्य विषमौषधम्, भारत दुर्दशा, नील देवी, अन्धेर नगरी और प्रेम जोगिनी आदि मौलिक तथा पाखंड विडम्बन, धनंजय विजय, कर्पूर मंजरी, मुद्रा राक्षस, सत्य हरिश्चन्द्र और भारत जननी आदि अनुवादित।

इनके नाटकों की सामग्री मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से ली गई है। 'भारत दुर्दशा' में देश की दशा का अत्यन्त प्रभावोत्पादक मनोहारी वर्णन है। 'नील देवी' एक ऐतिहासिक घटना के आधार पर लिखा है, 'चन्द्रावली' में आदर्श प्रेम का दिग्दर्शन है। 'प्रेम जोगिनी' में सामाजिक तथा धार्मिक जीवन क्षेत्र में व्यापक पाखण्ड का भंडा फोड़ है। 'विषस्य विषमौषधम्' नाटक में आपने इन परिस्थितियों का चित्रण किया है जो रजवाड़ों में प्रचलित अनुचित प्रथाओं एवं कुचक्रों के बाहुल्य से उत्पन्न हो गई थी। इनके अतिरिक्त 'अंधेर नगरी चौपट राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा', प्रहसन तथा अन्य कई छायानुवाद हैं।

काव्यों में:—'भारत वीरत्व', 'विजयनी विजय', 'वैजयन्ती', और 'रिपन अष्टक', राज भक्ति विषयक हैं; 'होली', 'मधु मुकुल', 'प्रेम फुलवारी', 'प्रेम प्रलापें', 'प्रातः स्मरणीय मंगल पाठ', 'प्रेमाश्रु वर्णन', 'वर्षा विनोद', 'प्रेम माधुरी', 'सतसई सिंगार' तथा 'कृष्ण चरित्र' आदि इनके प्रसिद्ध भक्ति और प्रेम काव्य हैं।

गद्य में आपने नाटक और अनेक साहित्यिक लेख लिखे तथा 'काश्मीर कुसुम', 'बुन्दी का राजवंश', और 'जैन रामायण का समय' आदि इतिहास से संबंधित ग्रन्थ हैं। 'सुलोचना', 'शीलवती' और 'सावित्री चरित्र' आदि इनके आख्यान हैं।

शैली:—भारतेन्दु जी की रचना शैली कई रूपों में दृष्टि आती है जिसके प्रधान भेद तीन हैं, (१) साधारण वर्णन प्रधान लेखों की परिचयात्मक शैली, (२) शुद्ध भाव पूर्ण स्थलों की भावात्मक शैली और (३) गम्भीर ऐतिहासिक और साहित्यिक लेखों की गवेषणात्मक शैली है।

साहित्य के प्रचार निमित्त रचना में हास्य और व्यंग का पुट अनिवार्य है—भारतेन्दु जी से पूर्व गद्य रचना में इसका अभाव था, आवश्यकतानुसार आपकी रचनाओं से इस अभाव की पूर्ति हुई - हास्य और व्यंग के पुट से इनकी कृतियां विशेष रोचक और लोक प्रिय बन गई। अपने मन्तव्यों का पूर्ण सफलता से व्यंग रूप में आपने संकेत किया है, जैसे—

"अंधेर नगरी अनबूझ राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा।
वेश्या जोरू एक समाना, बकरी गऊ एक करि जाना।
साँचे मारे मारे डोलें, छली दुष्ट सिर चढ़ चढ़ बोलें।
प्रकट सभ्य अंतर छलधारी सोई राज सभा बल भारी।
साँच कहैं ते पन नहीं खावें, झूठे बहु विधि पदवी पावें।"

इसके अतिरिक्त भारत की दयनीय दशा, प्राचीन भारत के महत्त्व, गौरव तथा वैभव पर आपकी कविताएँ बड़ी मार्मिक हुई हैं, जिनमें व्यंग का पुट होते हुए भी हृदय स्पर्शी प्रभावोत्पादकता है।

"भारत दुर्दशा" में वर्णित एक चित्र तो राष्ट्र प्रेमी के हृदय के बांध तोड़ देने वाला है:—

"रोअहु सब मिलि के आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥
सब के पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनों।
सब के पहिले जेहि सभ्य विधाता कीन्हों।
सब के पहिले विद्या फल जिन गहि लीनो॥
अब सब के पाछे सोई परत लखाई।
हाहा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥"

इसी प्रकार अनेक स्थलों पर कवि के आंतरिक दुःख का आभास उनकी द्रावक वाणी में मिलता है। भगवान से विनय करते हुए भारतेन्दु जी कहते हैं:—

"कहां करुना निधि केसव सोए।
जानत नेक न यदपि बहुत विधि भारत वासी रोए।
इक दिन वह हो जब तुम छिन नहिं भारत हित विसराए॥
इन के पसु गज की आरत लखि आतुर प्यारे धाए।
ताकी धार भई अब कुंठित हमरी बेर मुरारी॥"

अलंकार—अलंकारों का भी संयत प्रयोग भारतेन्दु जी की कविताओं में सम्यग् रूपेण हुआ है। प्रकृति वर्णन में रूपक और उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगा दी है फिर भी सप्रयास प्रदर्शन नहीं लगता; गंगा यमुना की छवि वर्णन के उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जायेगा:—

"नव उज्ज्वल जल धार हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच लहरत बूंद मध्य मुक्ता मनु मोहति॥
लोल लहरि लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर गन मन विविध मनोरथ करत मिटावत॥"
(गंगा छवि वर्णन)

इसी प्रकार यमुना छवि वर्णन में सुन्दर रूपक का विधान हुआ है।

"तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाए।
कै हरि सेवा हितय रहे निरखि नैन मन सुख लहत॥"

शब्दालंकार की स्वाभाविक छटा छप्पय में दर्शनीय है।

सारांश यह है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिंदी साहित्य की महान् विभूति थे। उन का महत्व न केवल भाषा, भाव और शैली की दृष्टि से साहित्य की उन्नति के लिये था, बल्कि आप आदर्श समाज सुधारक थे और आप की कृतियाँ तन्द्रा लिप्त देश के लिए अनुपम देन सिद्ध हुई। आप की हिंदी की सेवाएँ कई भागों में झुकी हुई होने से हिंदी साहित्य के इतिहास में क्रान्ति कारी परिवर्तन का कारण बनीं। नाटक, काव्य और गद्य रचनाओं तक ही आप के प्रयास सीमित न रहे हिन्दी पत्रों के जन्मदाता भी बाबू हरिश्चन्द्र को ही कहा जा सकता है। सन् १८६७ में इन्होंने 'कवि वचन सुधा' नामक मासिक पत्र निकाला फिर अक्तूबर १८७३ में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' और जनवरी १८७४ में ही स्त्रोपयोगी 'बाल बोधिनी' इन पत्रों के द्वारा उन्होंने सारे भारत वासियों तक देश समाज और धर्म के प्रति अपने कर्त्तव्य का संदेश पहुंचाया।

इतना ही नहीं उन्होंने प्राचीन कवियों के ग्रन्थों की खोज कर के प्रकाशन का कार्य नागरीप्रचारिणी सभा को सौंप कर देश की साहित्य निधि को प्रकाश में लाने का प्रयास किया।

भारतेन्दु जी की प्रतिभा अपनी मातृ-भूमि तथा मातृ-भाषा की त्रुटियों के निरीक्षण में जितनी पटु थी उतनी ही उस के उत्थान के प्रयत्न में भी दत्त चित्त रहती थी। भारत की चिंता में व्यग्र तथा हिन्दी के प्रेम में मतवाले भारतेन्दु जी ने अपना तन, मन धन सब कुछ इन्हीं दो पर न्योछावर कर दिया।

यद्यपि आदर्शों की पूर्णता और शुद्ध काव्य समीक्षा की दृष्टि से सूर और तुलसी के समान आप की मौलिकता नहीं है पर बदलते हुए समय ने आप की प्रतिभा को मौलिकता दी और आपकी प्रतिभा ने मौलिकता की ओर काव्य जगत को अग्रसर किया। पूर्ववर्ती कवियों के भावों को अपना कर उन्हें नवीन परिधान से आपने अलंकृत किया।

हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों में से आप प्रमुख स्थान रखते ही हैं, पर साहित्य के इतिहास की दृष्टि से तो आपका स्थान अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है इसी कारण तत्कालीन हिंदी के प्रेमियों ने उन्हें 'भारतेन्दु' की पदवी से अलंकृत करके अपनी गुण ग्राहकता का परिचय दिया।

भारतेन्दु की सर्वतोमुखी प्रतिभा और हृदय की लगन ने हिन्दी, हिन्दू-हिन्दुस्तान' की जो सेवाएं की है वह हिन्दू समाज विशेष कर साहित्यिक समाज युग युगान्तर तक याद रक्खेगा।

आपके विषय में साहित्य प्रेमियों द्वारा लिखी प्रशंसा यथार्थ सत्य है:—

"परम प्रेमनिधि रसिक वर अति उदार गुनखान।
जग जन रंजन आशु कवि को हरि चन्द्र समान॥"

(ख) द्विवेदी युग अथवा गद्योत्थान युग और उसके प्रतिनिधि कवि

हिन्दी साहित्य के विकास की अगली कड़ी का नाम द्विवेदी युग है जो श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी के उदय मे आरम्भ होता है। इस काल में हिन्दी साहित्य ने वह प्रौढ़ता, गम्भीरता और रचना बहुलता पाई कि जिस के कारण हिन्दी साहित्य विश्व साहित्य में भी अपना एक नाम रखने लगा।

राजनैतिक परिस्थितियां:—योरोपीय महायुद्ध में भी यहां के सिक्ख गोरखे और मरहठों की सेना ने जाकर प्रशंसात्मक कार्य किया इस से हमें यह विश्वास होगया कि हम में भी शक्ति और योग्यता है। युद्ध में सबसे मिलने से भेद भाव मिटा, कवियों को भी छोटे२ व्यक्तियो के लिये सहानुभूति हुई। इस प्रकार योरोपीय युद्ध से हम में जागृति और विश्वास उत्पन्न होगया।

१८८५ ई० में कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी,पर अब उसके कार्य ने जोर पकड़ा और जनता को प्रभावित किया। देश की उन्नति का प्रयास किया, विदेशियों के प्रति मोर्चा लिया, अपने भीतर जागृति की भावनाऐं भरी और अपनी कमजोरियां बता कर दूर करने का प्रयत्न किया। गोपाल कृष्ण गोखले लोकमान्य तिलक,मदनमोहन मालवीय तथा मिसेज एनीबेसेन्ट जैसे महारथी अवतरित हुऐ जिन्होंने जनता जीवन में जान डाली और स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये युद्ध में प्राण फूंके।

१९०५ ई० के लगभग आन्दोलन होने से भारत वासियों को धक्का लगा, वे और भी उत्तेजित हुए।

१९२१ के सत्याग्रह ने जनता को उत्तेजित किया।

दक्षिण अफ्रीका में भारतवासियों के प्रति हेय भावना देख कर विद्रोह हुआ।

धार्मिक स्थितिः—रामकृष्ण मिशन आदि द्वारा हिन्दू संस्कृति की रक्षा का उपाय किया जा रहा था उसका बहुत प्रभाव पड़ा।

अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने भारतीय संगीत कला व चित्रकला का संस्कार किया कला के विकास का साहित्य पर बहुत प्रभाव पड़ा।

१८५७ में पुरातत्व विभाग की स्थापना कर्नल कनिंघम द्वारा हुई थी। उसकी सहायता द्वारा तक्षशिला आदि की खुदाई हुई, उससे भारत के अतीत को गौरव प्राप्त हुआ। इससे साहित्य बहुत प्रभावित हुआ, एतिहासिक खोजों द्वारा साहित्यिक खोजों को सहायता मिली और कला के प्रति अनुराग।

एशियाटिक सोसायटी ने संस्कृत आदि ग्रन्थों का अनुवाद किया।

१९०४ के रूस जापान युद्ध और जापान की विजय के सम्मेलन की आयोजना से हिन्दुस्तानी साहित्य पर बहुत प्रभाव पड़ा। पश्चिम की लहरों का तूफान सा साहित्यिक जगत पर छा रहा था वृद्धों को उपेक्षा भाव से देखना, रूढ़ियों को तोड़ना, भौतिक वाद की ओर बढ़ना, जीवन की सरलता का नष्ट होना, आडम्बर का बढ़ना, अंग्रेज और अंग्रेजी भाषा को महत्व देना, हिन्दी तथा हिन्दू संस्कृति के प्रति उपेक्षा, बुद्धिवाद व विज्ञानवाद का प्रभाव बढ़ना, और उसके कारण हर बात में स्वच्छन्दता की पूर्ति बढ़ना, सामाजिक बन्धनों तक का टूटना, कौटुम्बिक प्रथा, जाति भेद को मिटाने की चेष्टा और स्वच्छन्दता रूप से प्रेम विवाह आदि करने की प्रवृति, नैतिकता की अवहेलना, व्यक्तिवाद का बढ़ना (किसी प्रकार के बन्धनों को न मानना) प्राचीन व नवीन को लेकर मानसिक अराजकता को फैलाना और आवश्यकताओं के बढ़ने से संघर्ष उत्पन्न होगये।

विशेषताएंः—राष्ट्रीय चेतना को अब बहुत बल मिल गया। वह बहुत उग्र हो रही थी अतः इस काल की कविता में वीरता और उग्रता प्रबल थी, परन्तु वह वीरगाथा काल से भिन्न थी। वीरता ने युद्ध और गांधी की करुणा का कोमल स्थान ले लिया, उसमें राज दर्प नहीं है बलिक संतप्त देश के पीड़ितों की कराह साहित्य में कई रूपों में प्रकट की गई है।

मातृ भूमि का दैवीकरण करना "नीलाम्बर परिधान हरित पर सुन्दर है।" (मैथिली शरण गुप्त)

अतीत के गौरव का गान करना—

"सुना है दधीचि का वह त्याग,
हमारी आत्मीयता का विकास।
पुरन्दर ने छविमय है लिखा,
मेरा अस्थि युग का इतिहास॥" (प्रसाद)

राम चरित उपाध्याय, राम नरेश त्रिपाठी आदि ने भी अतीत का गान गाया। मातृ भूमि के प्रति प्रेम की भावना—

"जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान।
वह नर नहीं नर पशु निरा है और मृतक समान॥"

सत्याग्रही वीरों के गाने के लिये जन गीतों का प्रचार—मैथिलीशरण ने "बारडोली" की सत्याग्रह की विजय कविता की है।

बलिदान की भावना लेकर—

माखन लाल चतुर्वेदी, लाल चतुर्वेदी आदि ने सुन्दर कविताएँ कीं—जैसे

"मुझे तोड़ लेना बन, माली, उस पथ में देना फेंक।
मातृ भूमि पर शीष चढ़ाने जिस पर जाते वीर अनेक।।"

शक्ति ओज और उत्साह भरने के लिये कविता होने लगी। और चरित्र चित्रण द्वारा भी देश भावना जागृत की गयी।

"राम चन्द्र भव भूमि अयोध्या का सदा।
और अयोध्या रामचन्द्र की सर्वदा।।"

सामान्य मानवता—कवियों की दृष्टि सामान्य मानवता की ओर जाने लगी? कविगण, कृषक, साहूकार, पंडित और चरवाहों को लेकर यथार्थ जीवन चित्र खींचने लगे? साहित्य में यथार्थ वाद का तात्पर्य यही था। महावीर प्रासद द्विवेदी द्वारा रचित 'कल्लू अल्हन' की जीवनी भी सामान्य मानवता पर सुन्दर पुस्तक है? हास्य लेखक भी सामान्य मानवता की ओर आकर्षित हुऐ। ईश्वरी प्रसाद शर्मा महत रामायण में लिखते हैं:—

"चित्रकूट के घाट पर भई सन्तन की भीर।
बाबा खड़े चलात हैं नैन सैन के तीर।।"

फिर नाथू राम शंकर सामान्य मानवता के प्रति सहानुभूति प्रकड करते हैं

"दिन में भूती, मोठ मसूर चना लेते हैं।
दो दो रूखे रोट रात को खा लेते हैं।।"

सैय्यद अमीर अलीमीर का 'बूढ़ा विवाह,

मैथिली शरण गुप्त का "किसान" सियारामशरण का 'अनाथ' गया प्रसाद शुक्ल का कृषक क्रन्दन,—बेचारा किसान जीवन से निराश होकर बादलों से कहता है—

दुखि हैं तुम्हारे कृषक के दुःख मिटाओ।
न कुछ बन पड़े तो बिजली गिराओ।।

राजा राम शुक्ल ने विधवा का धार्मिक चित्रण किया है। 'निराला, ने भी 'विधवा' और 'भिक्षुक' कविता लिखी है।

समाज की अनेकानेक समस्याओं का चित्रण इस काल की कविता में मिलता है। जैसे मैथलीशरण गुप्त की कविता में राजा प्रजा का पात्र है वह एक प्रतिनीधि मात्र है। यदि वह प्रजा का पालक नहीं तो त्याज्य है। हम दूसरा राजा चुने जो सब विधि सब की सुने। नारी की स्थिति पर—

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आंचल में है दूध और आंखों में पानी।।"

हिन्दूमुस्लिम झगड़े—

"हिन्दू मुस्लिम दोनों यह छोड़े विग्रह की नीति"

भक्तिभावना: –इस काल में श्रीवियोगी हरि जी आदि कवियों ने भक्ति भावना के आधार पर मानवीय भावनाओं का अभिव्यन्जना की; परन्तु वह भावना की तीव्रता, तल्लीनता और समंपण की भावना इन कविताओं में नहीं पाई जाती क्योंकि यह बौद्धिक युग था। बौद्धिकता के कारण भक्ति भावना का विकास सम्भव न हो सका फिर भी हमारे देश में प्राचीन आदर्शों के प्रति मोह रखने वाले व्यक्ति काफी संख्या में बचे रह गये थे और उनके द्वारा यत्रतत्र भक्ति भावना पर कविता लिखी जाती रही।

मैथलीशरण गुप्त में राम के प्रति अटूट श्रद्धा प्रतीत होती है। प्रत्येक काव्य का आरम्भ करते समय अपने आराध्य राम को श्रद्धान्जलियां अर्पण करना वह नही भूलते। फिर भी उनके काव्यों में भक्ति काव्य के तुलसी और सूर जैसे कवियों की आत्म विह्वलता का अभाव ही है। वियोगी हरि जी की 'वीर सतसई' तथा गद्य गीत पुस्तक 'साधना' में भक्ति भावना केवल एक जिज्ञासा मात्र लगती है ?

जैसे: –'प्रियतम आओ' "अवधि मात्र की भी" राम नाथ सुमन की इस पंक्ति जैसी अनुनय की भावना आधुनिक कविता में कम ही देखने को मिलती है।

श्रृंगार—हिन्दी साहित्य के इस काल में पहली बार श्रृंगार में स्वच्छन्द प्रेम को कविता का विषय बनाया गया। प्रेम की कोई सीमा, बाधा या मर्यादा स्वीकार नहीं करता। इस प्रेम की अभिव्यक्ति प्रकृति को लेकर ही आरम्भ हुई, जिसे आगे चलकर छायावाद नाम दिया गया। प्रेम को जीवन के तत्व रूप में (Philosophy of life) स्वीकार किया। प्रेम को ही कवि सब कुछ मान लेता है। प्रेम ही जीवन है, ईश्वर है, सब कुछ ? प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेम रूप भगवान आदि भावनाएँ आज की कविता में अभि-व्यंजित होती है।

प्रकृति चित्रण:—पं० रामचन्द्र शुक्ल, अयोध्या प्रसाद, उपाध्याय और श्रीधर पाठक आदि ने प्रकृति का यथार्थ चित्रण किया। देखिये—अयोध्या सिंह उपध्याय का 'संध्या वर्णन' –

"दिवस का अवसान समीप था, गगन था कुछ लोहित हो उठा,
तरु शिखा पर थी अब राजती, कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा",

श्रीधर पाठक तथा 'विद्या भूषण' 'विधु' की कविताओं में प्रकृति निरीक्षण से उत्पन्न आनन्दोद्रिक के साक्षात् दर्शन होते हैं ?

बा० मैथिली शरण गुप्त के 'प्रिय प्रवास', 'पंचवटी' एवं 'बुद्ध चरित्र' आदि काव्यों में सुन्दर प्रकृति वर्णन पाया जाता है, जैसे;

'पंचवटी की कुटी खोलकर खड़ी सुनहरी उषा थी'

प्रकृति सौन्दर्य परमुग्ध होकर जानकी का गाना देखिये —

'मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया'

प्रकृति चित्रण में अलंकारों का सहायक रूप में प्रचुर प्रयोग हुआ है, जैसे:—

"अलका की किस विकल विरहणी की पलकों वाले अवलम्ब।
सुखी सो रहे थे इतने दिन ! कैसे नीरद निकुर भव ॥"

भाषा:—जनता की भाषा खड़ी बोली होने के कारण महाकवि द्विवेदी आदि ने काव्य की भाषा को भी खड़ी बनाने का प्रयत्न किया। मैथिली शरण गुप्त इस प्रयास में पूर्ण सफल हुए और काव्य की भाषा खड़ी हो गई, यद्यपि भारतेन्दु ने भाषा को रूप दे दिया था परन्तु व्याकरण के नियमों में बांध कर परिष्कृत रूप महावीर प्रसाद द्विवेदी ने दिया ? शब्दों का प्रयोग भी इन लोगों ने स्वतन्त्र रूप से किया ? भाषा में प्रवाह शीलता पर्याप्त है। इस समय लाक्षणिकता मूर्तिमत्ता और रसात्मकता की दृष्टि से भाषा में कुछ कमी रही, जो आगे जाकर कवियों ने दूर की और भाषा प्रौढ़ बन गयी।

छन्द:—हिन्दी और संस्कृत वृत्तों के अतिरिक्त उर्दू बह्रों का प्रयोग विविध प्रकार के छन्दों का प्रयोग।

नये छन्दों की सृष्टि विशेष तो नहीं हुई पर श्रीनाथू रामशंकर ने नये छन्दों की भी सृष्टि की ? आगे चल कर छायावादी युग में पंत, द्वारा स्वच्छन्द छन्द और निराला द्वारा मुक्त छन्द की सृष्टि संस्कृत की अतुकान्तशैली का हरि-औध ने प्रिय प्रवास में प्रयोग किया।

द्विवेदी युग में बहुत सी अन्योक्तियों सूक्तियों और नीति के छन्द भी लिखे गये।

मुख्य कवि:—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरि औध' मैथिलीशरण गुप्त पं० श्रीधर पाठक, पं जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं रामचन्द्र शुक्ल, डा० श्याम सुन्दर दास, राम नरेश त्रिपाठी, वियोगी हरि, मुंशी प्रेम चन्द, राम नाथ सुमन, माखन लाल 'चतुर्वेदी', राम चरित उपाध्याय, माधव शुक्ल, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', लाला भगवानदीन तथा रूपनारायण पाँडेय आदि इस युग के प्रतिनिधि कवि एवं लेखक हुए हैं।

पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय, 'हरि औध'

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय का जन्म सं० १९२२ में हुआ। आप निज़ामाबाद, जिला आजम गढ़ के निवासी थे, पहले अध्यापक रहे, फिर कानून गो। वहाँ से पेंशन लेने के पश्चात् आप काशी में हिन्दी के प्रोफेसर हो गये सन् १९४७ में आप का स्वर्गवास हो गया।

'हरिऔध' जी द्विवेदी युग के एक प्रमुख कवि हुए इन्होंने ब्रज तथा खड़ी दोनों भाषाओं में कविता की जो भाषा भाव और शैली की दृष्टि से उच्च श्रेणी की है। आपकी प्रारम्भिक रचनाएं ब्रज भाषा में हैं बाद को खड़ी बोली के क्षेत्र में आये और इतने विख्यात हो गये कि लोग उनकी ब्रज भाषा की काव्योपासना को भी भूल गये। दोनों भाषाओं पर आपका समान अधिकार था।

हरिऔध जी की ब्रज भाषा में 'रत्नाकर' जैसी प्रौढ़ता तो नहीं है पर भाषा की शुद्धता आपका विशेष गुण है। खड़ी बोली की प्रारम्भिक रचनाएँ आपकी ठेठ बोली में उर्दू छन्दों में हुई, किन्तु पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रभाव से आपने खड़ी बोली की कविता के लिये संस्कृत के छन्दों तथा समास पदावली को अपनाया और भाषा संस्कृत गर्भित बन गई। सं० १९७१ में आपका महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' इस ढंग के उदाहरण स्वरूप प्रकाशित हुआ। इसके बाद फिर खड़ी बोली की बोल चाल की भाषा में 'बोलचाल' तथा 'चुभते चौपदे' आदि ग्रन्थ लिखे। इस प्रकार इनकी भाषा शैली दो प्रकार की है एक संस्कृत मयी और दूसरी ठेठ।

ग्रन्थ रचनाः—हरिऔध जी का सर्व श्रेष्ठ न्थ 'प्रिय प्रवास' है, जो खड़ी बोली में लिखा है पर ब्रज भाषा के शब्दों का भी सम्मिश्रण होने से प्रयत्न करने पर भी खड़ी बोली के ढांचे में न ढल पाया है। इसकी भाषा में संस्कृत पदावली की प्रधानता है और समास बहुला शैली तथा संस्कृत के वर्णिक छन्दों के उपयोग से शैली कुछ क्लिष्ट हो गई है इस महाकाव्य में आपने राधा के चरित्र चित्रण द्वारा लोक सेवा का आदर्श उपस्थित किया है। ग्रन्थ में स्थान २ पर शिक्षाप्रद बातें हैं, ग्राम्य जीवन का सुन्दर चित्र खींचा है और प्रकृति चित्रण भी अति श्रेष्ठ बन पड़ा है। मार्मिक स्थलों को पहिचानने की आप में अद्भुत क्षमता है। प्रियप्रवास में कवि की कवित्व शक्ति बड़ी सुन्दर दृष्टि आती है।

प्रियप्रवास पर 'हरि औध' जी को 'मङ्गला प्रसाद' पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। इसके अतिरिक्त इन्होने अनेक उपन्यास, नाट्य ग्रन्थों की रचना की, जिनमें मुख्य २ हैं:

'ठेठ हिन्दी का ठाठ', 'अधखिला फूल', और 'वेनिस का बांका' उपन्यास हैं; 'रुक्मणी परिणय', और 'प्रद्यम्न विजय' नाट्य ग्रन्थ है तथा 'नीति निबन्ध' और 'उपदेश कुसुम' नीति ग्रंथ। अतिरिक्त रचनाएं हैं, 'प्रेमाम्बु वारिधि' 'प्रेमाम्बु प्रवाह', 'बोल चाल' 'पद्य प्रसून', 'वैदेही वनवास' तथा चोखे और 'चुभते चौपदे' 'वैदेही वनवास' का भी कुछ भाग आधुनिकता लिये हुए है। इस पर शान्तिमय उपायों द्वारा हास्य परिवर्तन की गांधी वादी नीति का प्रभाव है।

भाषा:—आपकी रचनाओं में काव्य विलास सुव्यवस्थित, सुसंगठित, भाव पूर्ण और सुन्दर है। आपका शब्द भण्डार विस्तृत है और भाषा पर पूर्ण अधिकार है। भाषा व्याकरण सम्मत है। यह भली प्रकार कहा जा सकता है कि काव्य क्षेत्र में हरि औध जी ने युगान्तर किया है। ठेठ भाषा की कवितानों में मुहावरों की भरमार है, उदाहरण के लिये 'बोल चाल' से एक पद देखिये: —

"हां, नहीं, क्या कह रहे हो दो बता।
है दुरंगे रंग में दोनों रंगा॥
सिर हिलाते तुम रहे जिस ढंग से।
हाथ भी उस ढंग से हिलने लगा॥"

छन्द:- हरिऔध जी ने अपने ग्रन्थों की भाषा के अनुसार ही छन्द भी चुने हैं। प्रिय प्रवास की भाषा संस्कृत गर्भित होने के कारण संस्कृत के वर्णिक छंद चुने गये। कविता अतुकांत है। अन्य ग्रन्थों में कविता तुकान्त है तथा छंद उर्दू के ढंग के हैं। इन की कविता 'द्रुत विलम्बित, मालिनी, मन्दाकान्ता, वसन्त तिलका, शार्दूल विक्रीडित, वंशस्थ तथा शिखरिणी छंदों में हुई है। भावों के उपयुक्त छंद चुने हैं, और छंद चयन की उपयुक्तता ने ही प्रिय प्रवास में चार चांद लगा दिये हैं। प्रायः प्रकृति एवं सौन्दर्य्य वर्णन के लिये शार्दूल विक्रीड़ित, करुण रस की अभिव्यक्ति के लिये मन्दा क्रान्ता तथा मालिन और विलाप आदि निमित्त द्रुत विलम्बित छन्द चुने गये हैं। इस छन्द चयन की शैली में कवि शिरोमणि को आशातीत सफलता मिली। हां संस्कृत छन्दों का आश्रय लेने के कारण उन्हें भाषा में व्याकरण की तोड़ मरोड़ करनी पड़ी इस से प्रसाद गुण का अभाव हो गया।

रस और अलंकार:—आप की रचनाओं में सभी रसों का प्रति पादन हुआ है, हां 'प्रिय प्रवास' का प्रधान रस 'करुण' है। यद्यपि भयानक, रौद्र शृंगार और शान्त रसों का भी यथास्थान समावेश है। शृंगार रस में संयोग और विप्रलंभ दोनों पक्षों का वर्णन है उदाहरण, करुण रसः—

अहह सिसकती मैं क्यों किसे देखती हूँ।
मलिन मुख किसी का क्यों मुझे है सताता॥
जल जल किस का है छार होता कलेजा।
निकल निकल आहें कौन की बेधती हैं॥

शृङ्गार रसः—

(संयोग पक्ष)

नाना भाव विलास हाव कुशल आमोद आपूरिता।
लीला लोल कटाक्ष भाव निपुण, भ्रूभंगिमा पंडिता॥

(विप्रलंभ पक्ष)

कैसे बहे न दृग से नित वारि धारा।
कैसे विदग्ध दुख से बहुधा न रोके॥

अलंकारों में हरि औध जी ने उपमा और उत्प्रेक्षा का अधिक प्रयोग किया है। अलंकार प्रियता होते हुए भी आप की दृष्टि भावों पर अधिक रही है इसलिए भावों को बिगाड़ कर अलंकार ठुंसे दृष्टि नहीं आते बल्कि अलंकारों के प्रयोग से भावाभिव्यंजना में वृद्धि हुई है। अनुप्रासों का प्रयोग भी काव्य सौंदर्य की वृद्धि में सहायक हुआ है। जैसे—

"सरस सुन्दर सावन मास था।
घन रहे नभ में फिर घूमते॥"

स', 'स' और 'घ' 'घ' की आवृति से कविता अत्यन्त श्रुति मधुर और चित्ताकर्षक बन गई हैं।

उत्प्रेक्षा का उदाहरण भी देखिये:—

"कोई कोई मृदुल लतिका बेलियां औ लताएँ।
भीगी सीं थीं विपुल जल में वारि बूंदों भरीं थी॥
मानों फूली सकल तन में शोक की अश्रुधारा।
फूलों पत्तों विपुल कलियों डालियों से बही थीं॥"

आप की रचनाओं में कलापक्ष और भावपक्ष दोनों का सुन्दर सम्मिश्रण मिलता है। प्राचीन संस्कृत के अनन्य उपासक होते हुए भी समाज की नई

सुधार संबंधी योजनाओं के आप समर्थक हैं। आप की कविताओं पर आप के विचारों एवं सिद्धान्तों की स्पष्ट छाप झलकती है।

स्थान—हिन्दी साहित्य के इतिहास में आप का महत्त्वपूर्ण स्थान है विशेष कर खड़ी बोली के आविर्भाव और अभ्युदय काल में। हिंदी साहित्य में आप ने एक नवीन शैली का निर्माण किया।

प्रिय प्रवास में संस्कृत शब्दों के प्रयोग द्वारा उन्होंने साहित्यिकों की इस धारणा का मूलोच्छेदन किया कि संस्कृत शब्दों के प्रयोग से भाषा में नीरसता और कर्कशता आ जाती है।"

इन्होंने दो शैलियाँ अपना कर तथा कृष्ण काव्य को खड़ी बोली में लिख कर नई पीढ़ी का मार्ग प्रदर्शन किया।

हरिऔध जी ने कई प्राचीन कवियों के ग्रन्थों का उत्तमता से संपादन किया और आप श्रेष्ठ समालोचक भी हैं।

बाबू मैथिलीशरण गुप्त

बाबू मैथिलीशरण गुप्त का जन्म चिर गांव जिला झांसी में सं० १६४३ में हुआ। गुप्त जी ने धर्म की प्रवृति तथा कविता के प्रति प्रेम अपने पिता के सत्संग से ही प्राप्त किया था बालकपन मे ही उन्हें कविता लिखने और पढ़ने में रुचि थी। आप संस्कृत तथा बंगला के अच्छे ज्ञाता थे। गुप्त जी बड़े सौम्य प्रकृति, मिलन सार, सहृदय तथा प्रतिभा शाली व्यक्ति थे, आप की वेश-भूषा एवं स्वभाव में अत्यन्त सादगी थी। सन् १६ ४२ की क्रान्ति में आप सरकार द्वारा बन्दी कर लिये गये थे और कई वर्ष तक जेल में रहे।

आप आधुनिक खड़ी बोली के प्रतिनिधि कवि हैं। इन में राष्ट्रीयता की पूर्ण छाप दृष्टि गोचर होती है, क्योंकि प्रारम्भिक कविताएं पूर्ण तथा राष्ट्रीय हैं। विशेष कर भारत भारती की कविताओं में प्राचीन काल की गौरवान्वित अवस्था की देश की वर्तमान स्थिति से तुलना करके भविष्य के लिये आशा का संदेश दिया है। गुप्त जी भक्त होते हुए भी समाज सुधारक थे। 'हिन्दू' नामक पुस्तक में वह प्रमुख तथा उपदेशक के रूप में दृष्टि आते हैं। 'जयद्रथ वध' खण्ड काव्य है उस में राजनीतिक सिद्धान्तों का काव्यमय वर्णन है और वीर और करुण रस का सुन्दर दिग्दर्शन हुआ है। अनघ' के मघ में एक दृढ़प्रतिज्ञ ग्राम सुधारक के दर्शन होते है और झंकार की कविताएं रहस्य वाद की हैं। उन के रहस्य वाद में हम वैष्णवों की भक्ति भावना का अधिक परिचय मिलता है।

गुप्त जी की प्रतिभा का पूर्ण विकास साकेत' और यशोधरा में हुआ है। साकेत की विशेषता यह है कि आपने महा कवि तुलसी द्वारा उपेक्षित उर्मिला को प्रधानता देकर उसके चरित्र की उत्कृष्टता और त्याग की भावना को प्रकाश में लाने की चेष्टा की है। सभी पात्रों द्वारा उर्मिला के त्याग की प्रशंसा कराकर उसकी महत्ता बढ़ाई है। गुप्त जी के राम के चरित्र चित्रण में आधुनिक विचार-धारा की पूरी छाप है उनके राम तुलसी के राम से भिन्न ब्रह्म होते हुए भी मनुष्य है वह संसार में मानवता के प्रसार के लिये आये थे न कि केवल देवताओं के लिये जैसा कि निम्न उदारहण से प्रकट हैं:—

मैं आया उन के हेतु कि जो तापित है।
जो विवश, विकल, बलहीन, दीन शोपित है॥
संदेश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया॥

'साकेत' के राम आर्य संस्कृति के अग्रदूत हैं—

'मैं आर्यों का आदर्श बताने आया'

गुप्त जी ने साकेत लिख कर वर्तमान युग के प्रबन्ध काव्य सम्बन्धी अभाव को दूर किया। प्रबन्ध सौष्ठव की दृष्टि से यह ग्रन्थ अति उत्कृष्ट है, इसमें गाँधीवाद के विनत विद्रोह और सरल जीवन का पर्याप्त प्रभाव है। इस पर गुप्त जी को मङ्गला प्रसाद पुरस्कार प्राप्त हुआ।

अन्य रचनाएं:—इन प्रसिद्धि प्राप्त ग्रन्थों के अतिरिक्त गुप्त जी की अनेक रचनाएँ साहित्य संसार को भेंट हुई, जिनमें अधिकतर काव्य हैं, और कुछ नाटक उपन्यास और अनुवाद। 'पंचवटी', 'गुरुकुल', स्वदेश संगीत', वक संहार', वनवैभव,' सैरंध्री,' त्रिपथगा,। 'झंकार,' 'शक्ति,' 'विकट भट,' 'रंग में भंग', 'किसान,' 'शकुन्तला,' 'द्वापर,' 'सिद्ध राज,' मंगल घट,' 'विरहणी व्रजांगणा,, पलासी का युद्ध,' 'गुरु तेग वहादुर,' 'रुवाइयात उमरखय्याम चन्द्रहास,' तिलोत्तमा,' त्रिशंकु,' 'नहुप,, 'स्वप्न वासवदत्ता,' 'मेघनाथ वध' और वैतालिक आदि आप के प्रमुख ग्रन्थ हैं। इन में प्रबन्ध काव्य, खण्ड काव्य, मुक्तक कविता संग्रह आदि काव्य की विविध विधाओं के सुन्दर उदाहरण स्वरूप रचनाएँ हैं, और बंगला पुस्तकों के तथा उमर खैयाम की रुबाइयों तक के अनुवाद भी। वैष्णव होते हुए भी गुप्त जी में साम्प्रदायिकता की गंध नहीं है। नहुष गुप्त जी की पीछे की रचनाओं में से है। इस में मानव गौरव की एक झाँकी है और पतन के पश्चात् उत्थान का आशामय संदेश:—

चलना मुझे है, बस अन्त तक चलना।
गिरना ही मुख्य नहीं, मुख्य है संभलना॥
फिर भी उठूंगा और बढ़ के रहूँगा मैं।
नर हूं, पुरुष हूं, चढ़ के रहूँगा मैं॥

गुप्त जी ने प्राचीन इतिहास के वीरों तथा नायकों को लेकर कविता की परन्तु उन में आधुनिकता की छाप स्पष्ट है। आप की वर्णन शैली अत्यन्त मनोहारिणी है - कल्पना की उड़ान ऊंची होते हुए भी भाव और विषय अन्योन्याश्रित हैं। देश प्रेम जातीयता, देश काल और समाज की गति विधि को ले कर आप ने कविता की जिस में अत्यन्त उच्च भाव आदर्श रूप में मिलते हैं। आप की राष्ट्रीयता अवश्य परिमित है किन्तु वह विश्व प्रेम की विरोधिनी नहीं है। गुप्त जी आध्यात्मिक पक्ष का चित्र भी सफलतापूर्वक भाव जगत में

खींच सके हैं । वेदान्त को काव्य रूप में पाठकों के सामने लाना इन्हीं का काम है ।

गुप्त जी की कविता में चार शैलियां पाई जाती हैं—

१— उपदेशात्मक शैली

२—गीति काव्यात्मक शैली

३— नाट्यात्मक शैली तथा

४— प्रबंधात्मक शैली ।

इन में सर्वाधिक सफलता आप को प्रबंधात्मक और गीति काव्यात्मक शैली में मिली है—'साकेत' और 'भारत भारती' इस के ज्वलंत प्रमाण है आप का गीति काव्य हिंदी साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है । 'भारत भारती' में जहां हृदय तत्त्व का अभाव सा रहा है वहां 'साकेत' और 'यशोधरा' में वह पूर्ण रूपेण वर्तमान हैं । देखिये एक गीत साकेत से:—

"सखि निरख नदी की धारा,
ढलमल ढलमल चंचल अचल, झलमल झलमल तारा ।
निर्मल जल अन्तः स्तल भर के,
उछल उछल कर, छलछल कर के,
थल थल तर के, कल कल धर के, बिखराता है पारा ।
सखि निरख नदी की धारा ।"

उपदेशात्मक प्रवृत्ति के कारण कहीं कहीं गुप्त जी कला की उपेक्षा तक करते प्रतीत होते हैं, फिर भी इस शैली में सौंदर्य्य और सरसता दोनों विद्यमान हैं, यह है एक उदाहरण:—

"विचार लो कि मर्त्य हो न मृत्यु से डरो कभी ।
मरो, परन्तु यों मरो कि याद जो करे सभी ।।
हुई न यों सुमृत्यु तो वृथा मरे, वृथा जिये ।
मरा नहीं वही कि जो जिया न आप के लिये ।।
यही पशु प्रवृत्ति है कि आप आप ही चरे ।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे ।।"

नाट्यात्मक शैली में गुप्त जी को विशेष सफलता नहीं हुई है । छाया वादी और रहस्यवादी कविताओं में भी इन्हें सफलता नहीं मिली—वास्तविक जगत

का दुख सुख इन्हें जितना प्रभावित कर सका है उतनी 'अनंत' की खोज नहीं। मानवी प्रकृति की सरलता और सौदर्य्य के आप पुजारी थे, सरल प्रकृत जीवन की अभिलाषा अपनी कविता द्वारा व्यक्त की है:—

"यही होता हे जगदा धार!
छोटा सा घर आंगन होता इतना ही परिवार।
छोटा खेत द्वार पर होता स्वजनों का समवाय॥
थोड़ा सा व्यय होता मेरा थोड़ी सी ही आय।
घर ही गांव, गांव ही मेरा होता सब संसार॥
यही होता हे जगदा धार!"

गुप्त जी का प्रकृति वर्णन भी सुन्दर हुआ है। उन्होंने प्रकृति को उद्दीपन विभाव के रूप में न लेकर आलम्बन के रूप में लिया है। साकेत के नवम सर्ग में उर्मिला विषादावस्था के सरस चित्र में प्रकृति वर्णन अत्यन्त मनोहारी बन पड़ा है:—

"काली काली कोइल बोल—
होली होली—होली।
हंस कर लाल लाल होठों पर हरियाली हिल होली।
फूटा यौवन, फाड़ प्रकृति की पीली पीली चोली॥
होली—होली—होली"

भाषा—गुप्त जी उस समय साहित्य संसार में अवतीर्ण हुए थे जब कि कविता के लिये ब्रजभाषा अथवा खड़ी बोली की उपयुक्तता के संबंध में मतभेद चल रहा था, और खड़ी बोली की कविता के प्रति साहित्यिकों के मन में विशेष सम्मान नहीं हो पाया था। गुप्त जी ने खड़ी बोली को कविता के लिये पूर्ण रूपेण उपयुक्त बनाने के लिये उसे परिष्कृत और परिमार्जित किया—शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली की कविता परम उज्ज्वल रूप में साहित्य संसार को भेंट कर के विद्वानों के हृदय में खड़ी बोली के प्रति सद्भावना उत्पन्न की। आप की भाषा चलती हुई सरल, शुद्ध और सुव्यवस्थित है। अन्य भाषाओं के शब्दों का बहिष्कार कर के आप ने शुद्ध हिन्दी का रूप प्रस्तुत किया है। भाषा मंजी हुई और मुहावरेदार है। संस्कृत शब्दों का प्रचुर प्रयोग होते हुए भी भाषा क्लिष्ट नहीं हुई और व्याकरण सम्मत है। आप की भाषा का वाक्य विन्यास, शब्द संगठन और पदलालित्य सभी श्रेष्ठ है। ओज और प्रसाद गुण प्रमुख है। भाषा का माधुर्य्य और धारा प्रवाह सराहनीय है। भारतेन्दु युग में रही भाषा की त्रुटियां और हिन्दी उर्दू का दुरंगापन इन की भाषा से दूर हो

चुका था। हां कहीं कहीं तुक के मोह में शब्दों को विकृत कर दिया है, 'प्रति' का प्रती और कहीं कहीं साधारण कोटि के शब्दों की भरती भी दृष्टि आती है।

भाषा की लक्षणा और व्यंजना शक्तियों से गुप्त जी ने अपने काव्यों में सुन्दर चमत्कार उत्पन्न किया है।

छन्दः—गुप्त जी वार्णिक और मात्रिक दोनों प्रकार के छन्द लिखने में सिद्ध हस्त थे और प्राय सभी प्रचलित छन्द उन की रचनाओं में पाये जाते है। तुकांत और अतुकांत दोनों प्रकार की कविताएँ आपने की हैं। नये छन्दों का और प्रचलित संस्कृत वृत्तों का भी अधिक प्रयोग किया है। विषय के अनुसार छन्द चयन के कारण आप को अपनी रचनाओं में आशातीत सफलता प्राप्त हुई है।

रस और अलंकारः— गुप्त जी की रचनाओं में सभी प्रमुख रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है—शृंगार, वीर और करुण रस की प्रधानता है। अलंकारों का प्रयोग कला कौशल से युक्त हुआ है। उसका उद्देश्य चातुर्य चमत्कार नहीं था, अन्त्नुप्रासों का बड़ा सुन्दर और संयत प्रयोग हुआ है. हाँ कहीं २ उनको अति अखरती है। साकेत के नवम सर्ग में यह स्पष्ट है कि गुप्त जी ने अलंकारों का प्रयोग पूर्ण रूपेण काव्य की उत्कृष्टता बढ़ाने के लिये किया है—भाव पुष्टितः भाव स्पष्टता के लिये तो सुकवि अलंकारों का प्रयोग करते ही हैं—कहीं २ ऐसे स्थान हैं जहाँ अनुभूति की शिथिलता को अलंकारों ने दूर किया है अथवा अनुभूति की अधिकता से अनजान में ही अलंकारों का बाहुल्य हो गया। आपके छेकानु प्रास, वृत्तानु प्रास, यमक उपमा, उत्प्रेक्षा अतिशयोक्ति और संदेह आदि अलंकार विशेष कर उत्तमता से प्रयुक्त हुए हैं। प्राचीन ढंग में भ्रान्ति तद्गुण, श्लेष आदि अलंकारों के साथ उसमें नवीन ढंग के प्रभाव साम्य तथा मूर्त से अमूर्त की तुलना के भी अच्छे उदाहरण मिलते हैं।

गुप्त जी आचार्य द्विवेदी जी के प्रिय पात्र थे उनके द्वारा निर्धारित खड़ी बोली के मार्ग को पुष्ट और परिष्कृत करके आपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। गुप्त जी की एक उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि उन्होंने अन्य कवियों द्वारा उपेक्षित कैकयी, सुमित्रा, उर्मिला, लक्ष्मण, मेघनाथ और सिक्खों के सद्गुरु आदि पात्रों को सहृदयता पूर्वक अपने काव्य का विषय बनाकर उज्ज्वल चरित्रों के रूप में समाज के सामने प्रस्तुत किया।

गुप्त जी सर्व साधारण के कवि थे। छाया वाद के क्षेत्र में जो सर्वोच्च स्थान प्रसाद जी का है— छायावाद के बाहर वही स्थान काव्य क्षेत्र में गुप्त जी का है उनकी रचनाएँ साहित्य की अमर निधि हैं।

पं० श्रीधर पाठक (सं० १९१६-१९८५)

ब्रज भाषा के आधुनिक कवियों में पं० श्रीधर पाठक का स्थान भी श्रेष्ठ है। इनकी लेखनी ब्रज भाषा में सिद्ध हो चुकी थी, बाद को इन्होंने खड़ी बोली में कविता करना आरम्भ किया। खड़ी बोली में यत्र तत्र ब्रज भाषा के शब्द प्रयोग से माधूर्य्य उत्पन्न हो गया है।

सन् १९३१ में पाठक जी ने लावनी की तर्ज में गोल्डस्मिथ के हरमिट का अनुवाद 'एकान्तवासी योगी' खड़ी बोली का पद्य ग्रन्थ निकाला। दूसरा ट्रेव्लर का अनुवाद श्रान्त पथिक रोला छन्द में लिखा। डेज़रटेड विलेज का अनुवाद 'ऊजड़ गाँव' ब्रज भाषा में किया।

आपने कई प्रकार के नवीन छन्दों की रचना की है और कुछ अतुकान्त छन्द भी लिखे हैं। श्रीधर जी प्रकृति के परम उपासक थे, उन्होंने प्रकृति की मनोरम क्रीडा स्थली काश्मीर की प्रशंसा में 'काश्मीर सुषमा' शीर्षक छोटी सी पुस्तक लिखी है जिसमें प्रकृति के आलम्बन रूप वर्णन का प्रयास दृष्टिगोचर है।

पाठक जी के राष्ट्रीय गीत 'भारत गीत' शीर्षक रचना में संग्रहीत हैं जिससे आप के हृदय की राष्ट्रीय भावना का परिचय मिलता है।

अतुकान्त कविता का एक उद्धरणः—

प्रसव के काल की लालिमा में लिहसा।
बाल शशि व्योम की ओर था आ रहा॥
सद्य उत्फुल्ल अरविन्द निभ नीलसु।
विशाल नभ वृक्ष पर जा रहा था चढ़ा॥

भाषा भाव और शैली सभी दृष्टियों से पाठक जी की कविता हिन्दी साहित्य के लिये उत्कृष्ट देन है।

————

श्री जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'

श्री जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' का जन्म सं० १६२३ में काशी के अग्रवाल वंश में हुआ। आपके पिता श्री पुरुषोत्तम दास हिन्दी तथा फारसी के अच्छे ज्ञाता थे—वह भारतेन्दु जी के मित्र थे, अतः अपने पिता एवं भारतेन्दु का इन पर अच्छा प्रभाव पड़ा। रत्नाकर जी की शिक्षा दीक्षा काशी में ही हुई—एम० ए० तक इन्होंने फारसी का भी अध्ययन किया।

सन् १६०० के लगभग दो वर्ष तक आवागढ़ राज्य में एक प्रमुख कर्मचारी रह कर काशी में तत्कालीन अयोध्या नरेश के प्राइवेट सैक्रेट्री हो गये और जीवन पर्य्यन्त अयोध्या में ही रहे।

आप अत्यन्त सरल स्वभाव, हंसमुख और मिलनसार प्रकृति के थे—सं० १६८६ में हरिद्वार में आपका स्वर्गवास हो गया।

रत्नाकर जी ब्रज भाषा के आधुनिक कवियों में सर्व श्रेष्ठ थे। द्विवेदी युग में खड़ी बोली में भी कविता करने का प्रचलन हो गया था और धीरे २ ब्रजभाषा को कवि गण त्यागने लगे थे पर ब्रज भाषा की कोमल कांत पदावली अभी भीं कुछ कवियों को प्रभावित किये हुए थी। 'रत्नाकर' जी उसी श्रेणी के कवि थे आपने संस्कृत गर्भित शुद्ध साहित्यिक ब्रज भाषा में कविता की। इनकी भाषा में सभी काव्योचित गुणों का समावेश है और देव और पद्माकर आदि कवियों से टक्कर लेती है। इनकी भाषा में ओज माधुर्य्य और प्रसाद तीनों गुणों का सुन्दर समन्वय है। मुहावरों और कहावतों का भी अच्छा प्रयोग है, उस से भाषा की शक्ति और सौंदर्य्य में वृद्धि हुई है। भाषा सुव्यवस्थित, प्रौढ़, प्रवाह पूर्ण तथा सरस है। विशेष बात यह है कि आपने अँग्रेजी की लाक्षणिकता तथा वक्रता को अपना कर अपनी भाषा की व्यंजना शक्ति की वृद्धि की है। भाषा में सबलता आकर्षण तथा स्वाभाविकता है। आप का शब्द चयन एवं संगठन प्रशंसनीय है। रीति कालीन कवियों की भाषा का निखरा तथा विकसित रूप हमें आप की भाषा में मिलता है। व्याकरण की दृष्टि से भी रत्नाकर जी की भाषा नितान्त शुद्ध है।

भाषा सौंदर्य्य के उदाहरणार्थ गङ्गावतरण से एक छन्द दिया जाता है:-

"छहरावति छबि कबहुं कोऊ सित सघन घटा पर।
फबति फैलि जिमि जोन्ह छटा हिम प्रचुर पटा पर॥

तिहिं घन पर लहराति छुरति चपला जब चमकैं।
जल प्रतिबिम्बित दीप दाम दीपति सी दमकैं।।"

ग्रंथ रचना:--'उद्धव शतक', 'गंगावतरण' और 'हरिश्चन्द्र काव्य' रत्नाकर जी के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। हिंडोला प्रारम्भिक ग्रन्थ है, अन्य रचाएं हैं शृंगार लहरी', 'वीराष्टक', 'रत्नाष्टक', 'समालोचनावर्श', 'घनाक्षरी नियम रत्नाकर' और कल काशी। 'सूर सागर' 'हमीर हठ', 'हित तिरंगिणी', 'कंठाभरण' आदि आपके सम्पादित ग्रन्थ हैं, और 'बिहारी रत्नाकर' सतसई की, प्रसिद्ध टीका। 'साहित्य सुधानिधि' पत्र का आपने सम्पादन भी किया है।

'रत्नाकर' जी ने हरिश्चन्द्र काल से कविता करना प्रारम्भ किया था और आधुनिक युग में भी उस परिपाटी को जीवित रक्खा 'उद्धव शतक' भाव प्रधान ग्रन्थ हैं और गंगावतरण कथात्मक। इनमें प्राचीन परिपाटी का पालन करते हुए भी आप भावों को नवीनता देने में सफल हुए हैं। आपने उद्धव शतक में मनोवैज्ञानिक ढंग से भावों का विश्लेषण किया है। मानवी स्वभाव का आपको विस्तृत अनुभव होने के कारण बड़ा मार्मिक और सजीव वर्णन बन पड़ा है:--

कृष्ण के वियोग में गोपियों की हृदय व्यथा का चित्रण देखिये:—

आवति दिवारी बिलखाइ ब्रजनारी कहै,
अब कै हमारे गाँव गोधन पुजै है को।
कहै रतनाकर विविध पकवान चाहि,
चाह सौ सराहि चख चंचल चलै है को।।
निपट निहोरि, छोरि हाथ निज माथ ऊधो,
दमकत दिव्य दीप मालिका दिखै है को।
कूबरी के कबर सों ऊबर न पावै कान्ह,
इन्द्र कोप लोपक गुबर्धन उठै है को।।

सामाजिक और धार्मिक रीति रिवाजों को भी आपने सूक्ष्म दृष्टि से देखा है। उद्धव शतक के षट् ऋतु वर्णन में तथा 'गंगावतरण' व 'रत्नाष्टक' आदि में भी यत्रतत्र इनके प्रकृति निरीक्षण और प्रेम का आभास मिलता है। गंगावतरण में आपने प्रकृति के नाना रूपों के साथ अपने हार्दिक भावों का सामंजस्य दिखाया है।

उक्ति वैचित्र्य, वक्रता और व्यंग्य आदि रत्नाकर जी की कविता की विशेषताएं हैं।

इनके ग्रन्थों से वैद्यक, रसायन शास्त्र, योग, वेदान्त और मनोविज्ञान आदि के ज्ञान का भी परिचय मिलता है।

छन्द:—आपने सवैया, घनाक्षरी तथा रोला आदि प्राचीन छन्दों में ही कविता की है जिनमें अधिकतर ब्रजभाषा के कवि कविता करते थे। आपकी पदावली सरस, स्वाभाविक और भाव पूर्ण है।

रस तथा अलंकार:—आपके ग्रन्थों में विभिन्न रसों का परिपाक अति उत्कृष्ट हुआ है। यथा स्थान लगभग सभी रसों का आपकी रचनाओं में समावेश है पर 'उद्धव शतक' में विप्रलम्भ रस की प्रधानता है जिसके आलम्बन तथा उद्दीपन विभावों तथा अनुभावों के सुन्दर उदाहरण इस ग्रन्थ में मिलते हैं। अनुभावों का एक अत्यन्त रुचि पूर्ण उदाहरण ऊधव के आने का समाचार पाकर गोपियों की दशा वर्णन में मिलता है:—

"आए दौरि पौरि लौं अवाई सुनि ऊधव की,

"आवति कछूक पूछिबे औ कहिबे को मन,
परत न साहस पै दोऊ दरि लेत हैं।
आनन उदास सांस भरि उकसौ है करि,
सौहैं करि नैननि निचौहैं करि लेत हैं॥"

वास्तव में रत्नाकर जी की काव्य कुशलता उच्च कोटि की है।

अलंकारों का प्रयोग आप की रचनाओं में प्रचुर होते हुए भी सर्वत्र संयत और कला पूर्ण है। अलंकारों के कारण भाव बिगड़े नही हैं, उलटे उन से भाव व्यंजना में वृद्धि हुई। आप की कविता ध्वन्यात्मक होती है और उस में चित्र काव्य के भी दर्शन होते हैं। उपमाएँ झूठी और बासी नही होती, नवीन उपमाओं की भी आपने व्यंजना की है।

शब्द अलंकारों की भी सर्वत्र बहार है किन्तु स्वाभाविकता नष्ट नही हुई है। अनुप्रास, यमक' उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और विरोधाभास आदि का सुन्दर प्रयोग मिलता है।

उदाहरण के लिये चित्र शैली का नमूना गंगावतरण में देखिये:—

"दोउ धारा टकराइ, उछरि, मुरि, पुनि, जुरि, धावति।
सेल नील घनपाति लरति नभ में ज्यों भावति॥
हरत लहर दुरंग संग मिलि जलि मन भाई।
तरु तर ज्यों चल पत्र बीच ह्वै परति जुन्हाई॥"

रत्नाकर जी प्राचीन परम्परा के अंतिम कवि थे। समय का पूरा प्रभाव आप पर दृष्टि आता है। इन्होंने अपने काव्य को राधा कृष्ण तक ही सीमित न रख कर व्यापक बनाया है। 'गंगावतरण' के बारहवें सर्ग में देशहितैषिता के भाव परिलक्षित हैं। रीति कालीन कवि देव, घनानंद, बिहारी और पद्माकर आदि की कविता से भाव साम्य स्थान स्थान पर दृष्टि आता है किन्तु भावापहरण नहीं कहा जा सकता।

आधुनिक युग के ब्रजभाषा के कवियों में रत्नाकर जी का सर्व श्रेष्ठ स्थान है।

पं० माखनलाल चतुर्वेदी (एक भारतीय आत्मा)

मध्यकाल में होशिंगाबाद जिले के बाबई नामक ग्राम में सं० १६४५ वि० में आपका जन्म हुआ। चतुर्वेदी जी ने नार्मल पास करते ही अध्यापन कार्य्य प्रारम्भ कर दिया था। संस्कृत, मराठी, गुजराती, बंगला तथा संस्कृत भाषाओं का अध्ययन आपने घर पर ही किया। बचपन मे ही साहित्यिक रुचि होने के कारण आप पत्र पत्रिकाओं में कविताएँ देने लगे, और अपने हितचिन्तकों से प्रोत्साहन प्राप्त करके शीघ्र ही सार्वजनिक क्षेत्र में आ गये। असहयोग आन्दोलन में आपने सक्रिय सहयोग दिया और जेल भी हो आये। चतुर्वेदी जी ओजस्वी वक्ता देश भक्त, प्रिय नेता तथा राष्ट्रीय कवि हैं।

आपको गद्य और पद्य दोनों पर समान अधिकार है। ओजमय और प्रभावोत्पादक शब्दों का प्रयोग आपकी शैली की विशेषता है। आपकी कविताओं में ओज, माधुर्य्य और प्रसाद गुण का सुन्दर समन्वय है। चतुर्वेदी जी की कविताओं को हम तीन श्रेणियों में रख सकते हैं:—

(१) राष्ट्रीय विचारों वाली, (२) प्रेमानुभूति विषयक और (३) रहस्यवादी।

आपकी राष्ट्रीय कविताएँ सामाजिक न होकर चिरकालीन हैं, और अन्य कविताओं में आन्तरिक मनोभावनाओं के सरस चित्रण हैं। हां भाव अभिव्यंजना कहीं कहीं अत्यन्त मार्मिक होते हुए भी कुछ दुरूह सी हो गई है। रहस्यवाद की तो आपकी कुछ कविताओं में झलक मात्र दृष्टि आती है।

प्रथम प्रकार की कविताओं में 'बलिदान', 'उन्मीलित वृक्ष', 'सिपाही', 'मरण त्योहार' आदि प्रसिद्ध हैं। 'पुष्प की अभिलाषा' शीर्षक कविता नवयुवकों द्वारा विशेष पसन्द की गई। कवि आदर्श त्याग को ही सर्वोपरि मानता है:—

"मुझे तोड़ लेना बन माली, इस पथ में देना तुम फेंक।
मातृ भूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक॥"

आपकी राष्ट्रीय कविताओं में भावात्मकता का सुन्दर सामंजस्य है, पर वे केवल परतन्त्र भारत की वेदना, दुख और कराह की द्योतक मात्र नहीं हैं, उनसे हमें एक समवेदना पूर्ण संदेश तथा कर्मवीर बनने की शिक्षा भी मिलती है।

'सौदा', 'तरुण कलिका', 'जीवन फूल', 'बलिदान का मूल्य', 'कैदी और कोकिला' आदि भावात्मकता के सामंजस्य के सुन्दर नमूने हैं।

"अन्त स्थल के अतल वितल को क्यों न बेध जाते हो?
अरे वेदना-गीत, गगन को क्यों न छेद जाते हो।।"
(वेदना गीत)

आपके दूसरे प्रकार की कविताएँ प्रेमानुभूति विषयक हैं। संसार की प्रत्येक वस्तु में कवि को प्रेम तथा सौंदर्य्य के दर्शन होते हैं। किन्तु आपके प्रेम तथा सौंदर्य से बाह्य जगत का कोई सम्बन्ध न हो कर अन्तर्गत से है। त्याग दृढ़ता और ओज से पूर्ण आपकी 'नवस्वागत', 'आंसू', 'लौंज भई मनुहार' और 'हरियाली चड़ियाँ' आदि इस श्रेणी की प्रमुख कविताएँ हैं।

रहस्यवाद के अन्तर्गत आने वाली कविताओं में 'लूंगी दर्पण छीन' कुछ दुर्बोध भाववाली कविता है। इस प्रकार की कविताओं में आध्यात्मिकता का गहरा रंग है। रहस्यवादी प्राचीन हिन्दी कविता से सहयोग लेकर उन्होंने अपनी कविताओं को भाव विलास किया है। भाव व्यंजना में उनकी सांकेतिक शैली अपना विशेष महत्व रखती है। इस दृष्टि से चतुर्वेदी जी का छायावादी कवियों में विशेष स्थान है।

ग्रन्थों में 'कृष्णार्जुन युद्ध' आपका प्रसिद्ध नाटक है। 'वनवासी' कहानी संग्रह तथा 'साहित्य देवता' गद्य काव्य ग्रन्थ है। कविताओं का संग्रह 'हिम किरीटिनी' नाम से प्रकाशित हुआ है।"

भाषा, छन्द, और अलंकारः—चतुर्वेदी जी ने खड़ी बोली में कविता की है पर आपकी भावुकता के आधिक्य के कारण भाषा में 'कीमत', 'गरूर', 'गद्दार', और 'बारूद' आदि उर्दू शब्दों का प्रचुर प्रयोग हुआ है अतः आपकी भाषा शुद्ध साहित्यिक नहीं कहला सकती। भाषा अत्यन्त मधुर भी कहलाने योग्य नहीं, पर उनके राजनैतिक वक्ता होने के कारण ओजस्विनी और प्रभावोत्पादिनी होने में संदेह नहीं अपने विषय में उन्होंने स्वयं कहा है—'जब हृदय में प्रेम का प्रबल उद्रेक होता है, उसी समय कविता का जन्म होता है, चाहे वह शब्दों में चित्रित न हो पाये।" कुछ शब्दों के विचित्र प्रयोग के कारण उनकी भाषा कहीं २ अस्पष्ट सी प्रतीत होती है, जैसे हृदय के लिये 'ही' का प्रयोग।

चतुर्वेदी जी की कविताओं में आध्यात्मिक शृंगार के दर्शन होते हैं और 'करुणा रस' से पूर्ण कविताएँ भी आपने की हैं। आपने नवीन छंदों में भी रचना की है। आपकी षट पदियाँ बड़ी ओजपूर्ण हैं। अलंकारों का संयत और सुन्दर प्रयोग सर्वत्र दर्शनीय है—कहीं २ तो अलंकारों की छटा से काव्य सौन्दर्य तथा प्रभाव में विशेष वृद्धि हुई है।

कुछ कविताएँ आपने प्राकृतिक दृश्यों पर भी लिखी हैं। 'प्रभात' तथा 'सतपुड़ा शैल के झरने को देख कर' आदि ऐसी ही कविताएँ हैं।

साहित्य में स्थान:—अनुभूति प्रधान राष्ट्रीय कवियों में चतुर्वेदी जी का स्थान अति उच्च है। राष्ट्रीय भाव की कविताओं में प्रेमानुभूति एवं रहस्य वाद का भी सम्मिश्रण होना आपकी कविताओं की विशेषता है, जो अन्य कवियों में मिलना दुर्लभ है। इस दृष्टि से आपकी कविता साहित्य में विशेष महत्व रखती है।

छायावादी युग और उसके प्रतिनिधि कवि

राजनैतिक स्थिति:——राष्ट्रीयता की लड़ाई लड़ते२ बहुत दिन बीत गये, कुछ फल प्राप्ति न होने से लोगों में निराशा, शंका अविश्वास दुःख, संघर्ष और गम्भीर जिज्ञासा आदि व्याप्त हो गई थी। युद्ध के बाद के अधिकारियों के दमन चक्र के कारण विरोध की ज्वाला अधिक भड़कने लगी। रोलेट एक्ट आदि पास कर के अंग्रेजों को अधिक अधिकार दे दिये गये— न अपील न वकील न दलील'।

जलिया वाले बाग के काण्ड और साइमन कमीशन आदि से लोग बहुत भड़क गये। १९३०-३१ ई० के सत्याग्रह आन्दोलन से भी बहुत विरोध फैला चारों ओर जागृति की लहर फैल रही थी, स्त्रियों में भी जागृति मची और अधिकार, भावना आदि की आवाजें उठने लगी।

योरोपीय सभ्यता और वैज्ञानिक आविष्कारों ने जीवन की आवश्यकताओं को बढ़ा कर लोगों का जीवन कष्ट पूर्ण बना दिया। एक देश दूसरे से युद्ध के लिये तत्पर रहने लगा, विश्व में घोर अशान्ति फैल गई। हमारा देश भी इस अशान्ति से बचा न रह सका।

सामाजिक परिस्थितिः—शिक्षा प्रचार से नव युवकों की महत्वा कांक्षाएँ तो जागृत हुई, पर बाहर जगत में उन्हें अनुकूल परिस्थिति न मिलने के कारण भयानक ठोकरें खानी पड़ती थी।—बेकारी की समस्या और गरीबी बढ़ने लगी। पश्चिम के स्वच्छन्द विचारों के नशे में लोग अपने सांस्कृतिक आधार से भी किनारा काटने लगे। आध्यात्मिक और नैतिकता का उत्तरोत्तर ह्रास होता जारहा था गांव और नगर के जीवन को लेकर समस्या उपस्थित हो गई। सामाजिक, राजनैतिक और मानसिक सब प्रकार से मानव के जीवन में संघर्ष होने लगा।

धार्मिक स्थितिः- योरोप और भारत के सांस्कृतिक संघर्ष में भारत की प्राचीन श्रद्धा नष्ट हो गई और विश्वास के लिये आधार भी न मिला, जहां शान्ति प्राप्त होती अतः मन और मस्तिष्क में उलझन चलने लगी। धर्म को आलोचना की दृष्टि से देखा जाने लगा, बंगाल में धार्मिक कर्म काण्ड के विरुद्ध दल खड़े हो गये और इधर भी आर्य समाज आदि के रूप में कई संगठन बन-गये। पश्चिम के मानवता वाद के आदर्श ने हमारी पाप की भावना को परिवर्तित कर दिया; दोषों के लिये व्यक्ति को दोषी न मान कर समाज को माना गया।

नास्तिकता का प्रचार होने लगा। ईश्वर की सत्ता तथा सत्य और झूठ तक को अविश्वास की दृष्टि से देखा जाने लगा।

विशेषताएं:—इन संघर्षमय परिस्थितियों के मध्य यह स्वाभाविक ही था कि कठोर संसार से बच कर पलायनवाद प्रवृत्ति ही साहित्य में आती। आज का कवि नश्वर जगत से परे एक शाश्वत सौंदर्य की झाँकी कण २ में देखता है। पंत ने कहा है, "सुमन में तेराहास कली। नव नव अस्फुट हास" इस तीव्र संघर्ष मय जीवन में जब व्यक्ति से वहिजगत में कुछ करते धरते न बना और तीव्र निराशा हृदय में घर करने लगी, स्वच्छन्द वृत्ति को भी प्रोत्साहन मिलने लगा तो व्यक्ति का अपने आप में लीन होना स्वाभाविक था। इसलिये उस काल की अधिकांश कविता में व्यक्ति वाद प्रधान हं। व्यक्ति प्रकृति को भी अपनी ही अनुभूतियों में रंग कर देखता है। अपने मन के ही अनुरूप प्रकृति को भी जामा पहिना लेता है। इस प्रवृत्ति के कारण हिन्दी साहित्य में प्रकृति को लेकर बड़ी सुन्दर और व्यापक काव्य सृष्टि हुई और यह साहित्य छाया वादी साहित्य कहलाया।

आत्मा, परमात्मा और प्रकृति इन तीनों तत्त्वों की एकता बनाने वाली दार्शनिक व्याख्या इस समय की कविता का प्रमुख उद्देश्य है। यही एकात्मता और सामञ्जस्य दिखाने में छाया वादी कविता ने बड़ा सहयोग दिया है। एक ओर वह संसार की नश्वरता को देखता है, दूसरी ओर उसके आकर्षण को। नश्वरता के आवरण को छेद कर शाश्वत सौंदर्य्य में आत्मा को ले जाना ही छाया वादी कवियों का उद्देश्य है। बीच २ में इस सौंदर्य्य के प्रति प्रेरणा उन्हें संसार के दुख से मिलती है। अतः दुख वाद इस कविता का प्रधान लक्षण बन गया है।

"मैं नीर भरी दुख की बदरी" – महा देवी वर्मा

कभी २ कवि को निराशा होने लगती है और वह पुकार उठता है:—

"नश्वर स्वर से कैसे गाऊँ आज अनश्वर गीत,,

लेकिन इस निराशा में प्रेम का सम्बन्ध ही साधक के चरणों को शक्ति प्रदान करता है। इस नश्वर जगत में प्रेम ही एक शाश्वत वस्तु है। वह उस प्रेम में अपने को डुबा देना चाहता है।

इस प्रकार सौंदर्य्य, प्रेम, दर्शन और वेदना इस काव्य के मुख्य तत्त्व हैं।

महादेवी निराला पंत और प्रसाद इस काव्य का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं। महादेवी में वेदना प्रधान है, प्रसाद में सौंदर्य्य, निराला में दार्शनिकता और पंत में प्रकृति।

प्रकृति को ले कर इन कवियों ने कई प्रकार चित्रण किया है, कहीं प्रकृति के वासना मय सौंदर्य्य का चित्रण है तो कहीं अपने 'भावनुसार प्रकृति को देखा'। कहीं प्रकृति को नारी के रूप में चित्रित करते हैं तो कहीं माँ रूप में देखा है।

क वासनामय सौंदर्य्य का चित्रण: -

"विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी स्नेह स्वप्न मग्न।
अमल कोमल, तन तरुण जुही की कली,
दृग बंद किये शिथिल पत्राङ्क में
वासन्ती निशा थी"

ख—अपने भावानुसार प्रकृति को देखना:–पंत की "छाया" और निराला की 'यमुना के प्रति',

"धरा पर झुकी वेदना सदृश मधुर मुरली सी फिर भी मौन
वेदना दूती सी तुम कौन"

(पंत)

"यमुने तेरी इन लहरों में किन अधरों की आकुलता
कौन कौन तुम परिहृत वसनाम्लान मना भूपतिता सी"
(निराला)

नारी रूप में चित्रित प्रकृतिः—

"धूलि धसरा है धरा मलिना तुम्हारे ही लिये।
है फटी दूबी दलों की श्याम साड़ी देखिये"

माँ के रूप में प्रकृति को पंत ने 'वीणा में देखा है। और भी इन कवियों ने प्रकृति को अनेक रूपों में चित्रित किया है— कहीं प्रकृति में चेतनता का आरोप किया है; कहीं जीवन का साम्य प्रकृति में देखा है। कहीं आध्यात्मिक भावना को प्रकृति में व्यंजित करते हैं या प्रकृति में दैविक सौंदर्य्य का दर्शन।

"जाने सौरभ के मिस मौन,
संदेशा मुझे भेजता कौन।"
"वह विराट था हेम घोलता"

प्रेम:—छाया वादी युग के काव्य में प्रेम परम्परागत नहीं बल्कि स्वच्छन्द और शुद्ध है। प्रेम ने संकुचित सीमाओं को पार कर के व्यापक रूप धारण कर लिया। प्रकृति को लेकर नये ढंग से कवि ने प्रेम की व्यंजना की। एक स्थान पर प्रकृति से प्रेम की प्रेरणा पाता हुआ कवि कहता है:—

"मन्दा की ये लोल हिलोरें"
"श्रुतियों में धीरे धीरे कोई मधु धारा घोल रहा है"

प्रेम से ही मानवता प्रेम, सौंदर्य प्रेम और ईश्वर प्रेम का विकास होता है।

रहस्यवाद:— इस युग की कविताओं में रहस्य वाद की भावना भी कई प्रकार की पाई जाती है। एक तो जीवन की कठोरता और नश्वरता से खींच कर शाश्वत सौंदर्य में खो जाने के लिये रहस्यवाद की कविता हुई, दूसरे भक्ति के सिद्धान्त के आधार पर मानवीय भावों की व्यंजना की है:—

"कैसे वह मूरत बिसराऊँ"

वियोगी हरि।

फिर कहीं अद्वैत वाद सिद्धान्त के अनुसार आत्मा और परमात्मा की एकता की अभिव्यक्ति हुई है, जैसे;—

निराला की तुम और मैं कविता,
"तुम तुङ्ग हिमालय शृंग
और मैं चंचल गति सुर सरिता"

कहीं प्रतिबिम्ब वाद की झलक है तो कहीं बौद्ध दर्शन के दुख वाद की। महादेवी की कविता का आधार वेदना है। संसार की प्रतीति भी बहुत मिलती है।

राष्ट्र पर और मानव गौरव पर भी कविता मिलती है, "जागो फिर एक बार" निराला। जैसे, भिखारी आदि समाज से निस्कृत व्यक्तियों पर संवेदना प्रकट करते हुए निराला ने 'भिखारी' और 'विधवा आदि कविताएँ लिखी है।

दो टूक कलेजे को करता, पछताता पथ पर आता।
वह टूटे तरु की छुटी लतासी, दलित भारत की विधवा॥

कला पक्ष:—

प और शैली

छायावादी कविता में मुक्तक काव्य, कई प्रकार के गीति काव्य और महाकाव्य और खण्ड काव्य भी लिखे गये। वियोगी हरि जी ने 'रत्नाकर'

मुक्तक काव्य लिखा एवं आख्यान गीति, व्यंग्य गीति, और सम्बोध गीति लिखी गई। सुभद्रा कुमारी चौहान की 'झांसी की रानी' और सियाराम शरण गुप्त की 'मौर्य विजय' आख्यान गीति हैं, गयाप्रसाद शुक्ल की 'कविराज से सम्बोधन' तथा नाथूराम शंकर की 'कृष्णोत्कर्ष' व्यंग्य गीति।

पत्र गीति व शोक गीति कविता द्विवेदी युग में लिखी गई थीं। इन गीतियों में गीति मत्ता, नाटकीय तत्त्व और सुन्दर वर्णन पाये जाते हैं।

पंत की 'ग्रन्थि' आध्यान्तरिक कविता (Subjective poetry) है।

पंत की 'छाया' अंग्रेजी के (Odes) जैसी कविता है।

"कौन २ तुम परिहृत वसना।
म्लान मना भू पतिता सी॥"

कहीं कवि अपने को किसी दूसरे व्यक्ति, वस्तु या प्रसंग में रख कर भावना व्यक्त करता है, जैसे—माखन लाल चतुर्वेदी की मुझे तोड़ लेना बन माली। महा काव्यों में प्रसाद की कामायनी छायावादी युग की अद्वितीय रचना है। इस में व्यक्त कवि की दार्शनिकता, भाव गांभीर्य्य एवं भाषा प्राञ्जल्य के बल पर कामायनी को नये युग की रामायण कहना अत्युक्ति नहीं। मनु और श्रद्धा की कथा का आश्रय लेकर प्रसाद ने मानव भावनाओं का उत्कर्ष दिखाते हुए-अपनी कविता कामिनी का दिव्य प्रासाद खड़ा किया है जिस में भाव लोक कर्म लोक और ज्ञान लोक का दर्शन करा कर मनुष्य के लिये कर्त्तव्य मार्ग प्रदर्शित किया इस के अतिरिक्त साकेत (मैथिली शरण गुप्त) प्रिय प्रवास (हरि औध) और नूरजहाँ (गुरु भक्त सिंह) महा काव्य लिखे गये। प्रेम पथिक तथा ग्रन्थि आदि खण्ड काव्य तथा (सुदामा चरित) 'पंचवटी प्रसंग' और अनघ' आदि नाटकीय कविताएँ लिखी गई।

भाषा:—छायावादी कविताओं की भाषा में व्यंजकता, संगीत, माधुर्य्य और चित्रात्मकता की अदभुत शक्ति पाई जाती है। भाषा में अंग्रेजी शब्दों के रूपान्तर प्रयुक्त हुआ, संस्कृत और उर्दू से शब्द लिये गये और कुछ बंगला से भी। ध्वन्यर्थ व्यंजक शब्द प्रयुक्त हुए एवं चमत्कारपूर्ण तथा आलोक मय विशेषण।

छन्द:— छायावादी साहित्य में मात्रिक और वार्णिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ। गीतिका, हरि गीतिका, बरवै' सोरठ, छप्पय, सारलाटक, चौपाई और चौपई आदि सभी मात्रिक छन्द पाये जाते हैं। अयोध्या प्रसाद ने

प्रिय प्रवास में संस्कृत शैली पर अतुकान्त छन्दों का प्रयोग किया। द्रुत विलम्बित, शिखरिणी, इद्र वज्रा उपेद्र वज्रा और मालिनी आदि वर्णिक छन्द प्रयुक्त हुआ। पंत ने स्वच्छन्द छन्द अर्थात् पदों की मात्राओं में मन मानी परिवर्तन कर के प्रयुक्त किया, और निराला ने मुक्त छन्द अर्थात सुर और लय के अनुरुप छन्दों की कांट छांट कर के। उपाध्याय के चौपदे तथा अंगेजी के Sonnet भी इस साहित्य में प्रयुक्त हुआ।

प्रसाद, पंत, निराला' और महादेवी छाया वादी युग के प्रवर्त्तक हैं इन के अतिरिक्त डा० राम कुमार वर्मा, सुभद्रा देवी चौहान, शान्ति प्रिय द्विवेदी और तारा पाण्डेय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

श्री जय शंकर प्रसाद

श्री जय शंकर प्रसाद का जन्म काशी में सं० १९ ४६ में वहां के वैश्य हलुवाई वंश में हुआ था, आप के पिता प्रसद्धि धनी श्री देवीप्रसाद जी, तम्बाकू के प्रसिद्ध व्योपारी तथा जमीदार थे ।

छोटी अवस्था में ही इन के पिता का स्वर्गवास होने से मिडिल के पश्चात् ही स्कूल की पढ़ाई छूट गई फिर घर पर ही आपने संस्कृत फारसी उर्दू अंग्रेजी और बंगला की शिक्षा पाई । पर १७ वर्ष की आयु होने पर इन के बड़े भाई का स्वर्गवास हो गया फिर तो परिवार एवं व्यापार सम्हालने का पूरा भार आप पर आगया ।

काशी के अच्छे २ कवियों के सत्संग से बाल्य काल में ही काव्य के प्रति प्रसाद में रुचि जागृत हो गई थी और १५ वर्ष की अवस्था से ही कविता करने लगे । अनेकों कठिनाइयां झेलते हुए भी प्रसाद जीवन के अन्तिम क्षणों तक साहित्य सेवा में रत रहे । प्रसाद जी ने बौद्ध साहित्य, भारतीय प्राचीन तथा पौराणिक साहित्य, दर्शन, वेदान्त तथा इतिहास का विस्तृत अध्ययन किया था । इसीसे आप भारतीय संस्कृति के परम पोषक और उद्धारक हुए आप के नाटकों में विशेष कर बौद्ध कालीन विषयों तथा पात्रों का समावेश एवं बौद्ध सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है । प्रसाद जी का विचार था कि भारत का पुनरुद्धार प्राचीन संस्कृति एवं पूर्व पुरुषों के स्मरण से ही हो सकता है । काव्य में आप नवीन युग के प्रवर्तक हुए, हिन्दी कविता को नवीन धारा में लेजाने का श्रेय प्रसाद को ही है । वर्तमान युग के सर्वश्रेष्ठ नाटककार तो थे ही कथा साहित्य में भी "प्रसाद स्कूल" अपनी विशिष्ट शैली के कारण अपना एक अलग ही उच्च स्थान रखता है । इस प्रकार उन्होंने साहित्य के विविध अंगों के भंडार को भरा; और अनेक साहित्यिक तथा ऐतिहासिक खोज पूर्ण लेख लिख कर समालोचना साहित्य की भी अभिवृद्धि की ।

इतने बड़े सहित्यिक होते हुए भी प्रसादजी वर्तमान काल के आत्म विज्ञापन एवं आत्म प्रचार की प्रवृत्ति से बहुत दूर थे । उदारता और सादगी से पूर्ण जीवन उन का लक्ष्य था—४८वर्ष की आयु में ही राजयक्ष्मा से आप की मृत्यु हो गई इस से हिन्दी साहित्य को जो क्षति हुई उसका पूरा होना दुर्लभ प्रतीत हो रहा है ।

प्रसाद जी की रचनाएँ साधारणतया चार भागों में विभाजित की जा सकती हैः— १. अनुभूति प्रधान तथा कल्पना प्रधान कविताऐं (२) मानव

प्रकृति तथा साधारण प्रकृति से सम्बन्धित कविताएं, (३) प्राचीनता, संस्कृति तथा राष्ट्रीयता से पूर्ण कविताएं और (४) गीतकाव्य ।

कवि की प्रेम विषयक कविताओं में आध्यात्मिकता और सांसारिकता का सुन्दर मिश्रण है। खड़ी बोली में भाव पूर्ण कविता करने का प्रथम प्रयास आपने ही किया–पंत ने उसे पूर्ण रूप से विकसित किया । आपकी कविता में मानवीय भावनाओं का सुन्दर ढंग से मनोवैज्ञानिक विश्लेषण हुआ है। सामयिक प्रगति का भी अच्छा चित्रण मिलता है और भारतीय प्राचीन संस्कृति का निरूपण इस प्रकार आप की रचनाओं में प्राचीनता और नवीनता का अद्भुत समन्वय हुआ है। प्रसाद के साहित्य में विस्तृत प्रतिभा और चमत्कार के दर्शन होते हैं और उसमें हृदय को शीतलता प्रदान करने की क्षमता है। आप की कविता में उन के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है और उक्तियां और सूक्तियां हृदय के तार को झनझना देने की सामर्थ रखती हैं। पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द की सर्जना तो प्रसाद के नाटकों की विशेषता है जो अन्य साहित्यकारों में शायद ही मिले ।

प्रसाद जी की कुछ कविताएं क्लिष्ट और अस्पष्ट हैं जिन्हें समझने में कठिनाई होती है–इस का कारण है आप की दार्शनिकता तथा वेदान्त का पुट। अत्यन्त गहरी अनुभूति तथा अत्युच्च सरस कल्पना से पूर्ण तो उन की सभी कविताएँ हैं फिर भी अधिकतर रचनाएँ स्पष्ट तथा सरल और बोधगम्य है जो कोमल भावनाओं में मधुरता और सरसता से ओतप्रोत है, जैसे—

पथिक प्रेम की राह अनोखी, भूलभूल कर चलना है ।
घनी छांह है जो ऊपर तो, नीचे कांटे बिछे हुए ॥

'झरना' में संग्रहीत कविताओं में प्रकृति की नैसर्गिक छटा का पग पग पर आभास मिलता है, जैसे

शिशिर कणों से लदी हुई, कमली के भीगे हैं सब तार ।
चलता है पश्चिम का मारुत' लेकर शीतलता का भार ॥
भीग रहा है रजनी का वह, सुन्दर कोमल कबरी भार ।
अरुण किरण सम कर से छूनो खोलो प्रियतम खोलो द्वार ॥

प्रसाद जी का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ कामायनी है जो महाकाव्यों की श्रेणी में आता है। कल्पना; अनुभूति तथा चरित्र चित्रण की दृष्टि से यह ग्रन्थ अद्वितीय है, और मौलिकता में तो यह निराला ही है। जिस प्रकार वाल्मिकि ने रामायण और व्यास जी ने महा भारत देकर संसार के लिये नूतन विषय प्रदान किये, उसी प्रकार मनु, श्रद्धा और इड़ा की कथा को काव्य का अंग बना कर भविष्य

के कवियों के लिये एक नवीन विषय भेंट किया है। इस की कथा वस्तु मानव जीवन के उन सत्यों को सुलझाने की चेष्टा करता है जिसे मानव अतीत काल से अपनाता चला आ रहा है। एक आलोचक ने कामायनी को विश्व साहित्य का आठवाँ काव्य कहा है।

प्रसाद जी के गीत भी हिन्दी काव्य की स्थायी निधी हैं जो नाटकों में सर्वत्र मिलते हैं। हिन्दी में गेय गीतों की कमी है, यह कहना अत्युक्ति न होगा कि वर्तमान कवियों का पथ प्रदर्शन प्रसाद के गीतों से ही हुआ। जो वेदना करुण' धार्मिकता और उन्माद हमें उन के गीतों में मिलता है अन्यत्र दुर्लभ है जीवन की उपयोगिता और मधुरता के साथ कला का सौंदर्य्य और संगीत की निहिति इन गीतों की विशेपता है।

"आपका भारत गीत हिन्दी साहित्य में ही नहीं विश्व साहित्य की कविताओं में स्थान पाने योग्य है*"

देखिये एक उदाहरण:—

"अरुण यह मधु मय देश हमारा,
जहां पहुँच अन जान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ विभा पर नाचरही तरु शिखा मनोहर॥
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा।"

ग्रन्थ:—प्रसाद जी ने लगभग २७ ग्रन्थ लिखे जिस में 'कामायनी' 'आंसू,' 'लहर' 'झरना' 'महाराणा का महत्व' 'प्रेम पथिक' 'करुणामय' और 'काननकुसुम' काव्य हैं। स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, विशाख कामना, जनमेजय का नाग यज्ञ, राजश्री, और एक घूंट नाटक हैं, कंकाल, तितली, और इरावती आदि उपन्यास एवं कुछ कहानी संग्रह तथा निबन्ध आदि भी।

कामायनी पर प्रसाद जी को मंगला प्रसाद पारितोपिक मिल चुका है—कई नाटकों पर भी आप को पारितोपिक प्राप्त हुआ।

भाषा, छंद और अलंकार।—प्रसाद जी की प्रारम्भिक, कविता ब्रज भाषा में हुई, किन्तु पीछे आप खड़ी बोली के क्षेत्र में आगये। आप की दोनों प्रकार की भाषा शुद्ध साहित्यिक और परिमार्जित है जो विदेशी शब्दों से रहित भावों के अनुकुल एवं संस्कृत से प्रभावित है। ब्रज भाषा में भी भावों की विषदता, नवीनता और मौलिकता मौजूद थी। सभी रहस्य वादी कवियों की भाँति प्रसाद जी की भाषा में कल्पना और अनुभूति की प्रचुरता के कारण मुहावरों और कहावतों का अभाव है। पर शब्दचयन, सुन्दर, सुरुचिपूर्ण तथा उत्तम है। भाषा मधुर, सरस, प्रवाह पूर्ण टकसाली और व्याकरण सम्मत है जिस में

* श्री प्रेमनारायन टन्डन की उक्ति

लाक्षणिक प्रयोग अधिक है। मनोभावों के अन्तद्वन्दों का चित्रण करते समय है उन की भाषा संस्कृत प्रधान हो जाती है। व्रज भाषा की कविता आप की कविताओं में हुई और खड़ी बोली में आप ने तुकांत और अतुकांत दोनों प्रकार की कविताएँ कीहैं। छन्दों की विभिन्नता और संगीत की परिपूर्णता आपकी कविताओं का विशेष गुण है। इन्होंने नवीन छन्दों का भी निर्माण किया है। लोगों की ग्रहण शक्ति की दृष्टि से पहले प्राचीन छन्दों का ही आश्रय लिया था पर लोगों की रुचि के परिष्कृत हो जाने पर और छायावादी रचनाओं के स्वागत का युग आने पर आप की वही प्राचीन छन्दों वाली कविताएँ नवीन छन्दों में पिरो कर रखी गई और अत्यन्त निखरे रूप में हमारे सामने आती हैं।

रस और अलंकारों की अलौकिक छटा अपने आप ही उन की कविताओं में आगई है. रूपक आदि के सुन्दर उदाहरण यत्र तत्र देखने को मिलते हैं। उत्प्रेक्षा और उपमाओं से भी विशेष प्रेम रहा है तथा लाक्षणिक प्रयोगो की आप की कविता में प्रचुरता है।

काव्य, कहानी, उपन्यास और नाटक आदि साहित्य की सभी विधाओं में की हुई रचनाएँ प्रसाद जी की किसी न किसी विशेषता को लिये हुए हैं। कहानियों में नाटकीय रंगढङ्ग के कारण गद्य काव्य के साथ आनन्द आता है; मानसिक चित्रों का उदघाटन तथा भावों की प्रधानता उन की कहानियों का लक्ष्य था। नाटक, कहानी और उपन्यास–सभी में–मानवीय अन्तद्वन्दों और घात प्रतिघातों का स्पष्टिकरण उन की विशेषता है। कर्त्तव्य, फलाशा रहित कठोर कर्त्तव्य ही प्रसाद जी के पात्रों का उद्देश्य रहता है। उन्होंने स्त्री पात्रों को प्रमुखता दी है और उन का रूप बड़ा आदर्शमय रखा है। राजनीति के अनेक गूढ़ और जटिल कार्य उन वीरांगनाओं और आदर्श स्त्रियों द्वारा पूरे कराये हैं।

इस प्रकार केवल भारतवर्ष के ही नहीं वरन् संसार के साहित्यिकों में प्रसाद का विशिष्ट स्थान होगा। हिन्दी के वर्तमान युग के तो प्रणेता ही वह थे —छायावादी कविता का सूत्र पात उन्होंने किया जो पंत, निराला और महादेवी वर्मा आदि के द्वारा पालित होकर परम उज्जवल स्वरूप में हमारे सामने आया। ऐसे महारथी को पाकर कोई भी साहित्य गर्व कर सकता है।

पं० सुमित्रानन्दन पन्त

पं० सुमित्रा नंदन पंत छाया वादी युग के प्रवर्तक कवियों की श्रेणी में से हैं। आप का जन्म संवत् १९५८ वि० में अल्मोड़ा जिले के कौसानी नामक गांव में हुआ। आप के पिता गंगादत्त पंत तथा माता श्रीमती सरस्वती देवी थीं। प्रारम्भिक शिक्षा पंत जी ने अल्मोड़े में पाई और मैट्रिक पास कर के इन्टर में प्रयाग में भरती हुए, परन्तु सन् १९२२ में ही आपने कालेज जीवन समाप्त कर के स्वयं ही संस्कृत बंगला एवं अंग्रेजीग्रन्थों के अध्ययन में लग गये।

प्रकृति की गोद में जन्म लेने और लालन पालन होने के कारण आप को जन्म जात प्रकृति प्रेम प्राप्त हुआ। अल्पावस्था में ही आप को साहित्यिक अभिरुचि उत्पन्न हो गई और प्रकृति सौंदर्य्य से प्रभावित हो कर कविता करने लगे थे।

पंत जी अत्यंत शांति प्रिय, हंसमुख और मिलनसार प्रकृति के व्यक्ति हैं। जितना आप को शारीरिक सौंदर्य्य प्राप्त हुआ है, और कविता रचने की अनुपम प्रतिभा उतना ही कंठ भी सुरीला मिला है जिससे वह अच्छे गायक भी सिद्ध हुए हैं।

आप की काव्य शैली चमत्कार पूर्ण है। मनोवैज्ञानिकता से पूर्ण आप की कविता भाव विचार और कल्पना में गूढ़ता नवीनता एवं तल्लीनता लिये हुए पाठक के अन्तस्तल को छूने की शक्ति रखती है; इन्हीं सब गुणों के कारण आप की कविता चित्र काव्य के अन्तर्गत आती है प्रकृति निरीक्षण के साथ उच्च कल्पना तथा सरस अनुभूति आप की कविताओं में सचित्र पाई जाती है। प्रकृति के पुजारी पंत ने प्रकृति चित्रण में तो आशातीत सफलता पाई ही, साथ ही मानसिक व्यापारों तथा उद्गारों की सुकुमार व्यंजना द्वारा आपने मानव और प्रकृति में सुन्दर सामञ्जस्य स्थापित किया है' गुंजन की ये लाइनें इसभाव की परिपुष्टि के सुन्दर उदाहरण हैं:—

खोल कलियों ने उर के द्वार।
देदिया उस को छवि का देश॥
बजा भौंरों ने मधु के तार,।
कह दिये भेद भरे संदेश॥"

सीखा तुम से फूलों ने मुख देख मंद मुस्काना।
तारों ने सजल नयन हो, करुणा किरणें बरसाना ॥

छाया वादी कवि प्रकृति में एक जीवन अनुभव करते हैं। प्रकृति के अंग प्रत्यंग में उन्हें हर्ष, शोक, विरह, व्याकुलता, संयोग, उल्लास सहृदयता और उदारता का आभास इसी प्रकार दृष्टि आता है जैसे मानव हृदय में। इसी से इन कवियों में हमें पग पग पर लाक्षणिकता मिलती है। प्रकृति के सूक्ष्मतम कण में भी कवि ईश्वरीय रूप तथा महत्ता के दर्शन पाता है। अनंत के रहस्यों का उद्घाटन इस धारा के कवियों ने प्रकृति के कार्यों की छाया द्वारा किया है इस प्रकार भाव सत्ता के सजीव चित्र खींचने में ये कवि गण पूर्ण सफल हुए हैं।

पंत जी के काव्य में बहु मुखी प्रवृत्तियों का होना एक विशेषता है। आपकी भाषा, भाव तथा विषयों में क्रमिक विकास पाया जाता है। इनकी प्रारम्भिक रचनाओं में हमें शुद्ध प्रकृति चित्रण एवं प्रेमानुभूति के दर्शन होते हैं। युग वाणी में मध्य युग की संकीर्ण नैतिकता का घोर खण्डन कर जनता को नवीन जागरण का संदेश दिया है, उस प्रकार प्रगति वादी पन्त की इस रचना में उन के सिद्धान्तों की रूप रेखा चित्रित हुई और ग्राम्य तक वे सिद्धान्त स्थिर कर चुके और उन के प्रयोग का समय आया। इस प्रकार क्रमशः विकास को प्राप्त होती हुई पंत जी की विचार धारा पल्लव से गुंजन और गुंजन से युगान्त तक बिलकुल पलट गई। छायावाद का पूर्ण प्रतिनिधित्व पल्लव' व गुंजन में मिलता है, वीणा में केवल प्रकृति प्रेमी छायावाद के दर्शन होते हैं। युगान्त' पूर्णतया इन के परिवर्तित रूप का प्रतीक है, जिस में छायावाद के अन्त की सूचना है। और फिर युगान्त' के पश्चात् तो कवि की विचार धारा नितान्त पलटा खा गई —वह एक बार फिर छायावाद के दायरे मे वास्तविकता की ओर जाकर वर्तमान जीवन में प्रवेश करते दृष्टि आते हैं। युगान्त में कहते हैं,

"मैं उस का प्रेमी बनूं नाथ।
जिस से मानव हित हो समान ॥"
"प्रिय विश्व मुझे यह सचराचर,।
सुन्दर अनादि शुभ सृष्टि अमर ॥"

पंत जी की कविताएं अधिकतर शृङ्गार रस की हैं—पर आप का प्रेम आदर्श तथा वासनाहीन लौकिक दोनों प्रकार के प्रेम का रूप हमें मिलता है

प्रेम को आध्यात्मिक पक्ष में सुन्दर ढंग से घटित किया है। स्त्रियों के अधिकारों का समर्थन करते हुए उन्होंने लिखा है उनकी शोचनीय दशा के लिये पुरुष दोषी हैं—उन्हें स्त्रियों के पूर्ण स्वत्व देकर गौरव प्रदान करें:—

खोलो हे मेखला युगों से कटि प्रदेश से तन से,
अमर प्रेम ही बंधन उस का वह पवित्र हो मन से। (युग वाणी, पृ० ६०)

पंतजी ने क्रांति वादी कविता की संकीर्णता की ओर ध्यान देकर अपनी कलम उठाई। क्रांति मयी भावना की नवीन संस्कृति के विषय में आप की भावना अत्यन्त सुलझी हुई है। आप कहते हैं कि क्रांति वादी कवियों की नई व्यवस्था साहित्य के सत्यं शिवं और सुन्दर को सामान्य जनता के बीच देखनाचाहती है। कवि कला की इन कल्पित भावनाओं को जीवन अनुप्राणित देखना चाहते हैं।

"सुन्दर शिव सत्य कला के कल्पित माप मान
गये स्थूल जग जीवन से बन हो एक प्राण।" (युग वाणी, पृ० २५)

आगे कहा है कि इस नई व्यवस्था में सदाचार और धर्म की महत्ता जनहित पर निर्भर होगी:—

धर्म, नीति और सदाचार का मुल्यांकन है जनहित।
सत्य नही वह जनता से, जो नहीं प्राण सम्बन्धित॥

पंत ने क्रांतिवादी कवियों के वास्तविक ध्येय को पहिचान कर निर्णय दिया कि इन के साम्यवाद और गांधी जी के सत्य अहिंसा का सामंजस्य और समावेश होगा तब वह अपने सच्चे रूप में आयेगी। आप की साम्यवादी योजना सब से बढ़ी चढ़ी है।

ग्रन्थ परिचय:—गुंजन की तो अधिकांश कविताएँ प्रकृति निरीक्षण से आरम्भ होकर आत्म दर्शन और आत्मदर्शन से विश्वदर्शन की ओर प्रवृत्त हुई दृष्टि आती हैं

अनंग' शिशु' और 'परिवर्तन' में दार्शनिकता, पूर्व गौरव, रहस्यवाद तथा व्यापक अनुभूति का आभास मिलता है। परिवर्तन को तो आलोचकों ने विश्व साहित्य की एक निधि माना है। अन्य रचनाओं में उच्छ्वास आँसू ग्रन्थि और ज्योत्सना काव्यग्रन्थ, 'हार' उपन्यास पाँच कहानियाँ, कहानी संग्रह और 'परी' 'क्रीड़ा' तथा 'रानी' नाटक है। उमर खैयाम की रुबाइयों का भी पंत जी ने स्वयं अनुवाद किया है। आप डा० रवीन्द्र नाथ टैगोर तथा श्रीमती सरोजनी नायडू की कविताओं से विशेष प्रभावित हुए—गीतांजलि के अनेक भावों का समावेश आपके ग्रन्थों में पाया जाता है। अंग्रेजी कवियों शैली और कीट्स का भी प्रभाव है।

भाषा छन्द और अलंकार:—पंत जी ने अधिकार पूर्वक खड़ी बोली की कोमल कान्त पदावली में कविता कर के ब्रज भाषा का पक्षपात रूप इस दोष को निर्मूल सिद्ध कर दिया कि "खड़ी बोली अपेक्षाकृत कठोर है।" आप की भाषा

अत्यन्त मधुर और व्याकरण संगत है। हां कहीं २ शब्दों का माधुर्य्य बढ़ाकर अधिक उपयुक्त बनाने के लिये उन्होंने आवश्यकतानुसार उन में परिवर्तन किये हैं। जैसे 'प्रिय' को 'पिय' और झङ्कार को झनकार'। कोमलता और मधुरता लाने के लिये कहीं २ धोरे आदि प्रान्तीय शब्दों का भी प्रयोग किया है। आप का शब्द चयन श्रेष्ठ एवं भावानुकूल है और संस्कृत शब्दों के तत्सम तथा तद्भव दोनों रूपों का प्रयोग कोमलता के दृष्टि से हुआ है। अन्त्यानुप्रास मिलाने के लिये 'ण' को प्रायः 'न' कर दिया है जैसे 'उड़गन' 'फन' इत्यादि। भाषा तथा व्याकरण सम्बन्धी स्वतन्त्रता का कवि पक्षपात है अतः कविता का माधुर्य्य बढ़ाने के लिये उसने कहीं २ कवि स्वतन्त्रता उपयोग करते हुए व्याकरण सम्बन्धी लिंग के प्रयोग भी बदल दिये हैं। जैसे वह स्वयं लिखते है' कि प्रभात और उसके पर्यायवाची शब्दों का चित्र उनके सामने स्त्रीलिंग में ही आता है, अतः चेष्टा करने पर भी वह कविता में उसका प्रयोग पुलिंग में नही कर पाते जैसे

रुधिर से फूट पड़ी रुचि मान।
पल्लवों की यह सजल प्रभात" ।।

एक स्थान पर पंत जी ने लिखा है कि 'कविता के स्वरूप में भावों के ढाँचे में ढालने से पूर्व' भाषा को हृदय के ताप में गला कर कोमल करुण, सरस, प्राञ्जल कर लेना पड़ता हैं।

छन्दों के चुनने में भी उपयोगिता तथा कोमलता आदि का ध्यान रख कर स्वतन्त्रता पूर्वक काम किया हैं। छन्द की उपयुक्तता का ध्यान रखना साथ २ पंक्तियों को छोटा बड़ा करने में भी आप ने संकोच नही किया है। आपने तुकांत और अतुकांत दोनो प्रकार की कविताएं गीत काव्य में लिखी हैं।

अलंकारों का प्रयोग रुचि कर तथा संयत है। लाक्षणिक प्रयोगों की प्रचुरता उन की भाषा की विशेषता है ही, सादृश्य सूचक अलंकार उपमा, रुपक और उत्प्रेक्षा आदि का प्रयोग अधिक हुआ है। श्लेष और अतिशयोक्ति का प्रयोग भी अधिकता से पाया जाता है।

वर्तमान युग के सर्व श्रेष्ठ कवियों में पंत जी का स्थान अत्युच्च है। छाया-वादी धारा के प्रसाद और पंत प्रमुख रहस्य वादी कवि है, प्रकृति प्रेम और दार्श निकता दोनों की विशेषता है और दोनों में ही कल्पना और अनुभूति का अपूर्व मिश्रण है। प्रसाद जी छायावाद के जन्म दाता और पंत उस के पालक पोषक कहलाते हैं।●

●दोनों की तुलना के लिये देखिये हिन्दी प्रतिनिधि कवि ले० प्रेमनारायण टण्डन। (पृ० २७३)

पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

आप का जन्म सं० १९५३ वि० में महिषादल राज्य (बंगाल) मेंनपुरी में हुआ। आप के पिता पं० राम सहाय त्रिपाठी उन्नाव (जि० कानपुर) के निवासी थे किन्तु नौकरी के कारण महिषादल राज्य में सपरिवार रहते थे, अतः आप की शिक्षादीक्षा राज्य की ओर से हुई। दसवीं कक्षा तक ही आप ने शिक्षा प्राप्त की पर कविता करने की प्रतिभा उन में बालकपन से प्रकट होने लगी थी। संस्कृत के अध्ययन के कारण दर्शन वेदान्त की ओर भी बाल्य काल से ही प्रवृत्ति हो गई, और आपने स्वामी राम कृष्ण परम हंस तथा स्वामी विवेकानन्द आदि के ग्रन्थों का अध्ययन किया। संगीत की शिक्षा भी आप को राज्य की ओर से मिली। शरीर के हृष्ट पुष्ट, स्वभाव के अत्यन्त सरल और मिलनसार हिन्दी साहित्य के यह रत्न आज कल प्रयाग में रहते हैं। कुछ वर्षों से आप का स्वास्थ्य हिन्दी साहित्य प्रेमियों के लिये चिन्ता का विषय बना हुआ था, पर भगवान के प्रसाद से अब स्थिति संतोषप्रद है।

निराला, जी कल्पना प्रधान छायावादी कवि हैं, आप की कविताएँ शृङ्गार और करुण रस की हैं पर इन के शृगांर में लौकिक की अपेक्षा अलौकिक पक्ष अधिक है, जैसा कि प्रायः सभी छाया वादी कवियों में पाया जाता है। कल्पना की सयत उड़ान, भावुकता, आन्तरिक अनुभूति की सफल व्यंजना के साथ दार्शनिक विचारों की प्रधानता आप की कविता का विशेष गुण है। विषयों का चुनाव भी निराला' ने गम्भीरता पूर्वक किया है। हृदय की वेदना का सच्चा स्वरूप उन की कविता में व्यक्त हुआ। वर्तमान युग के कुचक्रों से और मनुष्य की छल प्रपंचयुक्त दूषित प्रवृत्तियों से मानो आप का मानस अत्यन्त क्षुब्ध सा दृष्टि आता है वही वेदना और क्षोभ आप की कुछ कविताओं में झलकता है।

प्रकृति के मनोहारी वैभव से कवि अत्यन्त प्रभावित हुए हैं साथ ही रहस्य वादी भावना कविता में यत्रतत्र दर्शनीय है। तुम और मैं कविता से एक उदाहरण से आप का रहस्योंन्मुखी प्रकृति प्रेम प्रकट होगाः—

"तुम दिन कर के खर किरण जाल,
मैं सरसिज की मुस्कान ।
तुम वर्षों के बीते वियोग,
मैं हूँ पिछली पहिचान ॥"

आप की स्वदेश और राष्ट्र प्रेम पर लिखी कविताएँ भी अत्यन्त चित्ता कर्षक बन पड़ी है। ,भिक्षुक' और 'विधवा' आदि कविताओं में व्यक्त आप के हृदयोद्गार मर्म स्पर्शी और करुण रस के द्योतक है।:—

वह आता—

दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिल कर है एक, चल रहा लकुटिया टेक, ।।
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को।
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता— —दो टूक० ।।"
भिक्षुक

ऐसे ही विधवा' का करुण चित्रः

'वह इष्ट देव के मंदिर की पूजा सी, ।
वह दीप शिखासी शांतभाव में लीन ।।
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखासी ।
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन—
दलित भारत की विधवा है ।"

शब्द चित्र खींचने मे इन कविताओं में कवि को अद्भुत सफलता मिली है।

राम कृष्ण परम हंस तथा स्वामी विवेकानन्द के साहित्य से प्रभावित होने के कारण आप की कविता में उन के दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिबिम्ब है निराशावादिता महा देवी जी जैसी नहीं है, बल्कि उसमें आशा किरण चमकती दृष्टि आती है: --

"एक दिन छिप जायेगा रोदन ।
तुम्हारे प्रेम अञ्चल में ।।"

संसार की असारता का अनुभव करते हुए आप उस में एक दिव्य संदेश पाते हैः—

"चिंताएँ, बाधाएँ आती ही हैं आ एँ।
अंध हृदय है, बंधन निर्दय लाएँ ।।
मैं ही क्या, सब ही तो ऐसे छले गये ।"

प्रेम पर भी आप ने कविता की पर आप का प्रेम त्याग और तपश्चर्य्या का स्वरूप है ।

यह देखिये प्रेम का उदात्त स्वरूपः—

"दिव्य देह धारी ही कूदते हैं उस में प्रिये ।
पाते हैं प्रेमामृत ।
पीकर अमर होते हैं । "

निराला' ने गद्य रचना भी की है, उन के उपन्यासों में चरित्र चित्रण सुन्दर हुआ है ।

ग्रन्थः—'नायिका' परिमल' 'गीतिका' तथा 'तुलसीदास' आपके प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ हैं तथा 'लिली' और 'सखी'कहानी संग्रह । 'अप्सरा' 'अलका 'निरुपमा' 'प्रभावती' तथा 'उच्छृंखल' आदि उपन्यास लिखे और कई अन्य फुटकर पुस्तकें । राम कृष्ण परम हंस तथा विवेका नन्द के साहित्य पर भी आपने एक अच्छा ग्रन्थ लिखा है ।

भाषा, छन्द और अलंकारः—'निराला, की रचना खड़ी बोली में हुई जिस में तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग है । दार्शनिक विचार और क्लिष्ट कल्पना के कारण भाषा कुछ दुरूह हो गई पर गीति काव्य में वह अपेक्षाकृत सरल है । कहीं२ उर्दू शब्दों के प्रयोग भी हुए हैं । आप की भाषा प्रौढ़, प्रांजुल एवं प्रवाह पूर्ण है पर उस में संगीत, ताल और लय का सम्मिश्रण होते हुए भी पंत जी जैसा माधुर्य्य नहीं ।

प्राचीन और नवीन दोनों ढंग के छन्दों को इन्होंने अपनाया पर नवीन अधिक है । खंड छन्दों में रचना करना आप की विशेषता है जिस में आप की स्वतन्त्र प्रवृत्ति का आभास मिलता है । आप कविता को बन्धन में डालने के पक्षपाती नही है, अतः इन की कविता में क्रांति है । आप के छन्द चयन और नवीन मुक्तक छन्दों के सृजन ने काव्य में युगान्तर उपस्थित किया है । अलंकारों का प्रयोग भी समुचित रुप में हुआ है । गीतिका में विशेष कर अलंकारों की प्रचुरता है, रुपक आप के सुन्दर बन पड़े हैं, उपमान नये पुराने दोनों प्रकार के लिये हैं और शब्दालंकारों की छटा भी दर्शनीय है । पर अलंकारों का अनावश्यक प्रयोग कहीं नही हुआ हैं ।

मौलिकता और नवीनता लिये हुए क्रान्ति कारी कवि के रूप में आप हिन्दी साहित्याकाश में उदय हुए छन्दों के नवीन प्रयोग एवं संगीत तथा ताल कविता करने के कारण आप एक निराले ही ढंग के कवि माने जाते हैं' आप एक नवीन काव्य का संदेश लाये अतः आप का उपनाम निराला' युक्ति संगत है । निराला की कविता में बंगला का प्रभाव तो है ही साथ ही अंग्रेजी की लाक्षणिकता का भी उसकी संस्कृत अन्तरात्मा में समन्वय हो गया है । छायावादी युग के कवियों में भाव का अत्युच्च स्थान है । दार्शनिक भावों का प्राचुर्य आप की कविता में पंत जी से अधिक है ।

पंत, प्रसाद निराला और महा देवी हमारे वर्तमान साहित्यिक युग के अमूल्य रत्न है जिन की ज्योति हिन्दी साहित्याकाश में सदा अमर रहेगी ।

श्रीमती महादेवी वर्मा

महादेवीजी का जन्म सं० १९६४ वि० में फर्रुखाबाद में हुआ। आप के पिता श्री गोविंद प्रसाद वर्मा वकील थे, और इनका विवाह सं० १९७३ में ही डा० स्वरूप नारायण वर्मा से होगया था। आप की प्रारम्भिक शिक्षा इन्दौर में हुई। फिर प्रयाग विश्व विद्यालय से संस्कृत में एम. ए. किया। चित्र कला और संगीत कला की भी आप पंडिता है—अत्यन्त सुन्दर चित्रों से सुसज्जित आप के कमरे को देख कर ही आप का चित्र कला प्रेम एवं कला नैपुन्य का ज्ञान हो जाता है। कविता में अभिरुचि भी आप को बाल्य काल से ही थी।

आप रहस्यवादी कवियित्री हैं; इनकी कविताएं स्वाभाविकता से परिपूर्ण है। रहस्योन्मुख भावनाओं का सरस चित्रण और दुख का अनंत विश्व व्यापी वर्णन आप की कविता की विशेषता है। वेदना, निराशा, पीड़ा तथा कसक से पूर्ण कराहता हुआ हृदय होने के कारण भाव व्यञ्जना तथा अनुभूतियों में जो एक रस समन्वय तथा समता है वह अत्यधिक प्रभावोत्पादक तथा हृदयस्पर्शी है। पीड़ा आप की चिर सहचरी है जिसे आप भूलना ही नही चाहती। वेदना का दार्शनिक रूप उनकी इन पंक्तियों में अवलोकनीय है

आलोक यहां लुटता है,।
बुझ जाते हैं तारागण ॥
अविराम जला करता है।
पर मेरा दीपक सा मन ॥

महादेवी जी ने असीम दुख को एक मधुर गान का रूप दिया है। उन की व्यापक व्यथाएं अनंत सौंदर्य्यशाली रूप में संसार के सामने आई है—जैसा कि अंग्रेजी कवि शैली ने कहा है—

Our sweetest Songs are those which telloff sadest thoughts."

आप भी कहती है:—

शलभ! मैं शापमय वर हूँ।
किसी का दीप निष्ठुर हूं॥

आप की कविता दार्शनिकता से ओतप्रोत है, किन्तु वह दार्शनिकता

अत्यन्त रसमय तथा भावमय है उस में शुष्कता एवं कठोरता नहीं है। आपने वस्तु जगत के ही चित्र खींचे हैं पर वे केवल साधन मात्र हैं और उन का रंग रूप रहस्य से आच्छादित है।

आप का प्रियतम निराकार अदृश्य परमात्मा है जिस की प्राप्ति के लिये आत्मा सदा तड़पती रहती है। मीरा की साकार भगवान की उपासना तथा महा देवी के अस्पृश्य अव्यक्त परमात्मा की उपासना में वही एक सी तल्लीनता है। अनन्त की खोज में विह्वल कवयित्री जी के ये भाव देखिये:—

"कितनी करुणा, कितने संदेश।
पथ में बिछ जाते बन पराग॥
गाता प्राणो का तार तार।
अनुराग भरा उन्माद राग।
आँसू लेते वे पद पखार॥"

अन्तर्जगत के अदृश्य तथा अस्पृश्य भावोद्रेक का सरस चित्रण सर्वत्र दर्शनीय है। अपने प्रियतम को ठीक समझने का प्रयत्न करती हुई रहस्य के प्रति उनकी उत्कण्ठा पूर्ण जिज्ञासा देखिये:—

तैरते घन मृदुल हिम के पुञ्ज से,
ज्योत्स्ना के रजत पारावार में—
सुरभि बन जो थपकियां देता मुझे,
नींद के उच्छ्वास सा वह कौन है?"

आशय यह है कि महादेवी की कविताओं में एक मूक वेदना, एक कसक है, ऊंचे दार्शनिक भावों तथा सूक्ष्मतर कोमल कल्पनाओं और भावनाओं को व्यक्त करने में लाक्षणिक अभिव्यञ्जना का प्रयोग बहुत हुआ है—जिसके कारण साधारण पाठक के लिए दुरूहता दृष्टि आना स्वाभाविक ही है। मीरा की सङ्गीत-मयी भाषा और कबीर की आध्यात्मिकता दोनों का सम्मिश्रण इनकी कविता में लभ्य है।

ग्रंथ:—'नीहार' 'रश्मि' 'सान्ध्यगीत' 'नीरजा' 'यात्रा' और 'दीपशिखा' आपके प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ हैं। 'नीरजा' पर सेकसरिया पुरस्कार मिला था और मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ।

भाषा, छन्द और अलंकारः—महादेवीजी ने शुद्ध, साहित्यिक खड़ी बोली में कविता की है, जिसमें तत्सम शब्दों की अधिकता है। भाव जटिल होने पर भी भाषा सरस, मधुर और परिमार्जित है। इनकी भाषा की प्रौढ़ता, स्वच्छता और धाराप्रावाहिकता अवलोकनीय है। संस्कृत की कोमल कान्त पदावली का बाहुल्य है। आपकी भाषा में विदेशी शब्दों को कोई स्थान नहीं मिला है।

महादेवीजी ने शृङ्गारिक कविताएं ही अधिक लिखी हैं, किन्तु आपका शृङ्गार अध्यात्म पक्ष का द्योतक है। कविताओं में करुण रस की प्रधानता है इन्होंने नवीन छन्दों में भी कविता की है और अलंकारों का संयत प्रयोग हुआ है।

आपकी रचनाओं द्वारा साहित्य के कोष की अनुपम समृद्धि हुई है। आप ने गीति काव्य का सृजन किया जिसमें सत्यं, शिवं और सुन्दरं का सम्मिश्रण है। वर्तमान युग के रहस्यवादी कवियों में आपका स्थान प्रमुख है।

डा०रामकुमार वर्मा

आपका जन्म मध्यप्रदेशान्तर्गत सागर जिले में सं० १९६२ वि० में हुआ आपके पिता श्री लक्ष्मीप्रसाद तथा माता राजरानी देवी हैं। पिता की इधर उधर बदली होती रहने के कारण आपकी प्रारम्भिक शिक्षा मध्यप्रान्त के विभिन्न मराठी स्कूलों में हुई। बचपन से ही आप प्रतिभावान् थे और काव्य तथा साहित्य की ओर रुचि थी। १० वर्ष की आयु में ही आपने 'देश सेवा' शीर्षक कविता पर पुरस्कार पा लिया। जबलपुर से एम० ए० पास करके प्रयाग आगये वहां विश्व विद्यालय में अध्यापक हुए फिर नागपुर विश्व-विद्यालय से पी० एच० डी० की डिग्री प्राप्त की।

वर्मा जी एक अच्छे कवि, समालोचक, नाट्यकार एवं साहित्य इतिहास के लेखक हैं। आप वर्तमान युग के एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कलाकार हैं जिन पर हिंदी साहित्य को गौरव है। आपकी प्रारम्भिक रचनाएं वर्णनात्मक हैं, आयु तथा शिक्षा के साथ साथ आपके भाव कल्पना तथा अनुभूति में स्वाभाविक परिमार्जन होता गया, और फिर आपके कल्पना प्रधान श्रेष्ठ काव्य ग्रन्थ रचे गये जो मुक्तक तथा गीति काव्य हैं। बाद के ग्रन्थों में कल्पना और अनुभूति का सुन्दर समन्वय मिलता है।

प्रकृति आपका ध्यान सदैव खींचती रही है। प्रकृति में उन्हें प्रेम और सौन्दर्य के दर्शन होते हैं—उन्होंने स्वयं कहा है—"कलाकार के जीवन का उद्देश्य सौन्दर्यान्वेषण है। उसे संसार के नीरस से नीरस पदार्थ में भी सौंदर्य के खोजने की आवश्यकता पड़ती है चाहे वह बाह्य हो या आन्तरिक।

प्रकृति की मनोरम झांकियों के बीच में कवि ने कल्पना और अनुभूति की सहायता से ऐसे मनोमुग्धकारी चित्र खींचे हैं कि हृदय बरबस अव्यक्त सौंदर्य के दर्शन करने लगता है। आप सौंदर्य के कवि हैं पर भौतिक सौंदर्य को केवल अनन्त सौंदर्य दर्शन के लिए आधारमात्र मानते हैं:—

"क्या शरीर है ? शुष्क धूल का—
थोड़ा सा छवि जाल,
उसमें ही वह छिपा हुआ है,
वह भीषण कङ्काल।"

मार्मिक वेदना, निराशा तथा भाव का आभास कवि की कविता में सर्वत्र मिलता है यह देखिये निराशा का आवेग:—

"अरे तोड़ दो हार तोड़ दो वीणा के सब तार,
बिखरी कलियों से कर लूंगी मैं अपना शृङ्गार ।

वर्माजी छायावादी कवि हैं, आपकी अनेक रचनाएं रहस्यवाद के अन्तर्गत हुई हैं जिनमें उन्होंने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों को प्रकट किया है जैसे

"नश्वर स्वर से कैसे गाऊं आज अनश्वर गीत"

कबीर के रहस्यवाद नामक ग्रन्थ में आपके रहस्यवाद की युक्ति युक्त परिभाषा दी है । आपने अपनी रहस्यवादी कविताओं का सृजन प्रकृति के द्वारा ही किया है । अपने गीतों के सम्बन्ध में आपने 'चित्ररेखा' की भूमिका में स्वयं कहा है—"मेरे इन गीतों में अन्तर्जगत की व्यक्तिगत भावना है, क्योंकि आत्मा की पुकार में संसार की परिस्थितियों की अवहेलना होना अस्वाभाविक नहीं है ।" आपके ये गीत छोटे छोटे शब्द चित्र हैं ।

ग्रंथ:—'वीर हम्मीर', 'कुल ललना' तथा 'चितवन' आपकी प्रारम्भिक रचनाएं हैं, 'चित्तौर की चिता' ऐतिहासिक वर्णनात्मक काव्य है । 'पृथ्वीराज की आंखें' तथा 'रेशमी टाई' एकांकी नाटकों का संग्रह और 'कबीर का रहस्यवाद' एवं 'साहित्य समालोचना' आलोचनात्मक ग्रंथ हैं । आपका हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" एक महत्वपूर्ण बड़ा ग्रंथ है । 'चित्र-रेखा' और 'चन्द्रकिरण' काव्य ग्रंथों पर आपको पुरस्कार मिल चुके हैं । इनके अतिरिक्त 'अभिशाप', 'अञ्जलि', 'रूपराशि' और 'निशीथ' भी काव्यग्रंथ हैं ।

भाषा, छन्द और अलंकार:—वर्माजी की भाषा अत्यन्त मधुर और प्राञ्जल खड़ी बोली हैं । संस्कृत की कोमल कान्त पदावली का प्रयोग होते हुए भी भाषा सरल और सुबोध है । सरस शब्दावली और व्यवस्थित वाक्य-विन्यास एवं लाक्षणिक प्रयोगो से परिपूर्ण आपकी रचनाओं की भाषा परिमार्जित एवं व्याकरण संयत है ।

छन्द आपकी रचना में नवीन प्रयुक्त हुए हैं, और कविता शृङ्गार रस के अन्तर्गत है । करुण रस का भी सुन्दर परिपाक हुआ है । अलङ्कारों का प्रयोग वर्मा जी ने भावों के उत्कर्ष निमित्त ही कहीं कहीं किया है । अन्य छायावादी कवियों की भांति स्वाभाविक रूप से आये अलंकारों का प्रयोग ही आपकी कविता में मिलता है । मुहावरों के प्रयोग भी यत्र तत्र पाये जाते हैं ।

छायवादी युग के कवियों में डा० रामकुमार वर्मा का स्थान अग्रगण्य है । हमारा हिंदी साहित्य आपसे बहुत कुछ आशा रखता है ।

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान

आपका जन्म संवत् १९६१ में हुआ। आप की कविताएँ अधिकतर राष्ट्रीय भावना से ओत प्रोत हैं– पर वात्सल्य रस की कविताओं में भी सुन्दर मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक चित्रण हुआ है। 'झाँसी की रानी" शीर्षक कविता में नारी के ओज, शक्ति सामर्थ्य की अभिव्यक्ति के साथ देश प्रेम की उत्कट भावना झंकृत हुई है। यह कविता राष्ट्रीय भावना और नारी गौरव की व्यंजना के साथ ओज माधुर्य और स्वाभाविकता आदि गुणों के कारण अत्यन्त लोक प्रिय हुई। रानी लक्ष्मी बाई की समाधि का सुन्दर वर्णन कितना ओजपूर्ण और मर्मस्पर्शी है:—

बढ़ जाता है मान वीर का, रण में बलि होने से,
मूल्यवती होती सोने की भस्म यथा सोने से,
रानी से भी अधिक हमें अब, यह समाधि प्यारी है,
यहाँ निहित स्वतन्त्रता की आशा की चिनगारी है।

इस युग की भाग्यवादी और निराशावादी रचनाओं के विपरीत सुभद्रा कुमारी चौहान की प्रेम की कविता प्रफुल्ल कारिणी और स्फूर्तिदायिनी है– वह जीवन और उत्साह से पूर्ण तथा इनमें प्रेम की स्वाभाविकता व्यंजना की पूरा क्षमता है।

इनकी प्रेम की कविता स्त्री की प्रीति-रीति का प्राण है–प्रेम के आल्हाद का आप सीधे साधे ढङ्ग से वर्णन करती हैं।—

"मधुर मधुर मीठे शब्दों में मैंने गाना गाया एक,
वे प्रसन्न हो उठे खुशी से शाबाशी दी मुझे अनेक,
प्रेमोन्मत हो गई मैंने उन्हें प्रेम निज दिखलाया"
....

नम्रता, प्यार और आत्मसमर्पण का प्रभावपूर्ण वर्णन देखिये:—

'धूप दीप नैवेद्य नहीं है, झाँकी का शृङ्गार नहीं,
हाय गले में पहिनाने को फूलों का भी हार नहीं।
....
चरणों पर अर्पित है इसको चाहो तो स्वीकार करो।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है ठुकरादो या प्यार करो।।"

'मुकुल

श्रीमती चौहान के उद्‌गारों में भावानुभूति और सचाई रहती है। आपकी कविता, सरलता, सत्यता और निष्कपट भाव से विश्वासपूर्ण स्थिति का प्रसार करती है, इसलिये पाठक कवयित्री के समीप आकर उसके हृदय की धड़कन सुनता है। आप जीवन के क्रोड़ में रहकर कविता रचती हैं। अतः उसमें यथार्थ जीवन के चित्र हैं।

उनकी कविता की तीन प्रेरणाएँ हैं—

प्रेम, शैशव, और राष्ट्रीयता, तीनों ही प्रकार की कविताएँ आत्म अनुभूति से परिपूर्ण हैं और मर्मस्पर्शिनी हैं।

श्रीमती चौहान उन कवियों में से हैं जिन पर महात्मा गांधी के अहिंसा के सिद्धान्त का बहुत प्रभाव पड़ा। कांग्रेस को आप देश की आशा और आधार स्वरूपा मानती है और गांधी को मुक्ति मंत्र के दाता:—

"मा भैया कांग्रेस हमारी आकांक्षा की प्यारी मूर्ती।

निम्नलिखित पंक्तियों में आपके अहिंसा में पूर्ण विश्वास की अभिव्यक्ति हुई हैं:—

"हमारी प्रतिमा साध्वी रहे, देश के चरणों पर ही चढ़े।
अहिंसा के भावों में मस्त आज यह विश्व जीतना पड़े।
":मुकुल"

उनकी कविताएं राष्ट्रीय प्रगति की पगध्वनियां हैं:—और भारत मां की बेड़ी काटने की ज्वलन्त तड़प उनमें धधक रही हैं:—

"सबल पुरुष भीरू बनें तो हमको दो वरदान सखी,
अबलाएं उठ पड़ें देश में करें युद्ध घमासान सखी।
देखें फिर उस जगतीतल में होगी कैसे हार सखी,
भारत मां की बेड़ी काटें होवे बेड़ा पार सखी॥

वात्सल्य रस की कविता में "बालिका का परिचय" कितना मनोहारी बन पड़ा है। अलङ्कारों की छटा भी इसमें दर्शनीय हैं:—

दीप शिखा है अन्धकार की, घनी घटा की उजियाली,
ऊषा है यह कमल भृंग की, है पतझड़ की हरियाली।
कृष्ण चन्द्र की क्रीड़ाओं को, अपने ही आंगन में देखो,
कौशल्या के मातृ मोद को, अपने ही मन में लेखो॥

"मेरा बचपन" शीर्षक कविता भी अत्यन्त मनोमुग्धकारिणी है उसमें बाल्यकाल की मधुर स्मृतियों का सुन्दर स्वाभाविक चित्रण हुआ है।

श्रीमती चौहान का कविताओं का संग्रह 'मुकुल' है और कुछ कविताएं "त्रिधरा" में प्रकाशित हुई है। "सभा का खेल" शीर्षक संग्रह में बालोपयोगी कविताएं है।

आपकी भाषा सरल स्वाभाविक और बोधगम्य है। भावों का सीधा स्पष्ट रूप पाठक के मन पर अङ्कित हो जाता है। भावों के उद्वेग को बढ़ाने के लिए यथा सम्भव अलंकारों का प्रयोग हुआ है। पर अनावश्यक रूप से अलंकारों के बोल से भाषा बोझीली नहीं हुई है। छन्द आपके भी तुकान्त ही हैं।

श्रीमती चौहान में बच्चों के प्रति अगाध प्रेम हैं—इन्हें घरेलू जीवन की कवयित्री कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी। सादगी भावानुभूति, अकृत्रिमता आपकी कविताओं की विशेषता है। मेरा बचपन और "बिदा" आदि अत्यन्त सरल एवं अभिव्यक्ति पूर्ण कविताओं के कारण आप को विशेष ख्याति प्राप्त हुई। कवियों के आडम्बर से आप बिल्कुल दूर है, और जीवन की सादगी से प्रेम है।

स्त्री कवित्रियों में श्रीमती चौहान और महादेवी वर्मा हिन्दी-साहित्य के दैदीप्य मान नक्षत्र हैं—आपके काव्य से नारी, कवित्रियों को प्रेरणा मिलेगी और उनके रक्त में नवजीवन और स्फूर्ति का संचार होगा।

(घ) प्रगतिशील युग और उसके कवि

आधुनिक युग के तृतीय उत्थान में प्रगतिवाद और हालावाद चले। छायावादी पलायन शीलता के स्थान पर जीवन संघर्ष से जूझने की प्रवृत्ति इस युग की विशेषता है। प्रगतिवाद में एक ऐसे नये समाज की अवस्था को जन्म देने की आकुलता है; जिसमें व्यक्ति का सर्वोच्च विकास हो सके और समाजवादी अर्थ व्यवस्था अपनाई जा सके। इस युग में एक प्रकार की नास्तिकता की भावना समा गई। ईश्वर में कोई विश्वास नहीं करता, बुद्धि के बल पर, सब कुछ होने लगा।

वस्तुतः छायावाद की प्रतिस्पर्धा में अपने को क्रान्तिकारी सिद्ध करने का प्रयास इस प्रगतिवाद ने किया, और इस कारण इसकी साहित्यिक चेतना एक प्रकार से मृतःप्राय सी ही दिखलाई देती है रूस की मार्क्सवादी भावना से प्रभावित होने के कारण प्रगतिवाद का अपना अस्तित्व ढक सा गया और वह वास्तविक साहित्यिक उन्नति से दूर सा हट कर एक सिद्धान्त की छाया में बंध गया।

सुमित्रानन्दन पन्त, 'निराला' और रामधारी 'दिनकर' आदि इस युग के प्रमुख कवि है, जिन्होंने स्वच्छन्दतावादी धारा को अपनाया। इस धारा के बीच और भी कितने ही कवियों की रचनाएं आती हैं। हरिवंशराय 'बच्चन' को तो हालावादी काव्य का प्रतिनिधि ही समझना चाहिए। उनकी कविता में मधुरता के साथ साथ आदि से अन्त तक तड़पन, वेदना और सजीवता है। विश्व जीवन के चारों ओर आनन्द ही आनन्द दृष्टि आता है—संसार की सभी वस्तुऐं हाला, प्याला और 'मधुशाला' में आभासित हो रही है, इसी से काव्य की इस प्रवृति का नाम 'हालावाद' विख्यात हो गया। 'दिनकर की रचनाएं भी राष्ट्रीयता के साथ साथ कल्पना के रंग और रमणीयता से युक्त दृष्टि आ रही है।

इस युग में शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति और उसकी प्रतिक्रिया रूप ध्वंसात्मक प्रवत्ति जागृत हुई। संसार की विषमता के प्रति अब तक के कवि की दृष्टि उन्मुख न थी। उन्होंने विषमता को देखकर केवल निष्क्रिय निश्वास छोड़ा था। अब 'दिनरक' 'नवीन' और 'सोहनलाल द्विवेदी' आदि

कवियों ने शोषित और पीड़ित समाज का यथार्थ चित्रण करके मानवमात्र की सहानुभूति जागृत की, और फिर विद्रोह और विप्लव मचाया। 'विपथगा' में 'दिनकर' लिखते हैं:—

"श्वानों को मिलता दूध, भूखे बालक अकुलाते हैं
मां की हड्डी से चिपक ठिठुर, जाड़ों की रात बिताते हैं
युवती के लज्जा वस्त्र बेच जब ब्याज चुकाये जाते हैं।
मालिक जब तेल फुलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते है।।
पापी महलों का अहंकार देता मुझको तब आमन्त्रण।"

इस प्रकार मजदूर, किसान आदि शोषित वर्ग की दीन स्थिति का चित्रण कर कर के कवि ने अपनी जीवन सहचरी क्रान्ति का आवाहन किया:—

"चलो क्रान्ति का जीवन भर दे इन युग जर्जर कंकालों में,
चलो सुखों की साध जगादें फिर इन नंगों कंकालों में।"

इसी प्रकार नारी के शोषण और पीड़न को देख कर उसे मुक्त करने के लिये पुरुष को उद्‌बुद्ध किया गया प्रजापीड़क राजाओं को कवि ने चुनौती दी और अछूतों के प्रति युग युग के पाप ताप से कविहृदय सिहर उठा:—

"अरे चमार न होते तेरे पग में छाले पड़ते।
भंगी होते नहीं घरों में कीड़े पड़ते।।

नैतिक, आर्थिक और राजनैतिक शोषण से कराहते हुए समाज का प्रभाव इस युग पर पड़ना अवश्यम्भावी था जिसके फलस्वरूप आजका कवि जनता के शोषित पीड़ितवर्ग के विद्रोह का कवि बन गया। आर्थिक जीवन में क्षुधा और तृप्ति में संघर्ष है, राजनैतिक जीवन में दासता और स्वतन्त्रता में और आर्थिक जीवन में शोषक और शोषित में संघर्ष है, नैतिक जीवन में काम और वासना में संघर्ष है। इस प्रकार असफल श्रम, असफल क्रांति और विफल प्रेम इस युग की कविता में साकार हो उठे। वास्तव में यह दुखवादी गीतिकाव्य काम, उदर और अधिकार की क्षुधा से पीड़ित है।

छायावादी कवि में दुःख का भाव रहस्यात्मक संकेत लेकर आध्यात्मिक साधना बन गया। महादेवी ने देखा कि जीवन ही दुख की छाया है जहां कलियां रोते रोते मुरझा जाती हैं, पर रुदन में जीवन की सार्थकता पाकर उन्होंने समस्त पराजय को 'चिर प्रेमी' को निवेदितकर के चिर विजय बना

लिया । पन्त ने अपने प्रेम विरह की वेदना को शक्ति में पर्यवसित करके अपने सुखी होने की घोषणा करदी:-

"किन्तु सब भाँति सुख सम्पन्न हूं, वेदना के इस मनोहर विपिन में ।

(ग्राम्य)

प्रसाद ने उस वेदना को विश्व कल्याण में परिणत कर दिया:—

"निर्मम जाति को तेरा मंगलमय मिले उजाला,
इस जलते हुए हृदय को कल्याणी शीतल ज्वाला ।"

('आँसू')

इस प्रकार इन कवियों ने शरीरी विरह को आध्यात्मिक रङ्ग देकर अपनी ज्वाला को शीतल चन्दन बना लिया, पर प्रगति शक्ति युग के क्रान्ति कारी कवि इतने से संतोष नहीं कर सकते थे । वे दुख और शोषण के प्रति विद्रोह की ज्वाला भड़का कर प्रलय मचाने को तत्पर हो गये । राजनीति के क्षेत्र में पराजित सेनानी' दिनकर' और 'नवीन' क्रान्ति और प्रलय के लिये द्वार खोलने को उद्विग्न हैं, और आर्थिक आघात प्रत्याघातों की ताड़ना से 'प्रेमी' 'अञ्चल' और 'भट्ट' आदि कवियों में 'अग्निवाद' और ध्वंसवाद आया । राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति भी उन कवियों में क्रान्ति और विस्फोट की प्रवृत्ति के रूप में परिलक्षित है । जननी जन्म भूमि की कड़ियों से उनके प्राण उद्वेलित हो उठे । जागृति के गायक श्री सोहनलाल द्विवेदी कहते हैं: -

जाग ! प्रलयंकर भयंकर । जाग त्रिनयना जाग शंकर ।
भस्म हो अभिशाप युग का मुक्त हो गति रुद्ध जीवन ।
जाग जन गण !

राष्ट्रीय भावना में विद्रोह और विस्फोट इसी काव्य की कविता से आरम्भ हुआ प्रतीत होता है । मधुर भाव के स्थान पर उसकी प्रतिक्रिया में आने आने वाली एक उग्रता इस काव्य की विशेषता है ।

हालावादी और प्रयोगवादी विचार धारा में भी दुख और शोषण के प्रभाव की ही प्रतिक्रिया है । हालावादी संसार के दुख और ताप को भुलाने के लिये 'मधु की मस्ती में मत्त हो जाने की चेष्टा करना है और प्रयोगवादी दुख से उत्पन्न हुए असन्तोष को दूर करने के लिये अनेक प्रयोग करता है, पर कोई निश्चयात्मक मार्ग नहीं ढूंढ पाता ।

रूप और शैली—रूप और शैली की दृष्टि से इस युग में छायावादी कवियों की भाँति शास्त्रीय बन्धनों से मुक्त स्वच्छन्दता का प्रयोग हुआ है। पर कई बातों में इस युग से भेद पाया जाता है। प्रगतिशील साहित्य में क्रान्तिकारी भावनाओं का प्राबल्य होने के कारण छायावादी काव्य का माधुर्य्य, सङ्गीत और व्यंजकता मिलती। इसमें ओजस्विता, कर्कशता, और लाक्षणिकता की ध्वनि गुंजायमान है। नवीन छन्दों की उद्‌भावना और नये २ प्रयोगों का प्राधान्य युग की विशेषता है। भाषा इन कवियों की अत्यन्त सरल पर प्रभावशालिनी है दुख और शोषण से पीड़ित मानस से जो स्वाभाविक प्रतिक्रियावादी पुकार निकलती है, आत्मा की सच्ची हुंकार होने के कारण भाषा में स्वतः ही बल और शब्दो में कर्कशता की ध्वनि उत्पन्न हो जाती है।

अलङ्कारों का प्रयोग भी स्वाभाविक रूप में साधारणतया हुआ है। सप्रयास अलंकारों से कविता को सजाने की प्रथा तो आधुनिक युग से उठ ही गई।

मुख्य कवि—उपर्कथित कवियों के अतिरिक्त प्रगति शील युग में अन्य बहुत से कवि अपनी विशेषताओं को लिये काव्य क्षेत्र में अवतीर्ण हुए, जिनमें से मुख्य हैं— 'अंचल' 'अज्ञेय' 'अश्क'' दिनकर' 'डा० रामविलास शर्मा,' 'डा० रामकुमार वर्मा,' 'भगवती चरण वर्मा,' 'हरिकृष्ण प्रेमी,' 'रांगेय राघव', 'नागार्जुन,' 'नरेन्द्र शर्मा' 'हरिवंशराय बच्चन' 'धर्मवीर भारती' और 'भुवनेश्वर नाथ मिश्र' आदि।

श्री रामेश्वर शुक्ल 'अञ्चल'

'अञ्चल' जी का प्रादुर्भाव आधुनिक हिन्दी काव्य साहित्य में एक तूफान की भाँति हुआ। सन् १६३० से उन्होंने लिखना प्रारम्भ किया और उनकी प्रथम कविता संग्रह 'मधूलिका' '१६३८ में प्रकाशित हुआ। आपकी कविता की प्रचुर आलोचना हुई है। कुछ आलोचकों ने 'अञ्चल' की शृङ्गारी काव्य की श्रेष्ठता प्रमाणित करके इसके सौन्दर्य एवं कला पक्ष पर ही दृष्टि रखना अपना लक्ष्य रक्खा। दूसरी ओर प्रगतिशील आलोचकों ने उनके प्रशंसकों द्वारा मान प्राप्त शृङ्गार की धज्जियें उड़ाना आरम्भ कर दिया। उन्होंने उसे एक विलासी और अतृप्तवासना वाले हृदय की अभिव्यक्ति बनाया।

वास्तव में 'अञ्चल' जीवन की प्रत्येक गति, समाज की प्रत्येक क्रिया को कविता का विषय मानते हैं। कविता जीवन की सुन्दरताओं और कुरूपताओं का रसात्मक माध्यम से उद्घाटन करती है पर अभिव्यक्ति का स्तर ओछा न पड़ने पावे यह ध्यान रखना कवि का काम है। कविता केवल कवि की अभिव्यक्ति की प्रेरणा की पूर्ती का साधन नहीं, वह सामाजिक आयोजनों और बदलती हुई जीवन स्थितियों को बल पहुंचाने का एक सशक्त साधन भी है। कविता में केवल विचार और स्थूलमतवादी मान्यता देना पर्याप्त नहीं उसमें कवि का आन्तरिक समन्वय भी आवश्यक है। अञ्चल के काव्य में कुछ स्थलों में अवश्य यह तत्व मिलता है. पर प्राय: उनकी कविता किसी प्रकार का संदेश देने में असमर्थ रही है। उन्होंने केवल रूप और सामग्री लेकर तरह २ के प्रयोग किये हैं. जिससे यथार्थवादी नग्न चित्रण के अतिरिक्त पाठक के पल्ले कुछ नहीं पड़ता। श्रीरामनाथ सुमन ने उन्हें भरे पूरे यौवन का प्रतीक कहा है क्योंकि उनकी प्रारम्भिक कविताओं में नारी के प्रति एक वासनात्मक दृष्टिकोण मिलता है जो क्षयी रोमांस का प्रतीक है; जैसे—

"मैं अर्थ बताता द्रोह भरे यौवन का,
मैं नग्न वासना की गीता उच्छ्ंखल!'
"ज्यों मद्यप मदिरा को लख कर हो जाते हैं मतवाले,
वैसे आज सरस वेणी पर पागल हूं मैं बाले!'

इन प्रारम्भिक कविताओं से ऐसा भान होता है मानों समस्त ब्रह्माण्ड को कवि ने अपनी ऐंद्रिय वासना में रङ्ग लिया हो जैसे कि 'बच्चन ने अपने मधु विलास में। परन्तु अञ्चल जी के यही वासना और तृष्णा सम्बन्धी

प्रवृत्ति के गान और असन्तोष और विद्रोह भावना में परिणत हो जाते हैं। अब वह प्रगतिवाद की ओर आये माने जाते हैं। डा० गुलाबराय ने लिखा है—"वे शोषित पीड़ित मानवता का पक्ष लेकर क्रान्ति की ज्वाला धधकाना चाहते।" पीड़ित मानवता के कुछ चित्र उनके बड़े करुणाजनक हैं, जैसे—

"और कई बच्चों की माँ आरही उधर से अन्न बटोरे,
आँचल में कुछ लिये चबाती कुछ बिखरे धोती के डोरे।"

पर इनमें भी आन्तरिक करुणा का विशेष समन्वय नहीं मिलता। इनके प्रगतिशील पक्ष पर डा० राम कुमार वर्मा नेठीक निर्णय दिया है अञ्चलजी संस्कारों से शाश्वत भावनाओं के कवि हैं- आधुनिक रूप में प्रगतिशील कहलाने वाले कवियों से नितान्त भिन्न युगकालीन संस्कारोंवश कदाचित दो चार कविताएँ प्रगतिशील बन पड़ी हों—पर साधारणतया उनकी कविता में सौन्दर्यान्वेषण ललित सृष्टि प्रेम और घृणा के शाश्वत भावों की मात्रा यथेष्ठ रूप में वर्तमान है।

अञ्चल ने अवश्य छायावादी युग में लिखना आरम्भ किया था पर उनका चित्रण छायावादी कवियों की श्रेणी का नहीं। हाँ, उनके बदलते हुए दृष्टिकोण से आशा की जा सकती है कि कवि के प्रगतिशील रूप का विकास होकर उनकी कविता नया मोड़ पकड़े—अतः आलोचक का कर्त्तव्य है कि उनके इस गुण को प्रकाश में लावें और पुराने नग्न व उत्तेजक रूप को न उभरने दे।

अञ्चल का नवीन जीवन दर्शन निश्चय ही उन्हें प्रगति पथ पर लिये जा रहा है। वह जीवन में सङ्घर्ष और कर्म की प्रधानता मानते हैं; जैसे—

"जो अडिग रहता सदा तूफान में बरसात में,
टूट जाता है वही तारा शरद की रात में।
मुक्त जीवन की प्रगति की द्वन्द्व में संघात में,
फूल काँटों में खिला था सेज पर मुरझा गया॥

जीवन और समाज दोनों को वे एक गतिशील शक्ति मानते हैं। दोनों के गुणात्मक परिवर्तन पर उन्हें विश्वास है अपने कर्म पथ पर उन्हें थकान या निराशा नहीं होती।

"पथ के अवरोधों को मैंने अब तक अपराजेय न माना," इस प्रकार 'अञ्चल' जी में धीरे २ प्रगति शील तत्त्व विकसित हो रहे हैं। दुनियाँ को बदलने का दृढ़ संकल्प 'अन्तर्ज्वाला' में दृष्टिगोचर होता है:—

"आज हमें फिर इन्कलाब के इङ्गित पर आंधी सा चलना
आज हमें दानवता से संचालित यह संसार बदलना"

पूंजीवादी व्यवस्थाजन्य भूख, गरीबी और यातनाओं का विशद चित्रण भी किया है, और नारी के प्रति उनका पहला दृष्टिकोण अब वास्तविक जीवन की अनुभूतियों में परिवर्तित हो गया है। देश के साधारण परिवारों की वेदना का चित्रण कहीं कहीं बड़ा मर्मस्पर्शी हुआ है।

"और वहीं परिवार खड़ा है, भूखे शिशु, अकुलाती माता,
चलता जन्म दिवस से मरने तक जिनका तृष्णा से नाता।
जैसे भूख खड़ी होकर साकार हुई आती मिचलाती,
बुझती सारी रात नहीं, अधजली लाश रह रह धुंधलाती॥"

कवि समय के साथ आगे बढ़ रहा है और उसकी कविताओं में युग की भावनाओं और समस्याओं का समावेश होता चला जा रहा है। अञ्चल की दृष्टि नये रूप विधानों की ओर भी गई है, पर अभी उसका पूर्ण विकास नहीं हुआ है। उनके तुकान्त काव्य में एकरसता है और अतुकान्त में वैविध्य होते हुए भी अभी निखार नहीं आ पाया है।

अञ्चल के काव्य में उत्तरोत्तर नई शक्ति आने पर, उनकी अभिव्यक्तिकला में स्पष्टता और चित्रात्मकता आदि का समावेश होने पर निश्चय ही वह जन जीवन का प्रतिनिधित्व करके हिन्दी साहित्य की एक विभूति सिद्ध होंगे।

'मधुकर' 'अपराजिता' 'किरणवेला' और 'करील' आपके चार काव्य संग्रह हैं। 'वह मजदूर की लड़की', 'नारी', 'मानव की राह', 'प्रलयरात', 'नवयुग की दीवारें' आदि कविताएं जो मुक्तक छन्द में लिखी गई हैं, इनमें काव्यगत नये प्रतीकों, सौंदर्य मूल्यों और नई कल्पनाओं का समावेश है।

— — —

'अज्ञेय'

छायावादी युग के अन्तिम पक्ष में 'अज्ञेय' जी का आविर्भाव हो गया था। उन्होंने हिन्दी कविता में नये नये प्रयोगों को जन्म दिया। उनके टैकनीक सम्बन्धी नवीन प्रयोगों के कारण अभिव्यञ्जना प्रक्रिया अपने विभिन्न रूपों में दृष्टि आई। इस प्रकार 'अज्ञेय' ने नई स्थापनाओं एवं अभिव्यञ्जना सम्बन्धी मौलिक विशेषताओं के कारण हिन्दी काव्य साहित्य में एक नया आकर्षण उत्पन्न कर दिया।

छायावादी युग से लेकर अब तक पनपने वाली कई विचार धाराओं का प्रभाव आपकी रचनाओ में मिलता है, जिनमें प्रतीकवाद और प्रयोगवाद के तो प्रवर्त्तक ही आपको कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। अपनी इस प्रयोगवादी और नवीन प्रयोगों की धुन में रहने की प्रवृत्ति के कारण 'अज्ञेय' जी में इतनी वैयक्तिकता आगई कि उनकी कविताओं मे प्रगतिशील कविताओं की भांति सामाजिक यथार्थ के दर्शन नहीं होते और उन्हें युग जीवन और जन जीवन से पृथक माना जाने लगा।

उनके शुद्ध टैकनीक और अभिव्यञ्जना सम्बन्धी नये प्रयोगों के कारण हिन्दी साहित्य के लिये उनकी कविता का स्वरूप नितान्त नया प्रतीत हुआ— पर इतना होते हुए भी 'अज्ञेय' प्रतिभाशाली कवि हैं। कविता में मौलिकता होना और विशेषकर नवीन प्रयोगो का आविष्कार करना विशेष प्रतिभा सम्पन्न कवि का ही काम है।

'अज्ञेय' की चुनी हुई कविताओं का संग्रह 'इत्यलम्' नाम से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में कविताओं के विभिन्न रूप पाये जाते हैं—१९३० से १९४५ तक की रचना एक रूप हो भी नहीं सकती थी। उनकी कविताओं में आदि से अन्त तक विकास और परिवर्तन के चिह्न स्पष्ट लक्षित होते हैं। इसके पश्चात आपकी कविताओं के तीन संग्रह 'शरणार्थी' 'हरी घास पर क्षण भर' और 'बावरा अहेरी' और प्रकाशित हुए। 'अज्ञेय' बुद्धिवादी धारा के कवि हैं। उनकी बौद्धिकता सजग और तर्क पूर्ण है। तर्कपूर्ण शैली की कई बौद्धिक कविताएं 'इत्यलम्' संग्रह में हैं।

जैसे 'शिशिर के प्रति' 'दीपावली का एक दीप' और प्रस्थान आदि कविताएं।

छायावादी प्रवृत्ति का भी नितान्त लोप नहीं हुआ था—इनकी प्रारम्भिक कविताओं में उसका प्रभाव है। 'गीति' शीर्षक कविता इसी प्रकार की रचना है:—

"मांझी, मत हो अधिक अधीर'

....

थोड़ी देर प्रतीक्षा करते, साहस से हे वीर—
छोड़ इन्हें क्या तटिनी तट पर चल देगा बे पीर

आपकी कविता में यत्र तत्र रहस्य भावना एवं जिज्ञासा भी छायावादी कवियों जैसी दृष्टि आती है—जैसे 'विशाल जीवन' कविता में कवि अनेक प्रश्न करता है।—

"है यदि तेरा हृदय विशाल. विराट प्रणय का इच्छुक क्यों ?
जीवन ही यदि ऊंचा नो ऊंची समाधि हो रक्षक क्यों ?

'अज्ञेय' जी की अभिव्यंजना अति गूढ़ और गहरी है। पर उन्होंने अपने भावों को अलंकारों के जाल में नहीं बांधा है। उनकी अन्तिम रचनाओं में तो अभिव्यंजना के आधिक्य के कारण काव्यात्मकता का अभाव सा दृष्टि आता है। इस प्रकार की आधुनिक कविता में प्रायः तुक और लय का अभाव भी खटकता सा है।

इनकी कविता में सबसे बड़ी विशेषता नाटकीय प्रभाव की है। विषय के अर्थबोध और भावों के चित्रण में यह नाटकीय भंगी सर्वत्र विद्यमान है। नाटकीय छटा का दिग्दर्शनकराना उनकी कविता का मौलिक गुण है—इस इस प्रकार के प्रसंग भावों की सृष्टि में भी सहायक होते हैं।

यह हैं कुछ उदाहरणः—

"किसने देखा चांद,
जिसने
उसे न चीन्हा एक अकेली आंखे, "

अथवा

"अभी नहीं—क्षण भर रुक जाओ—
महफिल के सुनने वालो

मन वञ्चित हो कोसो, हे
सङ्गीत सुमन चुनने वालो ।"

वास्तव में भाव जगत में इस नई परम्परा को जन्म देकर 'अज्ञेय' ने हिन्दी कविता को वैभवशाली बनाया है। इन्होंने छन्दों में भी नये प्रयोग किये हैं। संतुलित छन्द रचना के साथ साथ आपके काव्य में नई शैली के मुक्त छन्दों का भी उपयोग हुआ है।

कविता के नये प्रयोगों, अभिव्यंजना शैली और मौलिकता के कारण अज्ञेय जी ने आधुनिक हिन्दी काव्य जगत में विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है।

—:—

पं० रामधारीसिंह "दिनकर"

पं० रामधारी सिंह "दिनकर" का जन्म सन् १६०८ में हुआ था। प्रगतिवादी युग में जागृति की शङ्खध्वनि बजाते हुए हिन्दी साहित्य में आपका उदय हुआ। "दिनकर" में राष्ट्रीयता की छाप अधिक है। धनिकों व पूंजीपतियों की शोषण नीति से आपका करुणार्द्र हृदय व्यथित हो उठता है। "गङ्गा" और "हिमालय" सम्बन्धी आप की कविताओं में देश प्रेम की भावना ही प्रधान है:—

"मेरे नगपति ! मेरे विशाल,
साकार, दिव्य, गौरव विराट।
पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल!
मेरे भारत के दिव्य भाल!"

आदि भावों में देश के प्रति गौरव के उद्गार उमड़े पड़ रहे हैं। गङ्गा वर्णन में प्राचीन गाथाओं का गान किया है और प्रकृति चित्रण भी।

दिनकरजी ने "कस्मै देवाय" शीर्षक कविता में वर्तमान सभ्यता का अत्यन्त भीषण चित्र अंकित किया है:—

"सिर धुन धुन सभ्यता सुन्दरी रोती है बेबस निज रथ में।
हाय दनुज किस ओर मुझे ले खींच रहे शोणित के पथ में।"

आपकी जागृति की पुकार में आशा का सन्देश है, नैराश्य भाव नहीं। "कुरुक्षेत्र" आपकी नवीनतम कृति है जो प्रबन्ध काव्य के रूप में लिखी गई है। इसमें युद्ध की मीमांसा अधिक है। युद्ध में आप बाहुबल की अपेक्षा आत्मबल को अधिक मानते हैं। गीता में अर्जुन की भांति "कुरुक्षेत्र" में धर्मराज युधिष्ठर ने युद्ध के संहार पर ग्लानि प्रकट करते हुए पलायनवाद का आश्रय लिया है। परन्तु भीष्म पितामह; ने युद्ध का पक्ष समर्थन किया है। न्याय की स्थापना निमित्त हुए युद्ध को वह पुण्य मानते हैं:—

"छीनता हो स्वत्व कोई और तू,
त्याग तप से काम ले यह पाप है,
पुण्य है विछिन्न कर देना उसे,
बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ हो।"

इस प्रकार दिनकरजी के काव्य में हमें दोनों पक्षों का समर्थन मिलता

है। साम्यवाद और संघर्षवाद के पोषक होने के साथ साथ उन्होंने गांधीवादी अन्तरात्मा की ज्योति को भी स्वीकार किया है:—

"आत्मा की यह ज्योति फूटती विमल अन्तर से"

विश्व व्यापी शोषण और पीड़न के ताण्डव का अन्त करने के लिए कवि अपने नूपुरों से झनन २ करती हुई विश्व नर्तकी "विपथगा" क्रान्ति की आगमनी बजाता है।

"संहार लपट का चीर पहन
नाचा करती मैं छूम छनन"

'विपथगा'

दिनकर की कविता भारतीय राजनीति को पार कर अन्तर्राष्ट्रीय भाव-लोक में पहुंची है।

'रसवन्ती' में जीवन के कोमल पक्ष का स्पर्श किया है जिसमें नारी के विभिन्न रूपों का चित्रण है। पर आपकी अधिकांश कविताओं में विरोध की अन्तर्ज्वाला है।

इस प्रकार क्रान्तिकारी भावनाओं के साथ अन्तरात्मा की ज्योति में विश्वास करने वाले दिनकर जी का काव्य अत्यन्त लोकप्रिय सिद्ध हुआ।

दिनकर को ग्राम्य जीवन से प्रेम है ग्रामवासियों की रहन सहन के अतिरिक्त ग्रामों के प्राकृतिक सौंदर्य पूर्ण वातावरण का मनोहारी चित्रण करके उन्होंने प्रकृति प्रेम का परिचय दिया है।

स्वर्णचला अहा खेतों में उतरी संध्या श्याम परी
रोमन्थन करती गाएं आ रही रौंदती घास हरी"

(हिन्दी कविता का क्रांतियुग)

ग्रन्थ परिचय:—'कुरुक्षेत्र' आपका नवीनतम ग्रन्थ प्रबन्ध काव्य में ढंग का लिखा हुआ है। उसके अतिरिक्त जैसे 'रसवन्ती', 'मन्दगीत', 'हुँकार', 'धूपछांह' 'श्यामवेनी' और 'बापू' आदि कविता संग्रह हैं।

दिनकर जी की भाषा शुद्ध और सरल खड़ी बोली हिन्दी है। जिसमें तत्सम शब्दों के प्रयोग का बाहुल्य है। परिष्कृत और परिमार्जित होते हुए भी आपके काव्य की भाषा सरल स्वाभाविक और मर्मस्पर्शिनी है। उसमें भावों की दुरूहता नाममात्र भी नहीं।

यथास्थान संयत रूप से अनुप्रास, उपमा और रूपक अलंकार आदि अलंकारों का प्रयोग भी हुआ है। छन्दों का प्रयोग अधिकतर तुकान्त है। इस

युग के कवियों की प्रथानुसार आपके छन्द भी नवीन शैली के हैं।

नवीन युग की स्वच्छन्दता वादी धारा में दिनकर जी का प्रमुख स्थान है। दिनकर राष्ट्रीयता के उद्यान में कूकने वाला अनिलवर्षी कोकिल है। आपकी रचनाओं में राष्ट्रीय भावनाओं के साथ कल्पना का रंग और रमणीयता है। युवकों के हृदय में जोश फूंकने के लिए आपकी कविता मूल-मन्त्र है। ऐसे ही क्रांतिकारी कवियों पर हिन्दी साहित्य का भविष्य और राष्ट्र का उत्थान निर्भर है। परन्तु उनकी क्रान्तिकारी भावना कुछ संयत रूप धारण करलें तो इस धारा के कवियों की ध्वंसात्मक प्रवृत्ति के फलस्वरूप उत्पन्न हुए दोष मिट जायें।

इस क्रान्तिकारी नवीन भावना के विषय में पन्त के विचार अति श्रेष्ठ और सुलझे हुए हैं। उनके मतानुसार नई व्यवस्था में क्रान्तिवादियों के साम्य वाद और गान्धीजी के सत्य और अहिंसा का सामंजस्य तथा समावेश होगा। सत्य और अहिंसा व्यक्ति के विकास के लिये आवश्यक हैं और साम्यवाद समिष्टि की उन्नति के लिये—अतः नवीन संस्कृति का स्वर्णयुग गांधीवाद और साम्यवाद दोनों का सन्देश लेकर आया है। इसी सन्देश की हमारी आशा 'दिनकर' जैसे प्रभावशाली और ओजस्वी कवि के काव्य से पूरी होगी।

हरिकृष्ण 'प्रेमी'

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' की गिनती क्रांतिवादी युग के कवियों की श्रेणी में है, पर आप केवल अग्नि और विस्फोट के ही कवि नहीं हैं, प्रेम के ही गायक नहीं है, बल्कि वह छायावाद के सूक्ष्म लोक में भी सञ्चरण करते हैं। कबीर ने विश्व की नारी शक्ति को महाठगिनी माया कहा है, 'प्रेमी' जी ने उसके विविध रूपों का अङ्कन 'जादूगरनी' में इस प्रकार किया है।

"तू चिर सुन्दरि विश्व विपिन में खिलती है देती मधुदान।
जो मधु दान जगत की ज्वाला को करता है शान्ति प्रदान॥"

आंखो में वेदना का दीपक लिये कवि ने अपनी व्यथा को प्रगट किया है। किसी अज्ञात विमल विभूति के प्रति उनका उन्माद, प्रेम, स्मृति, विरह, उपालम्भ न जाने क्या क्या 'जादूगरनी' में हैं—इतना कुछ कह चुकने पर भी बहुत कुछ आंखों में छिपा रह जाता है। इसी मधूरी अव्यक्त, अस्पष्ठ अभि-व्यक्ति में ही हमें उनके हृदय की अगाध अनुभूति की अस्पष्ट झलक पाकर सन्तोष करना पड़ता है। अनुभूति की तीव्रता कवि के मस्तिष्क को चकरा देती है और हम उसे खोया हुआ सा, भटका हुआ सा और कुण्ठित सा पाते हैं यही असन्तोष की अग्नि उनके सारे काव्य में धधकती हुई मिलती है जो कि क्रान्ति की जन्म दातृ है। 'अग्निगान' में उनका असन्तोष उग्र रूप धारण किये दृष्टि आता है।

पर प्रेमी जी की क्रांति अहिंसात्मक क्रांति है—आप हिंसा की हिंसा चाहते हैं और आपका आदर्श है कि प्रत्येक प्राणी स्वतन्त्र विचरण करे, कोई किसी पर अत्याचार न कर पाये। यह है मानवता की उदात्त भावना जो आपके हृदय में राज्य करती है। यह देखिये उनका आदर्शः—

"वन के मृग से सब जन घूमें, हिंसा के हम प्राण निकाले।
विष की जननी सभ्यता के हम, आज गले में फांसी डाले॥"

इस प्रकार मानव प्रेम का प्याला लिये अहिंसात्मक क्रांति का दूत कवि साहित्यिक क्षेत्र में अवतीर्ण होकर क्रांति की धूम मचाता है।

आपकी कविता में स्वानुभूति मर्मव्यथा साकार होगई है। जीवन के अनेक प्रसंगों में उन्हें जो पद पद पर आघात प्रत्याघात सहन करने पड़े उनकी मुद्रा इनकी कविता में आई है। उनके व्यक्तिगत आघात गीतों की कड़ियां बन गये।

आप की रचनाएं हैं 'आंखों में', 'जादूगरनी', 'अनन्त के पथ-पर' 'स्वर्णविहार' और 'अग्निगान'।

श्री नरेन्द्र शर्मा M. A.

आधुनिक युग के क्रान्तिकारी कवियों में श्री नरेन्द्रजी वह व्यक्ति हैं कि जिन्होने श्रृङ्गार और वीर दोनों रसों में कविताएँ की हैं। आपकी कविता सामाजिक बन्धनों को तोड़ने और रूढ़िवादिता को मिटाने के लिये विशेष प्रेरणा देती है। नरेन्द्रजी नतशिर बन्दी को उठा कर उसकी निर्जीव श्वासों में नव-जीवन फूंकने का सन्देश सुनाते हैं, जैसे "ज्येष्ठ के माध्यम" शीर्षक कविता में:—

"मध्यान्ह काल ज्यों अहिविशाल,
केन्द्र में सूर्य—
शोभित दिन मणि से गर्वोन्नत ज्यों भीम भाल,
कर गरल पान सब विश्व शान्त
तृण तरुण न कहीं भय से हिलते —
जीवनी शक्ति, जैसे परास्त हो महा मृत्यु से पड़ी क्लान्त।

आपका एक काव्य संग्रह 'पलाशवन' प्रकाशित हुआ है, उसकी कविताओं में प्रेम स्पन्दनों के साथ प्रकृति चित्रण भी दृष्टि आता है। उनके हृदय की क्रान्तिकारी भावनाएँ प्रकृति चित्रण में भी स्पष्ठ झलकती हैं। पलाश की लाली को भी उन्होंने क्रान्ति का प्रतीक बनाया है, जैसे: —

"लो डाल डाल से उड़ी लपट ! लो, डाल डाल फूले पलाश।
यह है वसन्त की आग लगादे आग जिसे छूले पलाश॥"

नरेन्द्र जी नई व्यवस्था द्वारा दलितों को शक्ति एवं अधिकार दिलाने में घोर समर्थक हैं। क्रान्तिवादी अन्य कवियो की भाँति वह वर्ण भेद का नाश करके जीवन और साहित्य के सम्बन्ध को अत्यन्त दृढ़ और गम्भीर बनाना चाहते हैं। दीन और दुखियों को अधिकार दिलाने के सम्बन्ध में कहते हैं: —

"वर्णहीन असमान पतित को उठा शक्ति देंगे प्रलयंकर,
दैत्यों का दुर्जेय शौर्य ले देवों की ले अमृत मधुरिमा।
मानवता के साँचे में ढल बनी हमारी कुन्दन प्रतिमा,

इस प्रकार विषमता का अन्त करके नई सभ्यता और नई व्यवस्था द्वारा शांति समृद्धि और स्वतन्त्रता की स्थापना चाहने वाले नवीन धारा के कवियों में प्रमुख स्थान प्राप्त किये श्री नरेन्द्रजी हिन्दी साहित्य के एक उज्ज्वल रत्न हैं। उनके काव्य संग्रह 'शूल-फूल' 'कर्ण फूल' प्रभात फेरी और प्रवासी के गीत काव्य प्रेमी नव-युवकों में अत्यन्त लोक प्रिय हुए।

श्री भगवतीचरण वर्मा

श्री भगवतीचरण वर्मा का जन्म सं० १६६० में हुआ श्रीमती महादेवी वर्मा, डा० रामकुमार वर्मा और भगवतीचरण वर्मा तीनों कवि वर्मा त्रयी के के नाम से प्रसिद्ध हो गये हैं ? महादेवी जी की भांति भगवतीचरण भी दुख वाद से प्रभावित कवियों में से हैं—ये दुख में ही एक शान्ति और सुख की रेखा देखते हैं। आपके दुख में नैराश्य की एक झलक मिलती है—संसार से मानो आपको सहानुभूति न प्राप्त हुई हो ऐसी ही भावना आपकी कविता से प्रकट हुई है, संसार को आप कृतघ्न मानते हैं:—

"आह कृतघ्न विश्व का झोंका
मुझे बनाता है उद्‌भ्रान्त"

वर्माजी देश की परिस्थितियों से प्रभावित होकर प्रगतिवाद की ओर झुके हैं। इस विषय की एक कविता में भैंसा गाड़ी का वर्णन करते हुए हमारे ग्रामों की करुण स्थिति का हृदयस्पर्शी चित्र खींचा है:

"भू की छाती पर फोड़ों से,
हैं उठे हुए कुछ कच्चे घर।
नर पशु बन कर पिस रहे जहां,
नारियां जन रहीं हैं गुलाम"

इस प्रकार देश की वर्तमान स्थिति के प्रति एक रुदन, एक रोष और क्रन्दन उनकी कविताओं की झंकार है आपकी कविता में एक नैराश्य और अतृप्ति की झलक विद्यमान है:—

लेकर अतृप्त तृष्णा को आया हूं मैं दीवाना।
सीखा ही नहीं यहां है, थक जाना या छक जाना॥"

प्रेम विषयक कविताएं भी इन्होंने लिखी हैं। आपके प्रेम में पार्थिवता अधिक है। वर्माजी प्रेम के मधु में सब कुछ भूल जाना चाहते हैं, वह रो रो कर हंसना सीख गये, पर उनके रोने में निष्कामता नहीं, उसमें मिलन की चाह है। महादेवी जी के विरह से यह उल्टा है, जहां प्रियतम की अपेक्षा प्रियतम के विरह को अधिक महत्व दिया गया है।

आपने प्रेम के क्षेत्र में स्वच्छन्दता का आवाहन किया है, निम्नलिखित पंक्तियों में स्वच्छन्द प्रेम का आवाहन मिलता है। अपनी प्रिया से लाज की सीमा तोड़ने का आग्रह करते हुए कवि कहता है:—

'लाज की सीमा प्रिय तुम तोड़ दो
ग्राज मिल लो मान करना छोड़दो ।"

वर्मा जी प्रेम के उदात्त प्रभाव को मानते है। ग्राप प्रेम को ग्रानन्द की एक हिलोर कहते हैं, जो ग्रसीम की ग्रोर चलने का संकेत करती है जैसे:—

है. हमें वहाने को ग्राई यह रस की एक हिलोर प्रिये।
शाश्वत ग्रसीम में चलना है निज ग्रसीमा के उस ओर प्रिये ।।

ग्रापने ग्रपनी कविता में उर्दू के प्रेम काव्य की परम्परा का भी समावेश किया। साकी, प्याला, ग्रफसाना ग्रोर मस्ती आदि उर्दू के प्रतीकों का प्रयोग यत्र तत्र पाया जाता है।

भाग्यवाद के साथ 'वर्मा त्रयी' की कविता में निराशा की गहरी छाया है। इस निराशावाद से उत्पन्न हृदय के चिरवसाद को भुलाया जाकर 'उमर खैयाम की मस्ती से। जीवन की कठिनाइयों आपत्तियों और संकटों में 'प्याला' उनका शरण दाता, हुआ।

ग्रन्थ परिचय:—वर्माजी की कविताग्रों संग्रह 'मधुकण', 'प्रेम संगीत' ग्रोर मानव आदि नामों से प्रकाशित हुए हैं। वर्माजी के उपन्यासों में 'चित्र लेखा' 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' ग्रोर 'खून के छींटे' प्रमुख हैं।

भाषा, छन्द ग्रोर ग्रलंकार:—वर्माजी की भाषा सरल सुबोध ग्रोर ग्रोज मयी है। ओजस्विता की प्रधानता के कारण आपकी भाषा में छायावादी कवियों जैसे माधुर्य्य के वर्णन नहीं होते। भाषा में अधिकतर शब्द हिन्दी के तत्सम शब्दों का प्रयोग होते हुए भी ग्रावश्यकतानुसार यत्र तत्र उर्दू शब्दावली प्रयुक्त की है। 'भैंसा गाड़ी' ग्रादि कविताग्रों में सुन्दर शब्द चित्र भी देखने को मिलते हैं।

इस युग के प्रचलित नये छन्दों में ही आपने कविता की है। ग्रलंकारों का संयत प्रयोग हुग्रा है। शब्दालंकारो के ग्रतिरिक्त ग्रर्थालंकारों में रूपक, उपमा ग्रोर उत्प्रेक्षा को ही इस नवीन धारा के काव्य में ग्रपना सके हैं। भाव गाम्भीर्य्य और कल्पना की प्रधानता के कारण कविता के कलात्मक रूप की ग्रोर उनका ध्यान, ही नहीं जाता, स्वाभाविक रूप से हृदय की प्रेरणा के फलस्वरूप जो ग्रलंकार प्रयुक्त हो जावे वही ग्राते हैं, सप्रयास लाये हुए नहीं।

इनकी भाषा में कहीं २ अंग्रेजी मुहावरों का भी ग्रनुवाद मिलता है।

भगवती चरण वर्मा का नवीन युग के प्रगतिवादी कवियों में प्रमुख स्थान है ग्राप केवल कवि ही नहीं उपन्यास कला के भी ग्राप ग्रच्छे विद्वान हैं। ग्रापके उपन्यास सामाजिक, राजनैतिक ओर आर्थिक स्थिति के यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में पूर्ण सफल हुए।

हरवंशराय 'बच्चन'

प्रगति शील युग में यौवन की मस्ती का सन्देश लेकर 'बच्चनजी' काव्य क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। फारसीके हालावादी साहित्य के प्रतिनिधि उमर खैयाम की रुबाइयों के ढंग की आपकी 'मधुशाला' ने हिन्दी में हालावाद को जन्म दिया। ग्रीक के प्रसिद्ध दार्शनिक 'ऐपीक्यूरस' की भाँति 'बच्चनजी' परलोक में विश्वास नहीं करते। वर्तमान जीवन की मादकता को उत्तेजित करके उमर खैयाम के "eat, drink and be merry" वाले सिद्धान्त को लेकर चले हैं। परन्तु वास्तव में इस सिद्धान्त का आशय इन्द्रियों की गुलामी कदापि नहीं है जैसा कि साधारण बुद्धि वाले विद्यार्थी को यह कविताएँ पढ़कर भान होता है। उनकी कविता में आदि से अन्त तक जो तड़फन और वेदना है उससे स्पष्ट है कि संसार की दयनीय स्थिति से उत्पन्न दुख को भुलाने के लिये कवि 'हाला' 'प्याला' और 'मधुशाला' का आश्रय लेता है। यौवन की मस्ती और मादकता की उत्तेजना से ही नैराश्य की भावनाओं पर परदा पड़ सकता है।

'बच्चनजी के काव्य में एक विशेष तन्मयता है और उनकी कविता मर्म स्पर्शिनी और प्रभावशालिनी हैं:— साथ ही सुनाने के लिये भगवान ने उन्हें सुरीला कण्ठ भी दिया है, अतः उनका काव्य नवयुवकों के गले का हार बन गया।

बच्चन जी ने स्वतन्त्र प्रेम की भी बहुत सी कविताएं लिखी हैं। वे प्रेम और हाला की मादकता में संसार की वास्तविकता को भुलाना चाहते हैं। 'एकान्त संगीत' और 'निशा निमन्त्रण' में संसार की कठिनाइयों को लोहे के चने कह कर वर्णन किया है:—

"मधुवाला का राग नहीं अब;
अगूरों का बाग नहीं अब,
अब लोहे के चने मिलेंगे
दाँतों को अजमाओ,
आगे हिम्मत करके जाओ।"

कवि संसार की यथार्थता को छिपाकर स्वप्नमयी कल्पना और मधुर शब्दावली के धोखे में नहीं रहना चाहता:—

'सत्य हुआ मुखरित जीवन में
मन सपनों का गीत सुनाओ
मुझे न सपनों में बहलाओ'

आगे चलकर जब आप पुरुषार्थ वादी के रूप में दृष्टि आते हैं तो मानव गौरव की उस स्थिति को पहुँच गये कि मनुष्य का प्रार्थना निमित्त सिर झुकाना तक उनकी सम्मति में उचित नहीं:—

'प्रार्थना मत कर, मत कर
युद्धक्षेत्र में दिखला भुजबल
रह कर अविजित अविचल प्रतिपल
मनुज पराजय के स्मारक हैं मठ मस्जिद गिरजाघर
प्रार्थना मत कर, मत कर।"

पर कहीं २ बच्चन जी भाग्यवाद में भी विश्वास करते परिलक्षित होते हैं। इस संसार में मनुष्य की परवशता को देख कर आप दूसरे लोक के सुख के विषय में शंकित हो उठे हैं। इस लोक के निर्दोषों पर अत्याचार करने वाली नियति उस पार मनुष्य से कैसा व्यवहार करेगी यह भय उन्हें उद्वेलित कर देता है:—

"कुछ न किया था जब उसका उसने पथ में कांटे बोये
उस पार नियति का मानव से व्यवहार न जाने क्या होगा।"

'मधुबाला'

'बंगाल का काल' नामक पुस्तक में आप का दृष्टिकोण नितान्त बदला हुआ प्रतीत होता है। 'मधुशाला' और 'मधुबाला' आदि रचनाओं से यह नितान्त भिन्न है। पर दृष्टिकोण बदलने से इस कविता में प्रभाव शालीनता नहीं आ पाई। 'भुखमरी' का चित्रण अनुभूति शून्य सा है केवल बाह्यचित्र उपस्थितकर देने मात्र से किसी भूखे के आन्तरिक तूफान का आभास नहीं होता जिस से पाठक के हृदय में दया एवं करुणा से द्रवीभूत होने की भावना उत्पन्न हो। परन्तु उनके इस मोड़ की यह इतिश्री नहीं। इसी बंग के वर्णन में कुछ प्रभावशाली वर्णन भी मिलते हैं। शस्य श्यामला बंगभूमि के वैभवपूर्ण प्राचीन चित्र सुन्दर और भावनापूर्ण बन पड़ा है।

"बंगभूमि अब शस्यहीन है।
दीन क्षीण है, चिर मलीन है॥

बच्चन की इस रचना से प्रकट है कि कवि ने वैयक्तिक सीमाओं को लांघ कर सामूहिक जीवन में प्रवेश किया है । "बंगाल का काल" उनके कवि विकास की एक महत्वपूर्ण कड़ी है ।

जीवन के साधारण दृश्यों के प्रति बच्चन में सहज अनुराग है । निशा-निमन्त्रण में ऐसे अनेक संकेत हैं जीवन का एक साधारण दृश्य देखिये:—

"साथी सांझ लगी अब होने ।
मिट्टी से था उन्हें बनाया, फूलों से था उन्हें सजाया ।
खेल घिरौंदे छोड़ पथों पर, चले गये हैं बच्चे सोने ॥

अपनी मानवीय दुर्बलताओं के प्रति कवि लज्जित नहीं है ' वह अपनी पराजय को भुलाने के लिए विलास और उन्माद चाहता है—इस दौर्बल्य को दिखाकर वह जन सहानुभूति जीतना चाहता है। दुर्बलता को छिपाकर, 'साधु बन कर' वह साधुवाद लेना नहीं चाहता—जैसा कि उनकी इस पंक्ति से प्रकट है:—

"मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधु समझता"

जीवन के क्षयी रोमान्स से व्यथित कवि हृदय रुदन में निमग्न है जैसे कवि का गान हृदय के रुदन का ही दूसरा नाम हो:—

"मैं रोया इसको तुम कहते हो गाना !
मैं फूट पड़ा तुम कहते छन्द बनाना !"

मानव के जीवन में यौवन और यौवन में उन्माद को मानता हुआ भी कवि उन्माद में अवसाद के दर्शन करता है—तभी तो कहा है:—

मैं यौवन का उन्माद लिए फिरता हूं ।
उनमादों में अवसाद लिए फिरता हूं ।"

'आत्म-परिचय'

यद्यपि 'बच्चन' ने हाला का वर्णन आलंकारिक रूप से किया है, तथापि उसमें कहीं कहीं वास्तविक हाला का स्तुति पाठ सा सुनाई पड़ता है । विषय कैसा भी हो इस में संशय नहीं कि उन्होंने इसकी अभिव्यक्ति अति सुन्दर ढङ्ग से की है । संसार के दुखों को; अवसादों और निराशाओं के क्षोभ और हृदय की वेदना को भुलाने का एक ही उपाय बच्चनजी की दृष्टि में सुलभ है वह है हालाकी प्रभावशाली मादकता । इसी मादकता का गुणगान उनके काव्य की आत्मा है ।

भाषा, अलकार ग्रोर छन्द: –

प्रसाद गुण बच्चनजी की शैली की सर्व श्रेष्ठ विशेषता है। उनकी शैली अभिव्यक्ति पूर्ण है, उसे प्रवाहमयी ग्रौर प्रभावोत्पादक बनाने के लिये उन्होंने उर्दू शब्दों और मुहावरों का समावेश भी निसंकोच किया है। जीवन की भाषा को ही काव्य की भाषा बनाने के यह पक्षपाती है ग्रौर इस प्रवृत्ति के कारण, 'बच्चन' समुदाय भाषाकी सच्ची उन्नति दिखला रहा है। उनका विचार है प्रसाद, पन्त, निराला की भांति संस्कृत पदावली की ग्रत्यधिक ग्राराधना से भाषा की ग्रभिव्यंजना शक्ति कुंठित हो जायगी, उसमें न प्रसाद गुण ग्रा सकेगा न प्रवाह और हिन्दी भाषा के नैसर्गिक विकास की संभावना ही न रहेगी। ग्रंग्रेजी के विद्वान होने के नाते बच्चनजी ने अपने काव्य में कहीं २ ग्रंग्रेजी भाषा के शब्दों का भी अनुवाद सहित प्रयोग किया है जैसे:—

''गोड हैल्प्स दोज, हू हैल्प दैम्सैल्वज,
राम सहायक उसके होते, जो अपने हैं स्वयं, सहायक।

क्रान्तिवादी कवियों में छन्द, लय ग्रादि के सम्बन्ध में भी स्वच्छन्दता लक्षित होती है। उन्हें व्यर्थ की रोक टोक और रूढ़ि पसन्द नहीं–नए रूप विधान से प्रेम है। सौन्दर्य्य की खोज में ये कवि छन्द, लय शैली ग्रादि के नवीन प्रयोग कर रहे हैं—इस भाग के कवियों में बच्चनजी ग्रग्रणी हैं–उनके मुक्त लय के ग्राश्रित तथा ग्राधारभूत है ग्रौर इनके नये प्रयोग ग्रत्यन्त सफल हुए हैं। ये कवि गण नवीन छन्दों की सर्जना करके इस क्षेत्र में विविधता ग्रौर अनेक रूपता ला रहे हैं।

'बच्चनजी' मधुसाहित्य के प्रतिनिधि कवि हैं। उन्होंने मधु बाला 'मधु कलश', 'निशा निमन्त्रण', 'एकान्त सङ्गीत' ग्रौर आकुल अन्तर' नामक चार पुस्तकें लिखी। उनके काव्य में एक विशेष तन्मयता होने के कारण ग्रत्यन्त लोकप्रिय हो गया। 'बच्चन' के ग्रनुकरण पर मदशाला', 'टी शाला' ग्रादि कई रचनाएँ निकली पर उनमें 'बच्चनजी' की मधुशाला की तरंग कहाँ सम्भव थी।

अन्य कवि गण—आधुनिक युग

नाम	जन्मतिथि	रचनाएं	विशेष विवरण
पं० रामचरित उपाध्याय	स. १६२६	'राम चरित चिन्तामणि' प्रबंध काव्य और फुटकर कविताएँ।	आप संस्कृत के अच्छे पण्डित थे और पुराने ढंग की हिन्दी कविता की ओर ही इनकी रुचि थी।
गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'	—	'त्रिशूल संग्रह, प्रेम पचीसी, कुसुमांजलि और कृषक क्रन्दन।	आप पुरानी और नई दोनों ढंग की कविता लिखते थे। आपके प्रभाव से कानपुर में अब भी [illegible] भाषा का प्रचलन है।
ला० भगवानदीन	सं. १६२३	वीर पंच रत्न, वीर सत्राणी और वीर बालक और कई ग्रन्थों की टीकाएँ 'पराग संग्रह'	पुरानी परिपाटी की कविता करने वाले आधुनिक कवियों में प्रमुख थे। इन्होंने संस्कृत हिन्दी दोनों छन्दों में खड़ी बोली में कविता की।
रूपनारायण 'पांडेय'	—	फुटकर कविताएं, प्रशस्तियां और संस्कृत नाटकों के अनुवाद।	आप भावुकता और सरसता के कारण ध्यान आकृष्ट करते हैं—आपने 'शिव भारत कविता में भारत के भोगोलिक रूप को शिव की मूर्ती के समान ठहराया है।
सत्यनारायण 'कविरत्न'	सं. १६३६	'धाराधर धावन'	इनकी कविता ब्रज भाषा के प्राचीन कवियों का स्मरण दिलाती थी और कहीं २ उसमें दार्शनिकता का पुट भी पाया जाता है। यह अपने प्रकृति वर्णन के लिये प्रसिद्ध हैं।
राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'	सं. १६३०	गर्भ रंडा रहस्य 'प्रबन्ध काव्य' और फुटकर कविताएँ।	आपकी कविताएँ भी पुरानी परिपाटी की होती थीं और यह समस्या पूर्ति बड़ी सुन्दर और सटीक करते थे।
नाथूराम शंकर शर्मा	सं. १६१६	मिलन, पथिक	आपने प्रेम का जीवन तत्व के रूप में वर्णन किया है।
पं० रामनरेश त्रिपाठी	—	कविता कौमुदी, ५ भागों में	
पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी	--	'काव्य मंजूषा' और 'सुमन' कविता संग्रह और संस्कृत ग्रन्थ कुमार संभव का अनुवाद।	आप पद्य रचना की एक प्रणाली के प्रवर्त्तक थे। खड़ी बोली के पद्य विधान पर भी आपका पूरा २ असर हुआ।

पं० गिरधर शर्मा नवरत्न झालरापाटन (कोटा) के	फुटकर कविताएं अमर सूक्ति और गिरिधर सप्तशती	आपने मालवा और राजपूताने में हिंदी प्रचार का अच्छा काम किया है। आप अब भी अपने बन्द नेत्रों से अपनी सुपुत्री श्री शकुंतला 'रेणु' के सहारे साहित्य सेवा कर रहे हैं।

ब्रजभाषा के कवि

पं० लोचनप्रसाद पांडेय	सं० १९६२ से कविताएं प्रकाशित होने लगीं।	'मृगी दुख मोचन'
वियोगीहरि जी	प्रेम शतक, प्रेम पथिक, वीर सतसई, प्रेमांजलि चरखा स्तोत्र और असहयोग वाणी	ब्रजभाषा और ब्रजभूमि के अनन्य उपासक हैं और उन्हें मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला
दुलारेलाल भार्गव	दुलारे दोहावली	बिहारी के ढंग पर लिखे हुए रसपूर्ण और उक्तिवैचित्र्य से चमत्कृत दोहे होते हैं। इन्हें देव पुरस्कार मिला।
रामनाथ ज्योतिषी	"रामचन्द्रोदय"	देव पुरस्कार
केसरीसिंह बारहट मेवाड़ के	सं० १९६२ में प्रकाशित प्रताप चरित्र।	वीर रस का उत्कृष्ट काव्य
उमाशंकर वाजपेयी उमेश	'ब्रजभारती'	—

खड़ीबोली काव्यधारा

ठाकुर गोपालशरण सिंह	सं० १९७१ से रचना आरम्भ माधवी, मानवी, संचिता, ज्योतिष्मती और कादम्बिनी	—
अनूप शर्मा	सुजाता, खंडकाव्य में कुणालका चरित्र सिद्धार्थ महाकाव्य	
जगदम्बाप्रसाद 'हितैषी'	सुमनांजलि, कल्लोलिनी; नवोदिता	संग्रह हैं

श्यामनारायण पाण्डेय	'त्रेता के दो वीर' माधव, रिमझिम, हल्दीघाटी (महा-काव्य)	लक्ष्मण मेघनाद युद्धका वर्णन है,
पुरोहित प्रताप नारायण	नल नरेश (महा-काव्य) मन के मीत, नवनिकुञ्ज, काव्य कानन ।	फुटकर कविता संग्रह व्रजभाषा कविता संग्रह
तुलसीराम शर्मा 'दिनेश'	पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ।	चरित संबंधी भक्ति काव्य ग्रंथ लिखा
सियाराम शरण गुप्त	मौर्य विजय (खंड काव्य) दूर्वादल, विषाद; आर्द्रा, पाथेय, मृणमयी, आत्मोत्सर्ग, अनाथ बापू ।	—
गुरुभक्तसिंह 'भक्त'	सरससुमन, कुसुम कुंज, वंशीध्वनि, और बनश्री संग्रह नूरजहां, विक्रमा-दित्य ।	प्रकृतिवर्णन और मुहावरों के लिए प्रसिद्ध हैं ।
बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	कुंकुम, रश्मिरेखा क्वासि ।	उनकी श्रृङ्गार परक रचनाओं में एक सच्चे रोमांटिक कवि के दर्शन होते हैं ।
उदयशंकर भट्ट	तक्षशिला और मानसी काव्य राधा विसर्जन, संग्रह ।	इनकी रचनाओं में जीवन की गहन अनुभूति, दार्शनिकता, वेदना, विषमता आदि का चित्रण मिलता है ।
सोहनलाल द्विवेदी	—	गांधीवादी राष्ट्रीय कवियों में आपका नाम उल्लेखनीय है ।

इन कवियों की रचनाओं में सांस्कृतिक चेतना का बहुत बड़ा हाथ रहा है। उनमें भाषा का परिष्कृत रूप मिलता है जो आधुनिक काव्य की बहुमूल्य देन है ।

हिन्दी की कोकिलाएँ	.... गिरिजादत्त शुक्ल
हिन्दी के प्रमुख साहित्यकार	.... शिवनारायण श्रीवास्तव
हिन्दी के प्रतिनिधि कवि	.... प्रेमनारायक टण्डन
आधुनिक काव्य धारा	.... केशरी नारायण शुक्ल
आधुनिक काव्य धारा का सांस्कृतिक स्रोत	.... कृष्ण शंकर शुक्ल
हिन्दी काव्य धारा	.... रमा शंकर शुक्ल
हिन्दी काव्य धारा	.... सांस्कृतायण
सुकवि सरोज	... हजारी प्रसाद द्विवेदी
हिन्दी के अर्वाचीन रत्न	.... विमलकुमार जैन
हिन्दी साहित्य के अमर रत्न	.... गोपालदास सारस्वत
नवीन हिन्दी कवियों की काव्य साधना	.... राजेन्द्रसिंह गौड़
हमारे कवि	.... ,, ,,
हिन्दी कवि चर्चा	.... चन्द्रवली पाण्डे
गुप्तजी की काव्य धारा	.... गिरिजादत्त शुक्ल
काव्यानुशीलन	.... प्रो० सुरेशचन्द्र गुप्त
आधुनिक हिन्दी काव्य	....
हमारे साहित्य निर्माता	.... शान्ति प्रसाद द्विवेदी
हिन्दी निबन्धकार	.... जयनाथ 'नलिन'

हमारी साहित्य कवि भूतियाँ:—

	.... पं० मोहनवल्लभ पन्त
हमारे अर्वाचीन रत्न	.... विमलकुमार जैन
प्रसादजी की कला	.... बा० गुलाबराय
प्रसाद की काव्य साधना	.... रामनाथ 'सुमन'
केशव की काव्यकला	.... श्री कृष्ण शुक्ल
गुप्तजी की कला	.... डा० सत्येन्द्र

पञ्चम अध्याय

काव्य और उसके रूप

मानव जीवन में जैसे प्रेम अत्यावश्यक व अभिन्न वस्तु है किन्तु उसकी परिभाषा नहीं की जा सकती, इसी प्रकार कविता का भी विशेष महत्व है, पर इसकी शाब्दिक व्याख्या नहीं हो सकती। कविता हमारे जीवन के अन्तर्गत छिपी रहने वाली वह अनन्त ज्योति है, जिसका आलोक विकृत को सुन्दर, नीरस को सरस एवं निर्जीव को सजीव बना देता है।

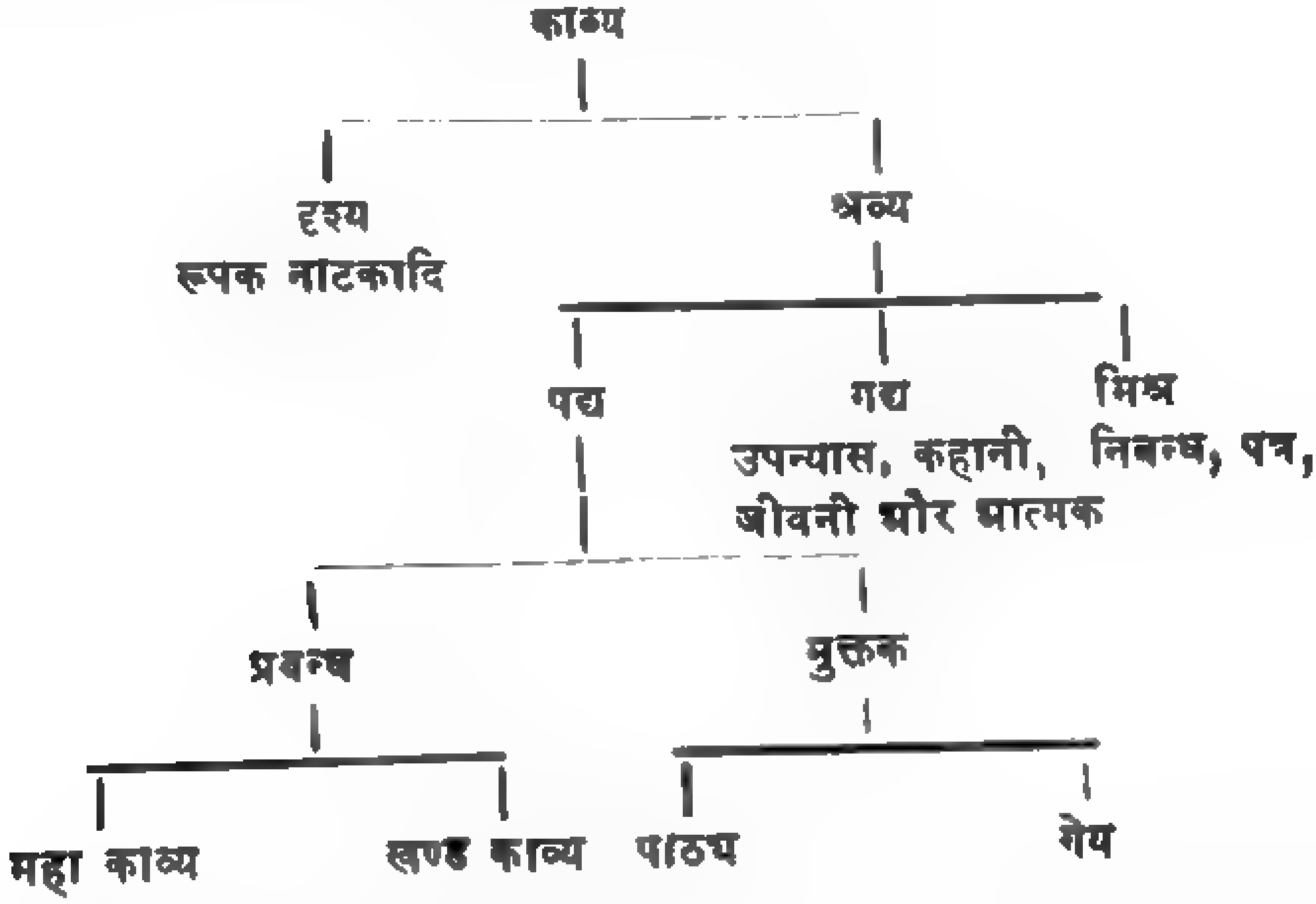
काव्य स्रष्टा साधारण मनुष्य की अपेक्षा कुछ अधिक भावुक और विचार शील होता है किन्तु वह अपने तक सीमित न रखकर दूसरों तक अपने हृदय का रस पहुँचाने और अपनी ही तरह उन्हें प्रभावित करने को उत्सुक रहता है। इस प्रकार काव्य के दो पक्ष हो जाते हैं भावपक्ष और कला पक्ष। काव्य में भव्यता, विराट कल्पना और संवेदना का आभास पाया जाता है।

'कविता संसार का प्रथम व अन्तिम ज्ञान है। वेदना इसको प्रेरणा देने वाली शक्ति है। संगीत का कविता से विशेष सम्बन्ध है इसी कारण कविता से संगीत का विशेष सम्बन्ध है।

भारतीय विद्वानों ने काव्य की विभिन्न परिभाषाएं दी हैं जिनसे काव्य का आत्मा पर प्रकाश पड़ता है किसी ने 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' माना है, किसी ने 'रमणीयार्थः प्रतिपादक शब्दः काव्यम्'। कोई माधुर्य और ओज आदि गुणों के आधार पर रचना की शैली को काव्य की आत्मा मानते हैं रीतिरात्मा काव्यम् एवं अन्य ध्वनि अथवा अलंकार को महत्व देते हैं। नाट्य शास्त्र के आचार्य भरत मुनि ने रस को काव्य की आत्मा माना था। परन्तु उन सबका समन्वयात्मक सार साहित्य महोदधि गुलाबरायजी के अनुसार यह है कि काव्य संसार के प्रति कवि की भाव प्रधान मानसिक प्रतिक्रियाओं की श्रेय को प्रेम रूप देने वाली अभिव्यक्ति है।' काव्य रमण को लेकर चलने वाला जनन को लेकर नहीं। काव्य का सम्बन्ध हृदय से है। मस्तिष्क से नहीं।

काव्य के भेदः—भारतीय परम्परा के अनुसार काव्य दो प्रकार का होता है दृश्य और श्रव्य। दृश्य के अन्तर्गत रूपक और नाटक आदि आते हैं, एवं श्रव्य के तीन भेद हैः— गद्य, पद्य और मिश्र। इसमें गद्य के अन्तर्गत

उपन्यास, कहानी, जीवनी निबन्ध और पत्र आदि हैं तथा पद्य के फिर मुक्तक दो भेद किये गये हैं। प्रबन्ध में महाकाव्य और खण्ड काव्य एवं मुक्तक के अन्तर्गत पाठ्य व प्रगीत काव्य आते हैं। जैसा कि निम्न चित्र से स्पष्ट हो जायेगा।



मिश्र काव्य में पद्य और गद्य दोनों का समन्वय होता है (?) चम्पू के नाम से साहित्य जगत में विख्यात है।

पद्य साहित्य

भारतीय समीक्षा पद्धति में श्रव्य काव्य के दो भेद किये गये हैं—एक प्रबन्ध और दूसरा मुक्तक। साधारणत: सानुबंध काव्य रचना को प्रबंध कहते हैं, जहां कथाप्रवाह बंधी हुई सीमा के अंतर्गत प्रवाहित होता है। प्रबंध में छंद एक दूसरे से कथानक की शृङ्खला में बंधे रहते हैं। इस के विपरीत मुक्तक काव्य में न कथानक का बंध होता है न छंदों की शृङ्खला मुक्तक छंद पारस्परिक बंधन से मुक्त होते हुए भी स्वत: में पूर्ण होते हैं—कोई छंद एक दूसरे की अपेक्षा नहीं करता। रामायण और महाभारत प्रबंध काव्य हैं एवं सूरसागर तथा बिहारी सतसई आदि मुक्तक।

प्रबंध काव्य के भी दो भेद किये गये हैं:—

(१) महाकाव्य और (२) खण्ड काव्य। जीवन की अनेकरूपता को लिए हुए जो बड़ा कथानक काव्यरूप में रचा जाता है उसे महाकाव्य कहते हैं; तथा जीवन के किसी एक रूप को लेकर घटना विशेष पर की हुई काव्य रचना को खण्ड काव्य। महाकाव्य का क्षेत्र विस्तृत होता है, एवं खण्ड काव्य का संकुचित। जायसी का पद्मावत और तुलसी का 'मानस' महाकाव्य हैं और जटमल की 'गोरा बादल की कथा' एवं तुलसी द्वारा रचित 'जानकी मंगल', 'पार्वती मंगल' खण्ड काव्य हैं।

(१) महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षण:—भारतीय विद्वानों द्वारा निर्धारित महाकाव्य के निम्नलिखित लक्षण बताये गए हैं, जो पाश्चात्य मान से कुछ भिन्न हैं:—

१. महाकाव्य सर्गों में बंधा हुआ होता है और उसमें कम से कम आठ सर्ग होने चाहिये।
२. महाकाव्य में कोई इतिहास प्रसिद्ध धीरोदात्त नायक होता है जो दैवीगुणों से समन्वित अथवा राजा महाराजा हो।
३. महाकाव्य का कथानक इतिहास प्रसिद्ध विशद वृतान्त वाला हो।
४. शृङ्गार, वीर, और शान्त रसों में से किसी एक की प्रधानता हो अन्य रस अङ्गी रूप में प्रयुक्त होने चाहिये।
५ इसमें मंगलाचरण और वस्तु निर्देश हो।
६ मुख्यपात्र के जीवन की पूर्ण झांकी हो।

७. इसमें सन्ध्या, प्रातः, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, आखेट वन, पर्वत, समुद्र संग्राम, यात्रा और अभ्युदय आदि का सुन्दर वर्णन रहता है।

८. भाषा सुन्दर, अलंकृत और परिमार्जित एवं प्रवाह पूर्ण हो, शैली-सौष्ठव विद्यमान रहे तथा रस का परिपाक हो।

९. एक सर्ग में एक ही छन्द रहता है और अन्त में वह बदल जाता है पर यह नियम शिथिल भी हो सकता है। जैसे केशव की रामचन्द्रिका में। प्रवाह निमित्त छन्द की एकता वांछनीय है। एक सर्ग के अन्त में अगले सर्ग की सूचना रहती है।

उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर गवेषण करने से हमारे हिन्दी साहित्य के इतिहास में अनेक महाकाव्य मिलेंगे।

हिन्दी महाकाव्यों से पूर्व संस्कृत में वाल्मीकि रामायण शिशुपाल वध, किरातार्जुनीय और रघुवंश आदि रचे जा चुके थे इसके पश्चात् भट्टि काव्य महाकवि भट्टी द्वारा लिखा गया जिसका विषय रावण वध है।

हिन्दी साहित्य के विभिन्न युगों पर दृष्टिपात करने से विदित होगा कि वीर गाथा काल से वर्तमान युग तक कितने महाकाव्य लिखे जा चुके हैं।

वीर गाथा काल में 'पृथ्वीराज रासो' महाकवि चन्दबरदाई द्वारा रचा गया। यद्यपि इसकी प्रामाणिता पर विद्वानों का मतभेद है, तथापि इसे हिन्दी में प्रथम महाकाव्य का श्रेय प्राप्त है।

भक्ति काल में प्रेम मार्गी शाखा के प्रमुख कवि 'जायसी' ने 'पद्मावत' लिखा और सगुण भक्ति धारा में महाकवि तुलसीदास का 'रामचरित मानस' तथा केशव की रामचन्द्रिका लिखी गई रीति काल में कविता जनता की वस्तु न रह कर राज्याश्रय में पहुँच गई और कोई राजा ऐसा न हुआ जिस पर प्रबन्ध काव्य लिखा जा सकता। कवि गण शृङ्गारिक विलासिता में मस्त थे और सस्ती वाह वाही चाहते थे। यद्यपि मतिराम और देव आदि ऐसी प्रवृति के व्यक्ति नहीं थे और भूषण भी उस काल के अपवाद स्वरूप कवि थे परन्तु प्रबन्ध रचना न कर पाये।

आधुनिक काल के प्रारम्भ में भारतेन्दु और उनके अनुयायियों ने मुक्तक को ही अपनाया। द्विवेदी युग में राष्ट्रीयता के उत्थान के कारण प्राचीन आदर्शों की ओर कवि का ध्यान गया और गुप्तजी की 'भारत भारती' ने सांस्कृतिक

जागरण की भेरी बजाई। भक्ति भाव को बुद्धिवाद के अनुकूल बनाकर गुप्तजी और हरिश्रौधजी ने राम तथा कृष्ण के चरित्र 'साकेत' और 'प्रिय प्रवास' में अंकित किये।

'प्रिय प्रवास' में करुणा, विप्रलंभ शृङ्गार और वात्सलय के वियोग पक्ष का प्राधान्य है। भगवान कृष्ण जाति के लोक प्रिय नेता के रूप में आते हैं। प्राचीन कवियों ने श्रीकृष्ण के विलासी और लीला मयी रूप को ही देखा था, किन्तु उपाध्यायजी ने उनके कर्त्तव्य परायण और लोक रक्षक रूप को सामने रक्खा, राधा के चरित्र को भी श्रीकृष्ण के अनुरूप लोक सेवक रूप ही प्रदान किया। उनका वैयक्तिक प्रेम विश्व प्रेम में परिणत होता हुआ दिखाया गया है:—

"पाई जातीं विविध जितनी वस्तु हैं जो सबों में।
मैं प्यारे को अमित रङ्ग औ, रूप में देखती हूं॥
तो मैं कैसे न उन सब को प्यार जी से करूंगी।
यों है मेरे हृदय तल में विश्व का प्रेम जागा॥"

साकेत में गुप्तजी ने राम काव्य की परम्परा को पुनंजीवन प्रदान किया है। साकेत में राम चरित्र के सहारे उर्मिला और लक्ष्मण को प्रधानता दी गई है। रवि बाबू और महावीर प्रसाद द्विवेदी ने प्राचीन कवियों की उर्मिला विषयक उपेक्षा की ओर ध्यान आकर्षित किया। इसी कमी को गुप्तजी ने साकेत में पूर्ण किया। सीताजी को बनवास में भी राम का सहवास प्राप्त था किन्तु बेचारी उर्मिला राजमहल में रह कर भी पति प्रेम से वंचित रही इसलिये सीता कहती है:—

"आज भाग्य है जो मेरा,
वह भी न हुआ हां तेरा।'

बेचारी उर्मिला पति की भी उपेक्षिता रही और कवियों की भी। गुप्तजी ने कथा की परम्परा को स्थिर रखते हुए भी कुछ नई उद्भावनायें की हैं, जिनसे काव्य का सौष्ठव अधिक बढ़ जाता है। तुलसीदासजी ने चित्रकूट स्थित कैकयी के सम्बन्ध में इतना कहकर सन्तोष किया है—

'कुटिल रानी पछितानी अघाई।

किन्तु गुप्तजी ने इसके पश्चाताप को पूर्ण रूपेण मुखरित कर दिया है:—

"युग युग तक चलती रहे कठोर कहानी,
रघुकुल में भी थी एक अभागी रानी।

पतित को उठाना ही सच्ची वैष्णवी भावना है। मंथरा चित्रण में भी गुप्तजी ने बड़ी मनोवैज्ञानिकता से काम लिया है। इसी प्रकार अन्य स्थलों पर गुप्तजी की उद्भावनाएँ कथानक को आधुनिकता प्रदान करने और काव्य सौष्ठव बढ़ाने में समर्थ हुई हैं।

आधुनिक युग की वृहत्त्रयी में तृतीय महाकाव्य प्रसादजी की कामायनी है। कामायनी में जायसी के पद्मावत जैसी रूपक और कथानक के सम्मिश्रण की प्रवृति है। वास्तव में वह कथात्मक ग्रन्थ की अपेक्षा विचारात्मक अधिक है फिर भी उसमें कथा निर्वाह के साथ २ विचारों का सुन्दर समन्वय हुआ है और इसे गोस्वामीजी के राम चरित मानस की समकक्षता प्रदान करने का साहस तक किया जाता है। कुछ विद्वान तो कामायनी को "आधुनिक युग की रामायण" कहने का दावा रखते हैं।

आधुनिक युग के इन तीनों ग्रन्थों को यद्यपि समालोचक गण महाकाव्य के पूरे लक्षणों से युक्त पाने में सन्देह करते हैं, और अनेक प्रकार के आक्षेप उपस्थित करते हैं, परन्तु साधारण दृष्टि से देखने पर तीनों ही ग्रन्थ महाकाव्य के लक्षणों से परिपूर्ण होते हुए हिन्दी साहित्य का गौरव बढ़ा रहे हैं।

इनके पश्चात् 'साकेत सन्त' 'कुरु क्षेत्र' और 'वैदेही वनवास' आदि साधारण काव्य लिखे गये जिन्हें महाकाव्य की श्रेणी में लिया जाता है।

इस युग के महाकाव्यों में गांधी वादी प्रभाव है। आजकल के महाकाव्यों के नायक भी लोक प्रतिष्ठा प्राप्त महापुरुष हैं, किन्तु उनका अति मानवी रूप विलीन हो गया है। इनमें वर्तमान बुद्धिवाद की प्रधानता है। प्रकथन के साथ साथ इन महाकाव्यों में पर्याप्त तत्व भी है।

(२) **खण्ड काव्यः**—खण्ड काव्य में जीवन की एक रूपता के कारण कहानी और एकाङ्की की भाँति एक ही प्रधान घटना के लिये सामग्री जुटाई जाती है। साहित्य दर्पणकार ने खंड काव्य की व्याख्या इस प्रकार की है:—

"खण्ड काव्यं भवेत्काव्यस्यैक देशानुसारिच"

अर्थात् खण्ड—काव्य काव्य के एक देश या अंश का—आजकल की भाषा में एक प्रधान घटना का—अनुसरण करता है, जैसे कालिदास का मेघदूत।

हिन्दी में (१) 'सुदामा चरित' (२) 'जयद्रथ वध' (३) 'पंचवटी' (४)

'अनघ' आदि खण्ड, काव्य के उदाहरण हैं। इनके अतिरिक्त तुलसीदास के (५) 'जानकी मङ्गल' (६) 'पार्वती मङ्गल' और (७) 'रामलला नहछू' भक्ति काल में लिखे गये, जिनमें से (८) रत्नाकर का 'गङ्गावतरण (९) 'उद्धव शतक' (१०) नन्द दास की 'रास पंचाध्यायी' (११) भ्रमर गीत और (१२) हरिचन्द्र ऐतिहासिक खण्ड काव्यों में उल्लेखनीय हैं : एवं नरेश त्रिपाठी के (१३) पथिक (१४) मिलन' (१५) 'स्वप्न' और सियारामशरण गुप्त का (१६) उन्मुक्त कवि कल्पना प्रसूत आख्यान हैं।

श्री विश्वनारायण मिश्र ने महाकाव्य और खण्ड काव्य के बीच की एक विधा एकार्थ काव्य के नाम से मानी है और वर्तमान युग के चारों महाकाव्यों—'प्रिय प्रवास' 'साकेत' 'कामायनी' तथा 'वैदेही वनवास' को इसके अन्तर्गत रखा है। पर भावों की उदात्तता वर्णनों की विशालता और रस संचार में यह काव्य अपना विशेष स्थान रखते हैं. अतः इन्हें महा काव्य का पद न देना हमारे सर्वोपरि विद्वान बा. गुलाबराय के मतानुसार भी इस युग के प्रति अन्याय है।

(ख) मुक्तक काव्यः—

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मुक्तक काव्य उसे कहते हैं जो विना किसी प्रसंग के अपना अर्थ व्यक्त करने में स्वतः समर्थ हो। मुक्तक काव्य की अपनी अलग विशेषताएँ हैं उसमें कथा का बन्धन नहीं रहता, इसीलिए इसके छन्द पारस्परिक बन्धन से मुक्त रहते हैं। उनमें क्रमन्यास हो सकता है पर वे एक दूसरे की अपेक्षा नही रखते। कथा का अभाव होने के कारण मुक्तक काव्य में जीवन की व्यापकता तथा अनेक रूपता देखने को नहीं मिलती, उसमें जीवन के भाव चित्र ही मिलते हैं।

मुक्तक काव्य प्रधानतः भावात्मक होता है। उसमें कवि की कल्पना के लिए कथा का आधार नहीं रहता, कवि कल्पना को पूर्ण स्वावलम्बी बन कर भावों के वायुमण्डल में उड़ना पड़ता है। मुक्तक काव्य में प्रबन्ध काव्य की भांति प्रवाह नहीं होता, वह स्थिर होता है। इस रचना का सरस होना स्वाभाविक है। मुक्तक रचना शिक्षण, नीति कथन, अथवा शृङ्गार रस की व्यञ्जना निमित्त होती है।

मुक्तक काव्य के दो रूप पाये जाते हैं। (१) पाठ्य और (२) गेय। (१) पाठ्य मुक्तक प्रायः सूक्तियों के रूप में आते हैं। ये अधिकतर नीति विषयक, शृङ्गार विषयक अथवा वीरता विषयक होते हैं। नीति विषयक मुक्तकों में सर्वाधिक विषय की प्रधानता रहती है। गोस्वामी जी की दोहावली, कबीर और वृन्द आदि के दोहे तथा भक्ति और नीति के पद पाठ्य मुक्तक हैं। गिरधर की कुण्डलियां और दीनदयाल गिरि की अन्योक्तियां भी इसी कोटि में आती हैं। हाल सतसती, बिहारी सतसई और दुलारे दोहावली शृंगार परक मुक्तकों के उदाहरण हैं। यद्यपि इनमें और भी विषय सम्मिलित हैं। वियोगी हरि की 'वीर सतसई' में वीर रस के दोहे हैं।

इनके अतिरिक्त बहुत सी कविताएँ जो स्फुट रूप से निकलती हैं मुक्तक की ही कोटि में आती हैं।

(२) गेय मुक्तकः—

प्रगीति काव्य अथवा गीति काव्य गेय मुक्तक काव्य है। इसे अंग्रेजी में लिरिक कहते हैं। गेय मुक्तक में निजी भावातिरेक की मात्रा अधिक रहती है, संगीत तो प्रगीति काव्य के नाप से लगा हुआ ही है। भावातिरेक के लिए

बहाव चाहिऐ । वह साधारण पद्य में रुक सा जाता है, किन्तु गीत लहरी में तरंगित होकर बह उठता है। संगीत यदि उसका शरीर है तो निजी भावातिरेक आत्मा है। भावातिरेक सुख और दुख दोनों का ही हो सकता है। दुख और सुख की गीतिमय अभिव्यक्ति जीवन को एक प्रकार का संतुलन प्रदान करती है।

गीति द्वारा हर्ष के विस्तार और आत्मा के उल्लास के लिये प्रवहमानता प्राप्त हो जाती है एवं दुख के गीत अपनी अभिव्यक्ति में प्रतिध्वनित सहानुभूति का काम देते हैं।

प्रगीत काव्य में कवि जो कुछ कहता है अपने निजी दृष्टिकोण से कहता है। उसमें निजी पन के साथ रागात्मकता रहती है। यह रागात्मकता आत्म निवेदन के रूप में प्रकट होती है। रागात्मकता में तीव्रता बनाए रखने के लिये गीत का छोटा होना आवश्यक है। आकार की इस संक्षिप्ता के साथ भाव की एकता और अन्विति लगी रहती है। गीति काव्य में विविधता रहती है। पर वह प्रायः एक ही केन्द्रीय भाव की पुष्टि के लिये होती है।

यह काव्य अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक अन्तः प्रेरित होता है। और इसी कारण इसमें कला होते हुए भी कृत्रिमता का अभाव रहता है।

गीत लोक गीत भी होते हैं, और साहित्यिक भी लोक गीतों के निर्माता प्राय: अपना नाम अव्यक्त रखते हैं। वे लोक भावना में अपने भाव मिला लेते हैं। लोक गीतों में होता तो निजी पन ही है। किन्तु उनमें साधारणीकरण और सामान्यता अधिक रहती है; तभी वे वैयक्तिक रस की अपेक्षा जन रस उत्पन्न कर सकते हैं उन गीतों में प्रत्येक गायक और श्रोता का तादात्म्य हो जाता है।

लोक गीतों का सम्बन्ध प्राय: अवसर विशेष, होली, विवाह, और जन्मोत्सव आदि से रहता है। लोक गीतों में हमारी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का आभास मिलता है। और इनमें हमें अपने समाज के प्राचीन गौरव और आदर्श की भावनाएं प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती हैं, लोक गीत हमारे समाज की अमूल्य निधि है।

श्री देवन्द्र सत्यार्थी ने गाँवों में घूम घूम कर लोक गीतों की खोज की और उन्हें विभिन्न पुस्तकों में संचित करके हमारे सामने प्रस्तुत किया 'धीरे बहो गङ्गा' 'धरती गाती' है और 'बेला फूले आधी रात' उनकी इस

विषय की प्रमुख कृतियां हैं। इसी प्रकार मेघाणीजी और राजस्थान के प्रमुख साहित्यकार श्री नन्दा स्वामी और श्री मुरलीधर व्यास भी इसी दिशा में अथक परिश्रम कर रहे हैं। इन्होंने भी हजारों की संख्या में लोक गीत संचित कर लिये और कुछ पुस्तक रूप में पाठकों को उपलब्ध भी हो चुके हैं।

लोक गीत भी जातीय साहित्य से सामग्री ग्रहण करते रहते हैं। रामायण और महाभारत से सम्बन्धित अनेकों लोकगीत हैं। लोक साहित्य और शिक्षित लोगों के साहित्य में आदान प्रदान होता रहता है। जायसी के पद्मावत की कथा का पूर्वार्ध लोक साहित्य से ही आया है। वीरगाथा काव्य का मुक्तक साहित्य भी लोक साहित्य मे मिलता जुलता है ।

साहित्यिक गीतों के दो मुख्य भेद हैं कुछ शुद्ध संवेदनात्मक होते हैं और कुछ कथा मिश्रित। कबीर तथा मीरा के गीत और तुलसी के विनय के पद शुद्ध संवेदनात्मक हैं, जिनमें कवि स्वयं निवेदन करता।

सूर के लीला सम्बन्धी पद कथाश्रित हैं, उनमें भी कवि निवेदन करता हैं किन्तु किसी दूसरे पात्र द्वारा।

गीति काव्य के और भी अनेक रूप हैं, क्योंकि मानव हृदयोल्लास सीमा बद्ध नहीं किया जा सकता उसका भावोल्लास नाना रूपों में प्रकट होता है।

अंग्रेजी लिरिक (Lyric) सोनेट चतुर्दश पदी ओज सम्बोधन गीत, एलेजी (शोकगीत) सेटायर, (व्यंग्य गीत) रिफलेक्टिव, (विचारात्मक) गीत और डायडेक्ट, (उपदेशात्मक) गीत विधाओं के अनुरूप हिन्दी में अनेकों गीत विद्यमान हैं।

प्रसाद जी की 'किरण' 'वसन्त' और 'दीप' निराला जी की 'भिक्षुक' 'छाया' और 'बापू के प्रति' आदि शीर्षक कविताएं सम्बोधन गीत के सुन्दर उदाहरण हैं। हिन्दी में शोक गीतों की कमी है पर कुछ अवश्य हैं।

अंग्रेजी की 'ग्रेज एलीज' को गुप्तजी ने 'ग्रामीण विलाप' नाम से अनुवाद किया और निराला जी ने अपनी पुत्री के निधन पर 'सरोज स्मृति' शीर्षक शोक गीत लिखा। मिश्र बन्धुओं ने भी 'हा काशीप्रसाद' कविता लिखी थी।

व्यंग गीत उपालम्भों के रूप में सूर में बहुत मिलते हैं। भारतेन्दु काल में भी कुछ ऐसे गीत लिखे गए—जैसे भारतेन्दु का 'देखी तुम्हारी काशी'। प्रसाद और पन्त आदि के कुछ गीत जैसे गुंजन के विचारात्मक गीतों की कोटि

में आते हैं। उपदेशात्मक गीतों की हिन्दी साहित्य में कमी नहीं। सूर और तुलसी में इनका बाहुल्य है।

श्री सुमित्रानन्दन पन्त के एक सम्बोधन गीत का कुछ अंश दिया जाता है:—

अन्धकार के प्रति

"अब न अगोचर रहो सुजान ।
निशानाथ के प्रिय वर सहचर ।
अन्धकार स्वप्नों के यान ।
किस के पद की छाया हो तुम ?
किसका करते हो अभिमान ?
तुम अदृश्य हो, तुम अगम्य हो
किसे छिपाये हो छबिमान ।"

भारतेन्दु युग में आत्म निवेदन के परम्परागत गीतों के अतिरिक्त राष्ट्रीय गीत भी लिखे गये जैसे:—

"आवहु रोवहु सब मिल भारत भाई ।
हा हा भारत दुर्दशा न देखी जाई ।।

भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग के सन्धिकाल के प्रमुख गायक पं० श्रीधर पाठक हैं। उनके भारत द्वारा रचित स्तवन सम्बन्धी गीत बड़े मधुर हैं। गोस्वामी जी के राम स्तवन के अनुकरण पर लिखा उनका एक स्तवन देखिये:—

"सुखधाम, अति अभिराम, गुन निधि नौमि नित प्रिय भारतम् ।
सुठि सकल जग संसेव्य सुम थल सकल जग हो वारतम् ।।
सुचि सुजन सुफल सुसस्य संकुल सकल भुवि अभि वन्दितम् ।
नित नवल सुरति सुदृश्य सुठि छवि अवलि अवनि अनन्दितम् ।।"

गुप्त जी की 'भारत भारती' राष्ट्रीय काव्य का सुन्दर नमूना है। उनके साकेत और यशोधरा नामक प्रबन्ध काव्यों में भी गीत मिलते हैं।

साकेत में सीता की सन्तोषमयी प्रसन्नता और उर्मिला के हृदय की वियोग वेदना से प्रसूत गीत मिलते हैं। यशोधरा के गीत नारी गौरव से पूर्ण हैं. इनकी झंकार में छायावादी गीतों के दर्शन होते हैं। चारों प्रकार के गीतों के उदाहरण हैं:—

(क) "तेरे घर के द्वार बहुत है किस से होकर आऊं मैं।
सब द्वारों पर भीड़ लगी है कैसे भीतर आऊं मैं॥"

—झङ्कार

(ख) "निज सौध सदन में उटज पिता ने छाया।
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया॥

(ग) शिशिर न फिरा गिरी वन में।
जितना मांगे पतझड़ दूंगी मैं इस निज नन्दन में।
कितना कम्पन तुझे चाहिये ले मेरे इस तन में॥"

— साकेत

(घ) "सखि वे मुझ से कह के जाते,
कह तो क्या मुझको वे अपनी पथ बाधा ही पाते"

— यशोधरा

गीति काव्य के अत्याधुनिक युग में अंग्रेजी लिरिक के सब गुण पाये जाते हैं। ये कविताएं आकार में छोटी हैं और एक एक हृदयोच्छ्वास के रूप में कोमलता एवं मधुरता से मण्डित निजीपन से परिपूर्ण तथा नवीन लाक्षणिकता सौंदर्य सुषमा और नवीन भावनाओं से ओत प्रोत हमारे सामने आती हैं, इस युग को किसी अंश में स्वातन्त्र्य युग भी कह सकते हैं। इसमें छन्द के बन्धन टूट गए, हमारे कवियों ने पुरानी लकीरों से हट कर चलना सीखा और अपना नया मार्ग प्रशस्त किया। यह मार्ग सुमन-सौरभमय है।

हमारे इस युग के प्रतिनिधि कवि हैं, प्रसाद, पन्त और निराला। नवीन भावनाओं से ओत प्रोत कोमल कान्त पदावली में लिखे इनके गीत हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि हैं। इस युग के गीति काव्य लिखने वालों में महादेवी वर्मा का स्थान भी अति उच्च है। उनकी 'दीप शिखा' और 'यामा' तो आधुनिक गीति ग्रन्थों में सर्वोपरि हैं।

द्विवेदी युग के गीतों में उपदेशात्मकता एवं इति वृत्तात्मकता की प्रधानता थी और साथ ही खड़ी बोली का खड़ा पन ही अधिक सामने आया। रीति कालीन अत्याधिक शृङ्गार प्रियता की प्रतिक्रिया स्वरूप इस युग में शृङ्गार विवर्ज्य सा रहा। छायावाद में द्विवेदी युग की इति वृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया हुई। राष्ट्रीयता हृदय की कोमल भावनाओं को न दबा सकी और शृङ्गारिक भावनाएं एक उन्नत रूप में प्रकाश में आई। कवियों के भावोद्गार गीत लहरी में बह उठे और छायावाद एवं रहस्यवाद के गीतों की सृष्टि हुई। जीवन की बाहरी शुष्कता के अन्तस्तल में बसने वाली सौन्दर्य सुषमा को

बाहर लाकर उसे एक सरस मधुरावेष्टनमयी कोमल कान्त पदावली में अभिव्यक्त करने की ओर हमारे नवयुवक कविगण अग्रसर हुए।

छायावादी तथा रहस्यवादी दोनों प्रकार के गीतों में स्थूल दृश्य की उपेक्षा है। बहिर्मुखी की अपेक्षा वे अन्तर्मुखी अधिक होते हैं। इन गीतों में बाह्य प्रकृति का चित्रण भी आन्तरिक रूप से ही होता है। प्रकृति का एक विशेष मानवीकरण करके उसको मानवी भावों से अनुप्राणित देखा जाता है। यह प्रकृति और मानव का एकीकरण भारतीय एकात्मवाद की भावना पर आश्रित है।

कविवर पन्त की परिवर्तन नाम की कविता में यह भावना स्पष्ट है—

"एक ही तो असीम उल्लास
विश्व में पाता विविधाभास
तरल जल निधि में हरित विलास
शान्त अम्बर में नील विकास।"

छायावाद और रहस्यवाद के कोमल स्निग्ध वातावरण में अनेकों गीतों की सृष्टि हुई है। जिनमें प्रकृति सम्बन्धी, जीवन मीमांसा सम्बन्धी, अध्यात्मिक विरह मिलन के गीत गांधीवाद से प्रभावित होकर राष्ट्रीय गीत और लौकिक प्रेम के गीत विशेष हैं। कविवर प्रसादजी द्वारा अङ्कित प्रातः श्री का एक मनोहर चित्र दिया जाता है:—

"बीती विभावरी जाग री।
अम्बर पनघट में डुबो रही
तारा घट उषा नागरी
खग कुल कल-कल सा बोल रहा।"
किसलय का अञ्चल डोल रहा
लो यह लतिका भर लाई
मधु-मुकुल नवल रस गागरी।"

अन्य मुक्तक लेखकों में हरवंशराय बच्चन, भगवती चरण वर्मा, रामधारी 'दिनकर', 'सोहनलाल द्विवेदी' और 'अज्ञेय' आदि प्रमुख हैं।

पठनीय पुस्तकें :—

१. काव्य के रूप —बा० गुलाबराय
२. सिद्धान्त और अध्ययन ,,
३. आधुनिक तीन महाकाव्य।

षष्ठम अध्याय

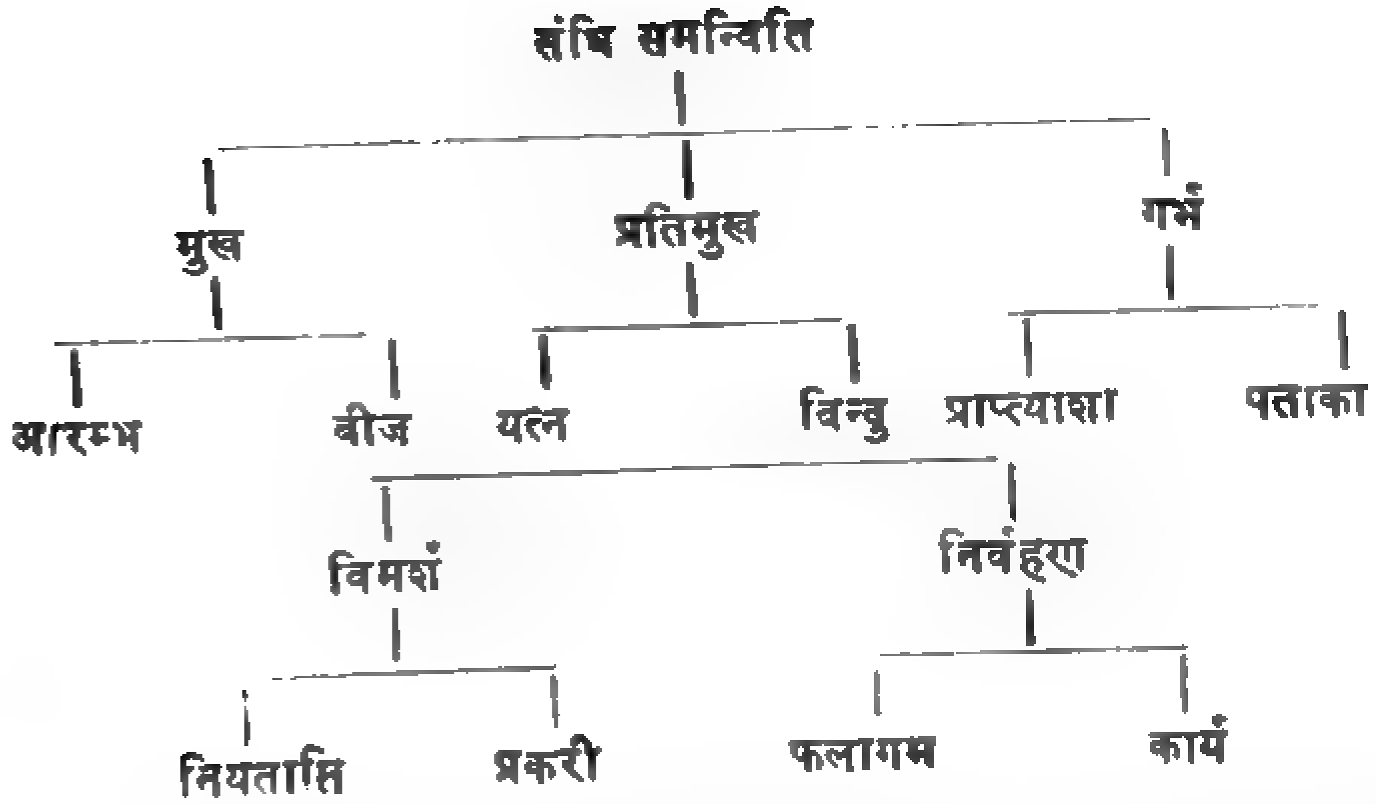
गद्य-साहित्य

(क) हिन्दी नाटक और उसका विकास

इन्द्रियों की मध्यस्थता के विचार से काव्य के दो भेद होते हैं—श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य। श्रव्य काव्य के अन्तर्गत उपन्यास, कहानी और निबन्ध आदि आते हैं तथा दृश्य काव्य में नाटक। प्रदर्शन की प्रधानता के कारण दृश्य काव्य काव्य के अन्य भेदों से सर्वथा भिन्न और अद्भुत हैं। भारतीय वाङ्मय में दृश्य काव्य का विशेष महत्व माना जाता है। अत्यन्त प्राचीन काल में ही इसका शास्त्रीय विवेचन जितने विस्तार के साथ भरतमुनि के नाट्य शास्त्र में में हुआ इतना श्रव्य काव्य का नहीं। दृश्य काव्य के लिए हिन्दी में विशेष प्रचलित शब्द नाटक ही है, यद्यपि इसकी रूपक आदि अन्य विधाएँ भी हैं।

नाटक के तत्व—नाटक के मुख्य तीन तत्व हैं वस्तु, नेता (नायक) और रस।

वस्तु—इति वृत्त, अधिकारी, अभिनय और संवाद के विचार से वस्तु के कई भेद होते हैं, जैसे प्रख्यात कल्पित मिश्रित और अधिकारिक आदि। इनके अतिरिक्त कुछ गौण कथाएं भी रहा करती हैं, तथा विशेष परिस्थितियों में प्रसङ्गानुकूल वे अधिकारिक कथा की सहायता करती है और वे प्रासंगिक कहलाती हैं। नाटक में मुख्य होता है, उसका फल जिसे कथा का कार्य मानते हैं। नाटक की समस्त रचना में यह कार्य कई अवस्थाओं में दिखाई देता है। ये अवस्थाएँ पांच होती हैं—आरम्भ, यत्न, प्राप्तयाशा नियताप्ति और फलागम। फल सिद्धि के साधनों के विचार से वस्तु का प्रयोजन भी पांच भागों में विभक्त हैं—बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य इन पांचों का नाम अर्थ प्रकृति है। कार्य्य अवस्थाओं और अर्थ प्रकृतियों को जोड़ने के लिए नाटक में पांच सन्धियों का विधान भी किया जाता है। जिनके नाम हैं मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण या उपसंहृति। इस विवेचन के अनुसार इन तीनों के समन्वय का वृक्ष इस प्रकार होगा:—



नाटक में कई ऐसी घटनाएँ होती हैं जिनका नाटक के उद्देश्य से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता। किन्तु कथा की प्रखण्डता के विचार से इनकी सूचना अवश्य दी जाती है। ये सूच्य कथाएँ कहलाती हैं, जिन्हें अर्थोक्षेपक भी कहते हैं—उनके पाँच भेद हैं:—विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकावतार और अंकमुख। भूत और भविष्य की घटनाएँ विपकम्भक और प्रवेशक द्वारा सूचित की जाती हैं उसे चूलिका कहते हैं. किसी अङ्क के अन्त में आगामी घटना की जो सूचना दी जाती है और उसी के अनुसार अगले अङ्क में घटनाएँ घटित होती हैं तो उसे अंकावतार कहते हैं। पिछले अंक में सूचना देने वाला पात्र जब अगले अंक में काम करता हुआ देखा जाता है उसे अंक मुख कहते हैं।

वस्तु, नेता, रस, इन्हीं तीनों के हेर फेर से दृश्य काव्य के अनेक भेद किये गये हैं: – नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन और व्यायोग आदि।

संस्कृत साहित्य अनेक नाटक रत्नों से जगमगा रहा है। कालिदास, भवभूति और भास आदि जैसे उच्चकोटि के नाटयकार भारत भूमि पर नाटकों में अपनी प्रतिभा बिखेर गये देख कर आश्चर्यन्वित होना पड़ता है। लेकिन इसके लगभग कई शताब्दियों तक नाटकों की रचना देखने को नहीं मिलती जिसके विद्वानों ने कई कारण माने हैं:—

(१) नाटक आनन्द—प्रधान वस्तु है, इसका आकलन रस संचार के लिए होता है, परन्तु हिन्दी साहित्य का जन्म मुसलमानी शासन के आतंक में हुआ और जनता के हृदय में नैराश्य छाया हुआ था। ऐसी स्थिति में आनन्द स्रष्टा नाटक का अस्तित्व कैसे सम्भव होता।

(२) रीतिकालीन मुक्तक लेखक जीवन के सर्वाङ्गीण चित्रण वाली रचना नाटक लिखने में असमर्थ थे।

(३) गद्य का अभाव था और राष्ट्रीय रंगमंच का भी।

(४) औरंगजेब आदि मुसलमान शासकों की ओर से संगीत कला का ही विरोध रहा। औरंगजेब कहता था कि "संगीत को लेजाकर इतनी नीचे गाढ दो कि फिर जी न उठे"।

नाटक साहित्य का अभाव होते हुए भी रामलीला, रासलीला, प्रेमलीला, स्वांग, नकल, कठपुतली का तमाशा छायाचित्र, गोपीचन्द के ख्याल तथा नौटंकियों के रूप में जनता की भावना प्रसार पाती रही और उन्हीं में वास्तविक नाट्य कला के अंकुर विद्यमान थे फिर भी इनसे नाट्य-कला का विकास न हुआ। सम्भव है कालान्तर में इनका कोई रूप पनपता, कि इतने में पारसी रंगमंच ने आकर इनका गला घोंट दिया।

१८५३ में इन्द्र सभा नामक नाटक खेला गया, जो गीति नाट्य कहलाने योग्य है। दृश्य का इसमें भी अभाव है।

दूसरे प्रकार के नाटक का विकास राजा लक्ष्मणसिंह के 'शकुन्तला' नाटक के अनुवाद से प्रारम्भ हुआ। इससे दो तीन वर्ष पूर्व भारतेन्दुजी के पिता ने 'नहुष' नाटक नाम लिखा। जिसे भारतेन्दुजी ने हिन्दी का सर्व प्रथम नाटक माना है। 'शकुन्तला' नाटक के अतिरिक्त अन्य और भी नाटकों के अनुवाद हुए। ला० सीताराम ने कालिदास भवभूति, हर्ष के सभी नाटकों और शूद्रक के 'मृच्छ कटिक' का अनुवाद किया। साथ ही शेक्सपीयर के कितने ही नाटकों का रूपान्तर प्रकाशित करवाया।

नाटक के विकास की दृष्टि से हिन्दी साहित्य के चार स्कूल माने गये हैं:—१. प्रथम उत्थान हरिश्चन्द्र स्कूल २. द्वितीय उत्थान बेताब स्कूल, ३. बद्रीनाथ भट्ट का स्कूल और ४. प्रसाद स्कूल।

१. प्रथम उत्थान हरिश्चन्द्र स्कूल:—हरिश्चन्द्र युग से मौलिक नाटकों का सूत्रपात हुआ समझना चाहिए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके समकालीन श्रीनिवास दास. प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट; अम्बिकादत्त व्यास और बद्रीप्रसाद चौधरी आदि लेखकों द्वारा पारसी थियेटरों के अश्लील और भद्दे नाटकों से असन्तोष और प्रतिक्रिया स्वरूप अनेक नाटक लिखे गये। नाटककारों की यह मण्डली हरिश्चन्द्र स्कूल के नाम से विख्यात हुई।

भारतेन्दु जी की नीलदेवी तथा अन्य लेखकों के 'ग्राम पाठशाला' 'फूट और बैर' 'हिन्दुस्तान की मेवा' आदि नाटकों में नव जागृति के यथार्थवादी चित्र स्पष्ट हैं। इस काल में ऐतिहासिक व पौराणिक नाटक भी लिखे गये—भारतेन्दु का "नीलदेवी" और कार्त्तिक प्रसाद खत्री का उदाहरण इसी श्रेणी के नाटक हैं। राधाचरण गोस्वामी के दो प्रहसन प्रसिद्ध है, जिन में एक है—तन मन धन गोसाई जी को अर्पण।" और कई प्रकार की नाट्य रचना होते हुए भी हरिश्चन्द्र युग क नाटकों में नाटकीय गुणों का विशेष विकास हुआ। कथानक अधिकांशतः संस्कृत नाटकों तथा पौराणिक कथाओं के आधार पर निर्मित हुए; उनका वातावरण रीतिकाल से मिलता जुलता था तथा शैली अलंकृत और आडम्बरपूर्ण थी। इन नाटकों का रंगमच पारसी थियेटरों से उधार लेकर गोष्ठि रंग में परिवर्तित किया सा प्रतीत होता था। नाम कला की दृष्टि से भी हरिश्चन्द्र स्कूल कला पारसी नाटकों से उन्नत न थी। पर इनका वातावरण उनसे बिल्कुल भिन्न नैतिक और शुद्ध चित्रण था। चरित्र चित्रण, संगीत एवं गम्भीरता तथा स्वाभाविक वार्तालाप का अभाव उनमें न तो समानुपात का बोध है न निर्देशन। हाँ रीति कवियों में वाग्विदग्धता और दूर की सूझ खूब है।

२. द्वितीय उत्थान—बेताब स्कूल इस युग में एक नवीन नाट्यकला का विकास हुआ। नारायण बेताब ने लिखना ही अपना व्यवसाय बनाया—पारसी थियेटर्स के नाटकों में उन्नति प्रारम्भ की। भाषा को उर्दू से बदलकर सरल हिन्दुस्तानी किया। गाने गजल के तर्ज से हटाकर हिन्दी में लिखे। कथानक में पौराणिक कथाओं को स्थान दिया। सिनेमा के प्रचार से प्रभावित होकर रोमांचकारी दृश्यों को अधिकता दी। इन पौराणिक नाटकों के पीछे उपदेश देने की भावना होने से ये स्वाभाविकता से दूर रहे और चरित्र चित्रण, वातावरण, भाषा और शैली सभी दृष्टियों से ये निम्न कोटि की रचनाएँ हैं। धार्मिक उपदेश वृत्ति के कारण जनता में इनका प्रचार तो हुआ किन्तु नाट्यकला की दृष्टि से उसका महत्व नहीं है।

३. बद्रीनाथ भट्ट का स्कूल—सं० १६१२ के लगभग बद्रीनाथ भट्ट का 'कुरुबन दहन' नाटक प्रकाशित हुआ जिसमें नवीन नाट्यकला के अंकुर उठे। यह नाटक संस्कृत के वेणी संहार' का रूपान्तर है इसमें उन्होंने कथानक का सौन्दर्य चरित्र चित्रण और हास्य रस की अवतारणा की और साथ ही साथ इसे आधुनिक और रुचि के अनुकूल बनाया। निर्देशन, वैप्रथ्य और कलात्मक संयम नाट्यकला में दर्शाया। गम्भीर और हास्यमय दृश्यों तथा सम्भाषणों

का सुन्दर सामंजस्य इन्हों ने ही सर्वप्रथम हिन्दी में करके दिखाया। अभिनय की दृष्टि से नाटक सरल और सुन्दर है। 'कुरु वन दहन' के पश्चात् नाटयकला में एक महत्वपूर्ण विकास माधव शुक्ल रचित महाभारत में मिलता है जो १९१५ में लिखा गया। इनके अतिरिक्त माखनलाल चतुर्वेदी के "कृष्णार्जुन युद्ध" और बद्रीनारायण भट्ट के 'दुर्गावती' नाटक में भी हिन्दी नाट्य कला का विकास मिलता है। इनमें कथानक वैचित्र्य है, कार्य पर्याप्त मात्रा में है, भाषा सरल और साहित्यक है–रसात्मकता के साथ मनोवैज्ञानिक चित्रण भी है।

४. **प्रसाद स्कूल**—प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में नाट्यकला का महत्वपूर्ण विकास हुआ। बंगला और पश्चिम के प्रभावों को ग्रहण करके उसकी भारतीयता के साथ संयोग करने का सफल प्रयास इन नाटकों में हुआ। प्रसाद के नाटकों में सबसे बड़ी विशेषता सङ्घर्ष के चित्रण की है। इसका अभी तक नाटक कला में सफलतापूर्वक प्रवेश नहीं हुआ था। नाट्य कला के इस बड़े प्रभाव को प्रसादजी ने पूरा कर दिया। इनके नाटकों का वातावरण काव्यमय रहता है। गीत सुन्दर हैं, चरित्र और कथानक दार्शनिकता की ओर झुके रहते हैं और अतिशय गम्भीर हैं। परन्तु उनकी यह विशेषताएँ रंगमंच की दृष्टि से उन्हें अत्यन्त दोषपूर्ण बना देती है। वह अभिनय के अयोग्य जटिल, दुरूह और जनता की रुचि से बहुत दूर है। इस समय नाटकीय विधानों में भी परिवर्तन किया गया।—

१. नांदी और प्रस्तावना हटा दी गई।

२. नाटक का उद्देश्य रसात्मकता के प्रवाह से बदल कर कथानक सौन्दर्य तथा मनोवैज्ञानिक चित्रण हो गया।

३. कथा वैचित्र्य के लिए कवित्व का मापदण्ड आवश्यक नहीं माना गया।

४. संस्कृत के नाटकों की तरह प्रवेशकों व विष्कम्भकों की आवश्यकता नहीं रही। कथा विकास को दृष्टि में रखकर दस के स्थान में केवल तीन अंक होने लगे। एक अंक के एकाङ्की नाटक भी लिखे जाने लगे। अंक दृश्यों में विभाजित होने लगे।

५. प्राचीन नाटकों जैसा आदर्शवादी चित्रण न होकर यथार्थ जीवन का अनुकरण होने लगा।

६. बुद्धिवाद और विज्ञान के इस युग में स्वगत भाषण पृथक भाषण और आकाश भाषित को निकाल दिया गया।

७. कथोपकथनों का प्रयोग चरित्र चित्रण के लिए अधिक किया जाने लगा। वार्तालाप छोटे और स्वाभाविक होते थे।

सामयिक नाटक – सामयिक सामग्री के आधार पर भी नाटक लिखे गये। हास्यरस पूर्ण सामयिक नाटककारों में जी. पी. श्रीवास्तव उल्लेखनीय है। उनके "दुमदार औरत" व "मर्दानी औरत" आदि नाटक कई बार अभिनीत हो चुके है। सामयिक सामग्री पर कई गम्भीर नाटक भी लिखे गये, पर ये नाटक कला की दृष्टि से बहुत हीन हैं। इनकी यथार्थवादिता ही इनकी दुर्बलता है।

इनके अतिरिक्त प्रतीकवादी नाटक भी लिखे गये पर कम। 'प्रसाद' की 'कामना' तथा 'पन्त' की ज्योत्सना' के नाम उल्लेखनीय हैं। इधर कुछ दिनों से रेडियो के प्रचार से ध्वनित नाटक खूब चल रहे हैं जिन्हें रंगमंच की आवश्यकता नहीं।

इस प्रकार हमारे नाटकों पर अंग्रेजी तथा काव्य नाटकों का प्रभाव स्पष्ट है। इन विशेषताओं को लाकर नाटक का विकास करने में हमारे साहित्यकारों, 'भारतेन्दु, 'बद्रीनारायण भट्ट', 'प्रसाद' और 'प्रेमीजी' प्रभृति का तप निहित है। पर अब भी नाटकों के यथेष्ठ विकास के लिये अत्यधिक प्रयत्न की आवश्यकता है। सिनेमा का प्रचार उसके विकास से बहुत बाधक हो रहा है।

हिन्दी नाटकों के स्वतन्त्र विकास के लिए ठीक मार्ग यह है कि हम उनका मूल तो भारतीय लक्ष्य को बनाएँ पर उनके स्वरूप के लिए अन्य देश की पद्धतियों का निरीक्षण करें। "मिट्टी और बीज देश के हों, पानी बाहर के देशों से लाकर दें।" अन्य नाटककारों में 'प्रेमघनजी', सेठ गोविन्ददास, पं० राधाचरण गोस्वामी, राधाकृष्णदास, कार्तिक प्रसाद खत्री, काशीनाथ खत्री, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ला. श्रीनिवास दास, वृन्दालाल वर्मा और डा. रामकुमार वर्मा प्रभृति के नाम उल्लेखनीय हैं।

(ख) हिन्दी कहानी और उसका विकास

कथा साहित्य के प्रति मनुष्य का सहज अनुराग है। कहानी में मनुष्य के अपने हृदय जीवन का स्पन्दन होता है अतः सभी इसे पसन्द करते हैं। कहानी किसी नीति उपदेश अथवा शिक्षा के लिये नहीं लिखी जाती इसका कार्य इसकी उत्पत्ति करना है। इसमें कामनी की कमनीयता और समुद्र की गम्भीरता दोनों का समावेश होता है। मानव जीवन स्वयं एक कहानी है। अतः सङ्घर्ष घात, प्रतिघात उत्थान पतन और सुख दुःख के बीच विचरने वाले मानव को उसके जीवन से ही कहानी की सामग्री प्राप्त होती रहती है।

किसी ने सत्य कहा है, कहानी का सौष्ठव उसके आकर्षक शीर्षक, संघटन पटुता, भावना के प्रकरण जीवन और प्रकृति के रहस्यों के गम्भीर सुन्दर निरीक्षण और युद्ध स्पष्ट व नवीन उद्भावना मयी शक्ति द्वारा जिज्ञासा उत्पन्न करने में है। यह जिज्ञासा रस की उन्नति का साधन है।

कहानी साहित्य आदिम युग से किसी न किसी रूप में मिलता है। परन्तु आधुनिक कहानी उससे भिन्न है। प्राचीन काल में परियों व जादू टोने की कहानियां थी जिनमें नैतिक पुट पीछे रहता था। जैनियों की गाथाएँ भी अति प्रसिद्ध हैं, परन्तु आज की आख्यायिकाओं का इस दाय भाग से सम्बन्ध नहीं, वे पाश्चात्य कथा साहित्य से प्रभावित है। आधुनिक कहानी में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और चरित्र चित्रण को प्रधानता दी जाती है और वह स्वाभाविक जीवन के संन्निकट है।

आज का युग कहानी के अति अनुकूल है, कहानी जीवन की व्यस्तता और व्यग्रता आदि के अनुकूल दौड़ती है। अतः कहानी साहित्य उत्तरोत्तर वृद्धि पर है, यहाँ तक कि सारे संसार की 'कहानी प्रतियोगिताएँ हो रही हैं।'

हिन्दी कहानी का विकास सन् १९०० ई० में सरस्वती मासिक पत्रिका से प्रारम्भ हुआ, प्रारम्भिक लेखकों में श्री किशोरीलाल गोस्वामी, गिरजाकुमार घोष, बंग महिला और पं० रामचन्द्र शुक्ल आदि मुख्य हैं। इनकी लिखी हुई कहानियों में कुछ मौलिक है और कुछ बंगला से अनुवादित।

इन प्रारम्भिक लेखकों के पश्चात् प्रसादजी ने इस क्षेत्र में अवतरित होकर छोटी २ कहानियों में मानों प्राण प्रतिष्ठा करदी। उनकी 'आकाशदीप' 'पुरस्कार' 'प्रतिध्वनित' और 'चित्र मन्दिर' आदि कहानियों ने एक नया युग उपस्थित कर दिया। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और अन्तर्द्वन्द इनकी कहानी की विशेषता है।

फिर विश्वम्भरनाथ कौशिक ने सामाजिक और सुदर्शनजी ने राजनैतिक आन्दोलनों से भी कथानक लेकर कहानी रचना की। सुदर्शनजी की 'न्याय मन्त्री' शीर्षक कहानी ऐतिहासिक है और 'हार में जीत' नामक कहानी में उच्च मानवता के दर्शन होते हैं। इसी काल में राजा राधिकारमण और पं० ज्वालादत्त शर्मा आदि की कहानियां प्रकाशित हुई।

सन् १९१५ में गुलेरीजी की ' उसने कहा था" कहानी प्रकाशित हुई जो कहानी के तत्वों की दृष्टि से सर्वोपरि मानी जाती है। और आधुनिक कहानी साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती है। सन् १९१६ से मुंशी प्रेमचन्दजी ने कहानियां लिखना प्रारम्भ किया जिससे हिन्दी कहानी में दो स्कूल बन गये— प्रसाद स्कूल तथा प्रेमचन्द स्कूल।

प्रसाद स्कूल के लेखक काव्य की पुट लिये कहानी लिखा करते थे। जिनमें विनोद शंकर व्यास, वाचस्पति पाठक और उषा देवी मिश्रा आदि प्रमुख हैं। प्रेमचन्दजी की कहानियां इति वृत्तात्मक रही, उनमें चरित्र चित्रण की सुन्दरता बड़े ही प्रभावशाली रूप में व्यक्त हुई। प्रेमचन्दजी ने सरल मुहावरेदार भाषा में सुन्दर मनोवैज्ञानिक चित्र दिये हैं। ग्रामीण जीवन के चित्र उपस्थित करने में वह सिद्धहस्त थे। प्रेमचन्दजी ने अपनी कहानी द्वारा साधारण मनुष्यों में भी उच्च मानवता के दर्शन कराते हैं। प्रेमचन्दजी से प्रभावित लेखकों में कौशिकजी, सुदर्शनजी तथा पं० ज्वालादत्त शर्मा प्रमुख है। प्रेमचन्दजी तथा तथा पूर्व के दो लेखकों को वृहत्रयी का नाम दिया जा सकता है।

प्रेमचन्दजी का स्कूल अधिक लोक प्रिय हो सका क्योंकि उनकी कहानियों समझने के लिये विशेष ज्ञान की आवश्यकता न थी। इसके अतिरिक्त उनकी कहानियों का जनता के जीवन से गहरा सम्बन्ध था। प्रेमचन्दजी की कहानियों में हमारे देश के कृषक वर्ग की व्यथाएँ और असंगतियें बड़े प्रभावशाली रूपमें मुखरित हुए हैं। इन्होंने प्रायः सभी प्रकार की कहानियां लिखी है, फिर भी चरित्र

चित्रण प्रधान एवं कथानक प्रधान कहानी लिखने में वे विशेष सफल हुए हैं। 'कफन' 'मूलियां' बड़े घर की बेटी' और 'पंचपरमेश्वर' उनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध कहानियां हैं। चंडी प्रसाद 'हृदयेश' की कहानियां गद्य का नाम अधिक सार्थक करती है. उनमें भाषा का चमत्कार अधिक है।

प्रसादजी की कहानियों में भावागत माधुर्य्य अधिक होते हुए भी साधारण जन समाज में प्रचलित न हो सकी क्योंकि उन्हें समझने के लिये एक विशेष प्रकार के साहित्यिक संस्कार अपेक्षित हैं। प्रसादजी के अनुयायियों में से विनोद शंकर व्यास् में रोमान्स की भीनी २ गन्ध है. वाचस्पति पाठक में घटना वैचित्र्य की प्रधानता है तथा करुणा की अन्तधारा भी इनकी कहानियों में सर्वत्र प्रवाहित हो रही है।

उषा देवी मित्रा ने प्रसादजी के भावागत माधुर्य्य और मनोवैज्ञानिक चित्रण को लेकर नारी हृदय के स्पन्दनों को अपनी कहानियों में अङ्कित किया।

इन दोनों स्कूलों से पृथक अस्तित्व रखने वालों में श्रीचन्द्रधर शर्मा गुलेरी और पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र आदि कुछ उत्कट प्रतिभा वाले कहानी लेखक हैं। 'उग्र' जी की कहानियों में जहाँ एक ओर शैलीगत विलक्षणता है वहां दूसरी ओर नग्न यथार्थवाद का चित्रण भी है। 'चाँदनी' उनकी प्रतिनिधि कहानी समझी जाती है।

इस प्रकार हिन्दी कहानी साहित्य मे द्विवेदी युग का अन्त होकर छायावादी युग आरम्भ होता है।

छायावादी युग की कहानियों में कहानीकार अन्त:वृ‍त्तियों के निरूपण और कहानी की टैक्नीक के प्रति अत्यधिक सजग प्रतीत होते है। प्रेमचन्द और प्रसाद की श्रेष्ठ कहानियां लिखी जाने के बाद श्री जैनेन्द्र जी, भगवतीचरण वर्मा, 'अज्ञेय', चण्डीप्रसाद हृदयेश, सुदर्शन, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', पं० ज्वालादत्त शर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, 'पहाड़ी' और इलाचन्द्र जोशी प्रमुख कलाकार हुए। चतुरसेन शास्त्री ने कुछ ऐतिहासिक कहानियां लिखीं एवं जी० पी० श्रीवास्तव ने विनोदपूर्ण, अश्क जी पर यद्यपि प्रेमचन्द जी का स्पष्ट प्रभाव है, परन्तु निजी व्यक्तित्व भी इनकी कहानियों में झलकता है। अनुभूति की सघनता और वातावरण के चित्रण में आप प्रसाद तथा गुलेरी जी के मध्य आते हैं। उच्च कलापूर्ण राजनैतिक कहानियों का सूत्रपात वास्तव में 'उग्र' द्वारा हुआ।

जैनेन्द्र जी ने लगभग ३०० कहानियां लिखी हैं। उनकी अधिकांश कहानियों में कथानक का अभाव है, परन्तु व्यक्ति के अन्तर्मन का उसकी चेष्टाओं का वह अति सुन्दर निरूपण करते हैं। उनकी प्रारम्भिक कहानियों में प्रणय जीवन के विभिन्न चित्र हैं। कहीं कहीं दार्शनिकता का पुट भी मिलता है और कुछ कहानियां वस्तुस्थिति का चित्र उपस्थित करती हैं। 'पत्नी' 'मास्टरजी' और 'अपना अपना भाग्य' आदि आपकी प्रतिनिधि कहानियां हैं।

भगवतीचरण वर्मा आधुनिक जीवन के कट्टर आलोचक हैं। उनकी कहानियों में सम्पन्न वर्ग के जीवन का खोखलापन चित्रित किया गया है। 'इन्स्टालमेंट' संग्रह में इसी प्रकार के जीवन पर प्रखर व्यंग है।

'अज्ञेय जी' की कहानियां कलात्मक सौष्ठव के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं। 'विपथगा' शीर्षक कहानी में आतङ्कवादी क्रान्तिकारियों का चित्रण है। उनकी अनेक कहानियों में भावना गुम्फित जटिलता है। उनका एक २ वाक्य लेखक के व्यक्तित्व का द्योतक है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की प्रारम्भिक कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन का यथा तथ्य वर्णन है। 'पिंजरा' और 'कांकड़ा का तेली' इनकी अति प्रसिद्ध कहानियां हैं। इलाचन्द्र जोशी भावागत विचित्रता में प्रसाद जी के निकट हैं पर मनोवैज्ञानिक चित्रण में उनसे भी कुछ आगे बढ़े हैं। उनकी कहानियों में प्रेम की विडम्बना और घनीभूत भावनाओं का चित्रण है।

जैनेन्द्र और शरत्चन्द्र का समन्वित रूप हमें सियाराम शरण जी में मिलता है। पीड़ा के प्रति इनका सहज मोह है 'छत पर' आपकी अति प्रसिद्ध कहानी है, जिस में मजदूरिन के कारुणिक जीवन का चित्र है।

हिन्दी की स्त्री लेखिकाओं में शिवरानी देवी, सुभद्रादेवी चौहान, कमला देवी चौधरानी, चन्द्रकिरण सोनकिरण, हेमवती तथा चन्द्रवती जैन प्रभृति देवियों ने विशेष ख्याति प्राप्त की। श्रीमती हेमवती देवी की कहानियों का संग्रह 'विसर्ग नाम से छपा है इन सबकी कहानियों में हिन्दू पारिवारिक जीवन के सुन्दर चित्र मिलते हैं।

वर्तमान कहानी यथार्थवाद से अधिक प्रभावित है। इसी कारण कहानी भाषा की सरलता की ओर जा रही है और इसमें चरित्र विश्लेषण तथा सामाजिक एवं अन्य प्रकार की सामग्री उपस्थित करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है।

प्रगति शील युग में प्रवेश करने पर प्रतीत होता है कि प्रगतिशीलता का इतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना कथा साहित्य पर यशपाल, कृष्णचन्द्र पहाड़ी, चन्द्रकिरण सोनरिक्सा, विष्णु. प्रभाकर माचवे, अमृतराय, महेन्द्रनाथ और राजेन्द्र यादव आदि इस युग के कहानीकार हैं।

यशपाल की कहानियों में भी उग्र जी की भांति यथार्थवाद का चित्रण है। इन्होंने ३५० कहानियां लिखीं जो यथार्थ चित्रण और मार्मिकता के कारण अत्यन्त हृदयग्राही सिद्ध हुईं यही कारण है कि लोकप्रियता में यशपाल का स्थान मुन्शी प्रेमचन्द के पश्चात् आता है। मृत्युमय' और 'ज्ञानदाता शीर्षक कहानियां विशेष उल्लेखनीय है।

पहाड़ी जी प्रारम्भ में यथार्थवादी कहानियां लिखते थे, पर अब उनकी कहानियों में वर्ग संघर्ष का चित्र प्रतिध्वनित है। आप प्रेमचन्दजी और जैनेन्द्र जी के मिश्रित रूप हैं। अभाव पीड़ित वर्ग के चित्रण और वातावरण के अङ्कन में आप विशेष कुशल हैं।

रांगेय राघव जी इस युग में सर्वतोमुखी प्रतिभा के कलाकार हैं। प्रगति शील कथा वस्तु को लेकर इन्होंने अनेक प्रयोग किये हैं।

इस प्रकार हमारे कथा साहित्य का इतिहास समाप्त होता है। यह हमारे साहित्य का सर्वाधिक विकसित ंग है अनेक कहानीकार विश्व की प्रतियोगिता में भाग ले सकते हैं। प्रेमचन्द जी, यशपाल और कृष्णचन्द्र जी आदि की कहानियों के अनुवाद कई विदेशी भाषाओं तक में हुए हैं।

(ग) हिन्दी उपन्यास और उसका विकास

उपन्यास कथा साहित्य की एक विधा में लिखा जाता है। उपन्यास और नाटक के प्रधान भारतीय साहित्य शास्त्र के अनुसार–वस्तु नेता और रस माने जाते हैं। किन्तु उपन्यासों का विकास अधिकतर पाश्चात्य साहित्य की अनुकृति पर हो रहा है, इस लिए उनमें 'रस' के लिये इतना अवकाश नहीं रह गया जितना पात्रों के चरित्र विकास का।

उपन्यास के तत्व:—

पाश्चात्य समीक्षा शास्त्र के अनुसार कथा काव्यों के छः तत्व माने जाते हैं—वस्तु, चरित्र, संवाद देशकाल, शैली और उद्देश्य। कथा वस्तु के सङ्गठन और विस्तार के विचार से कई भेद होते हैं, किसी में बहुत सी सम्बद्ध या विच्छिन्न घटनाएँ जुड़ी होने से उनमें अपेक्षित सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता। इस प्रकार की कथाओं में कथा प्रवाह कार्य प्रवाह सम्बन्ध नहीं होता बल्कि नायक या नायिका के कार्य व्यापार पर निर्भर रहता है। दूसरे प्रकार की कथा वस्तु में प्रत्येक घटना एक दूसरे से अङ्गों के रूप में सम्बन्ध होते हैं, और उनके घटित होने का अपेक्षित हेतु होता है। ऐसी वस्तु केवल नायकाश्रित न रह कर अधिकतर कार्य प्रवाह से सम्बन्ध रहती है। इसी प्रकार अन्य ढङ्ग की भी कथा वस्तु होती है।

पात्र दो प्रकार के माने जाते हैं–गूढ़ चरित्र (Complex) और अगूढ़ अथवा सरल चरित्र भारतीय समीक्षा शास्त्र में नायक के उद्धत, उदात्त, ललित और शांत भेद किये गये थे। वे भी प्रकृतिगत ही थे।

उपन्यासों में पात्रों के चरित्र का उत्थान पतन और बलाबल भी दिखाया जाता है। इस तारतम्य के विचार से इन्हें उत्तम, माध्यम, और अधम श्रेणियों में रक्खा जा सकता है।

हिन्दी उपन्यास के क्रमिक विकास का मूल "तोता–मैंना" और 'सारङ्ग' सदावृक्ष जैसी कहानियों में मिलेगा। इन कहानियों के किसी व्यक्तित्व का परिचय नहीं मिलता केवल एक मौखिक वाद–विवाद सा है। व्यक्तित्व का विकास धीरे धीरे 'गुलबकावली" व "हातिमताई" आदि में हुआ। जायसी के पद्मावत तथा इंशाअल्ला खाँ की रानी केतकी की कहानी के वस्तु विकास पर इन कथाओं का स्पष्ट प्रभाव मिलता है। हिन्दी के उपन्यासों की परम्परा प्रेमाख्यानक कवियों के पालों से ही प्रारम्भ होती हैं। प्रेम प्रसंग उपन्यासों का अभिन्न अङ्ग सा बन गया है।

हिन्दी में उपन्यास की साहित्यिक रूप की प्रतिष्ठा देवकीनन्दन खत्री के 'चन्द्रकान्ता सन्तति' से ही मानी जाती हैं। प्रेम की रूढ़ि कथा या अनुमान सिद्ध घटना चक्र के स्थान में कौतूहल वर्धक अनेक कथाओं की यह संतति हिन्दी उपन्यास कला के विकास में युग प्रवर्तक मानी जायेगी, भावना और शैली दोनों दृष्टि से यह तिलस्मी उपन्यास चारण काव्यों विशेषकर 'आल्हाखंड' अनुगामी जान पड़ती है। लोकप्रिय होते हुए भी उनमें मानवीय भावनाओं के लिये स्थान नहीं था।

श्री किशोरीलाल गोस्वामी के ग्रन्थों में जाकर उपन्यास में नाटकीय कला के विविध गुणों का आरोप करने का प्रयत्न किया गया है और उपन्यास का क्षेत्र समाज के अधिक विस्तृत अंश तक पहुँच गया। उपन्यास लेखकों में किशोरीलालजी का वही स्थान है जो नाटककारों में भारतेन्दु का। जीवन के नित्य स्वरूप का चित्रण और अनुभव करने वाले उपन्यासकारों में भगवती चरण वर्मा ने चित्रलेखा सुन्दर उपन्यास लिखा।

(इसके पश्चात नाटककारों के एक समुदाय ने संस्कृत के प्रेम नाटकों और रीति-काव्य से प्रेरणा ग्रहण करने के स्थान में पारसी थियेटरों और उर्दू काव्यों का अनुकरण किया, उस समुदाय के प्रमुख लेखक रामलाल वर्मा का 'गुलबदन उर्फ रजिया बेगम' १९२३ ई० में प्रकाशित हुआ। यह सर्वश्रेष्ठ थ्येट्रीकल उपन्यास माना गया। धीरे धीरे उपन्यासों में नाट्य के बाह्य रूप के साथ आंतरिक रूप के उपकरणों का भी सफलता पूर्वक प्रयोग किया जाने लगा। ब्रज नन्दन सहाय ने 'राधाकान्त' में स्थान, समय और कार्य तीनों ऐक्यों (unity) का पूर्ण निर्वाह किया है।)

तिलस्मी और प्रेमाख्यानक उपन्यासों के अतिरिक्त साहसिक जासूसी, ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गये। इनके प्रतिनिधि लेखक क्रमानुसार चन्द्रशेखर पाठक गोपालराम गहमरी, वृन्दावनलाल वर्मा तथा बंकिमचन्द चट्टोपाध्याय है। हास्यपूर्ण शैली में जी. पी. श्रीवास्तव रचित गङ्गामुनी का विशेष स्थान है। घरेलू तथा सामाजिक उपदेशात्मक उपन्यासों में प्रतिदिन के जीवन की घर घर की सामग्री लेकर कथा वस्तु गढ़ी गई। उपदेश के दृष्टिकोण से पौराणिक उपन्यासों को घरेलू उपन्यासों से अधिक सफलता मिली।

उपन्यास कला का नवीनतम विकास मनोविज्ञान के समावेश के कारण हुआ जिससे उपन्यासों के कलापूर्ण सौंदर्य में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। शरतचन्द्र और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के उपन्यासों के अनुवादों से यह प्रभाव हिन्दी उपन्यास

में भी आगया। मनोवैज्ञानिक चित्रण पर जोर देने से उपन्यासों के नाटकीय सौंदर्य को क्षति पहुँचने लगी - दैवी घटनाओं और संयोग घटित प्रसंगों का निराकरण होने लगा। इस प्रकार के मौलिक उपन्यासकारों में स्वर्गीय प्रेम चन्दजी व प्रसादजी के अतिरिक्त श्री जैनेन्द्र जी अग्रणीय हैं। इलाचन्द्र जोशी ने भी इस दिशा में प्रयत्न किया पर उनके उपन्यास जीवन की सचाई व रसात्मकता से मेल नहीं खाते। अंग्रेजी साहित्य के प्रचार से पाश्चात्य उपन्यासों का प्रभाव भी हमारे उपन्यासों पर पड़ने लगा। उपन्यास कला आदर्शवाद से यथार्थवाद की ओर अधिक उन्मुख होने लगी। प्रेमचन्द जी ने एक और नया कदम उठाया उनके उपन्यास तो आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी हैं केवल आदर्शवाद और केवल यथार्थवाद के दोषों से मुक्त यह मध्यम मार्ग साहित्यिक दुनियां में अत्यन्त लोकप्रिय और हितकर सिद्ध हुआ। धीरे धीरे उपन्यास कला यथार्थोन्मुखी होने लगी जैसे कि चतुरसेन शास्त्री, बेचन शर्मा 'उग्र' इलाचन्द जोशी और चन्द्रशेखर पाठक के उपन्यासों से प्रकट है।

उपन्यास कला के विकास में एक बात और विशेष ध्यान देने की है कि उपन्यास कथाप्रधान से चरित्रप्रधान पक्ष की ओर मुड़ते जा रहे हैं।

मुन्शी प्रेमचन्द ने इस दिशा में अत्युन्नत कदम उठाया। उनके उपन्यासों में कई दृष्टियों से चरित्र चित्रण का पूर्ण विकास हुआ है। उनके पात्र सजीव और व्यक्तित्वपूर्ण हैं जो लेखक के इशारे पर न नाच कर अपने व्यक्तित्व के बल पर स्वाभाविक विकास को प्राप्त होते हैं और वे चलते फिरते परिचित से प्रतीत होते हैं। सर्व प्रथम प्रेमचन्द जी ने ही चरित्रों की व्यक्तिगत रुचि, आदर्श, भावना तथा उनकी निर्बलताओं का चित्र पाठक के सम्मुख उपस्थित किया। वह पात्रों के चरित परिवर्तन में विश्वास रखते थे—अतः उनके उपन्यासों में दुष्ट से दुष्ट और नीच से नीच चरित्र भी परिस्थितियों द्वारा उन्नत मार्ग की ओर बढ़ता हुआ पाया जाता है-- इस प्रकार की आदर्शोन्मुखता प्रेमचन्दजी की अपनी विशेषता है। परिस्थिति चित्रण में भी उन्होंने श्लाघनीय कौशल दिखाया है। प्रेमचन्दजी की सबसे बड़ी विशेषता है कि उनकी कला में कृत्रिमता नहीं है, वह जीवन के तथ्यों को सुलझे हुए शब्दों में सूक्ति रूप में रखने में सिद्धहस्त हुए। उनकी करुणा कलित लेखनी ने दीन दुखियों की मर्म भरी मूक वेदना को मुखरित करके निम्न कोटि के लोगों में मानवता का दर्शन कराया है।

इस प्रकार प्रेमचन्द जी के प्रादुर्भाव ने उपन्यास कला को आश्चर्यजनक विकास की ओर बढ़ाया उनके सेवासदन, गबन, प्रेमाश्रम, कायाकल्प, कर्मभूमि

ग्रौर गोदान आदि उपन्यास हिन्दी संसार और देश व समाज के लिए वरदान सिद्ध हुए—इसी से वह उपन्यास सम्राट् की उपाधि से अलंकृत हुए।

श्री 'अज्ञेयजी' की 'शेखर एक जीवनी' बिना आदर्श की परवाह किये लिखा हुआ वैयक्तिक उपन्यास है। इस उपन्यास की टैक्नीक और शैली भी उपन्यास के विकास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। श्री जैनेन्द्रजी के उपन्यास भी चरित्र की प्रधानता देकर लिखे गये हैं।

इधर प्रगतिशील साहित्य के अन्तर्गत एक नये ही ढंग की उपन्यास कला का विकास हो रहा है। इन उपन्यासों में रूस के साम्यवाद के सिद्धान्त पर गढ़ी हुई सामाजिक पृष्ठभूमि का आदर्श सामने रखकर जीवन की आलोचना करने की चेष्टा की जाती है। श्री यशपाल रांगेयराघव व श्री पहाड़ी के नाम इस क्षेत्र में उल्लेखनीय है। इन उपन्यासों की विशेषता यह है कि इन्हें कोई बन्धन स्वीकार नही। न सामाजिक मर्य्यादा के रूप में और न शैली के रूप में—परिणामतः स्वच्छन्द प्रेम का प्रवाह सा बहता हुआ दृष्टि आता है, जो सुरुचि के नाते कभी कभी अश्लीलता की सीमा तक पहुँच जाता है, हम प्रायः अपनी दुर्बलताओं के प्रति आँखे मींच कर चलते है, और झूठे दम्भ तथा अभिमान के नशे में रहते हैं। ऐसे लोगों की आँखें खोलने को उनके जीवन के कुत्सित पक्ष को खोलकर रखने की भी उपन्यासकारों ने चेष्टा की। प्रसादजी का 'कंकाल' इसी श्रेणी में आता है।

इसी प्रकार आधुनिक उपन्यास कला कई दिशाओं में बढ़ रही है। पर किसी भी दशा में उसे चरम विकास की स्थिति पर पहुँचाना नहीं कहा जा सकता। श्री प्रेमचन्दजी के बाद कोई ऐसी प्रतिभा प्रकाश में नहीं आई जो उपन्यास साहित्याकाश में ध्रुव नक्षत्र की तरह चमके और इस साहित्य की गति द्रुत करे। ईश्वरे करे आज की परिस्थितियां किसी ऐसे कलाकार को उत्पन्न करने के लिये उर्बर भूमि सिद्ध हों जो अपने प्रकाश से समस्त उपन्यास साहित्य को आलोकित कर दुनिया के अन्य साहित्यों के समकक्ष करदें।

— ——

(घ) हिन्दी निबन्ध और उसका विकास

"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति" के अनुसार कवियों की कसौटी गद्य को कहते हैं, पर आचार्य शुक्लजी ने गद्य की भी कसौटी निबन्ध को कहा है। निबन्ध में ही गद्य लेखक की शैली का पूर्ण विकास दिखाई पड़ता है। निबन्ध वह लघु आकार की गद्यमयी रचना है जिसमें लेखक का व्यक्तित्व अभिव्यक्त हो। साहित्य की अन्य विधाओं. जीवनी, कहानी आदि में भाषा केवल माध्यम मात्र है, किन्तु निबन्ध में भाषा अपनी पूर्ण सजधज के साथ प्रकट होती है। साधारणतया गद्य लिखना पद्य से कठिन माना जाता है, पर सुन्दर निबन्ध लिखना और भी कठिन है। निबन्ध लिखने के लिये बुद्धि और भाव दोनों का समन्वय आवश्यक है। निबन्ध के साधन निरीक्षण पर्यटन स्वाध्याय और सत्संग माने जाते हैं। अतः निबन्ध लेखक को अपनी पूर्ण सत्ता को साथ में लेकर चलना पड़ता है। उसे अत्यन्त गम्भीर और शिष्ट होने की आवश्यकता है क्योंकि इसमें मौलिक विचारों का सुन्दर गुम्फन करना होता है। निबन्ध में आत्मीयता पूर्ण वातावरण विशेष रूप से वांछनीय है, व्यक्तिगत चिन्तन इसका गुण है। निबन्ध का विकास सबसे पीछे हुआ, अतः इसका अंग सारे साहित्य के रूपों से प्रभावित होने के कारण प्रौढ़तम साहित्य का रूप है।

प्रायः निबन्ध चार प्रकार के होते हैं:—

१. वर्णन प्रधान—जिनमें किसी स्थान अथवा दृश्य आदि का चित्रण किया (Descriptive) जावे—जैसे कृष्ण बलदेव वर्मा का "बुन्देलखण्ड पर्यटन"

२. विचार प्रधान – विचारों के संकलन से जिनका दिग्दर्शन हो। जैसे (Reflective) शुक्ल जी का "काव्य में प्राकृतिक दृश्य'

३. कल्पना प्रधान—जो लेख भावनापूर्ण शब्दों द्वारा लिखा जावे—जैसे (Emotional) सरदार पूर्णसिंह का "मजदूरी और प्रेम"

४. विवरण प्रधान—जिनमें किसी जीवन चरित्र आदि का विवरण (Narrative) प्रस्तुत किया जावे, जैसे सियाराम शरण गुप्त का 'हिमालय की झलक'

कुछ साहित्यकार 'वर्णन प्रधान' और विवरण प्रधान लेखों को निबन्ध की श्रेणी में रखने के पक्षने में नहीं। वे केवल विचारात्मक लेख को ही निबन्ध

मानते हैं। परन्तु निबन्ध का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इतिहास, दर्शन विज्ञान, आलोचना, जीवन मीमांसा, यात्रा सभी प्रकार के विषय निबन्ध के अन्तर्गत आ जाते हैं। यद्यपि हिन्दी में निबन्ध साहित्य अंग्रेजी जैसा नहीं है, तथापि उसका विषयवैविध्य निराशाजनक नहीं हैं। साहित्यिक एवं आलोचनात्मक निबन्धों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है।

निबन्धों में अलग अलग शैलियां पाई जाती हैं। विचारात्मक निबन्धों में समास शैली जैसी आचार्य शुक्लजी को है और व्यास शैली जैसी आचार्य श्यामसुन्दरदास की है. मिलती है।

विचारात्मक निबन्धों के आलोचनात्मक, गवेषणात्मक और विवेचनात्मक आदि कई प्रकार होते हैं। व्यास शैली में एक ही बात को समझा समझा कर कई रूपों में कहा जाता है।

भावात्मक अथवा कल्पना प्रधान निबन्धों में प्रायः तीन प्रकार की शैलियां होती हैं:—धारा शैली, तरंग शैली और विक्षेप शैली धारा शैली में भावों की धारा प्रवाहमय रह कर प्रायः एक गति से चलती है, किन्तु तरंग शैली में वे भाव लहराते से प्रतीत होते हैं, तरंग की भांति उठते और गिरते व्यतीत हैं. विक्षेप शैली में वह कुछ कुछ उखड़ी हुई रहती है, उसमें तारतम्य और नियन्त्रण का अभाव रहता है।

हास्य व्यंग्यात्मक लेख भी विषयानुकूल भावात्मक या विचारात्मक लेखों की संज्ञा में आ सकते हैं।

शैलियों के प्रकार बहुत से हो सकते हैं, किसी में तत्सम शब्दों का बाहुल्य रहता है तो किसी में तद्भव का, और इस प्रकार उर्दू हिन्दी की गंगा जमनी धारा बहाई जाती है। यद्यपि विषय की कठिनाई से शैली में दुरुहता आ जाती है, तथापि उसमें प्रवाह के साथ प्रसाद गुण उपादेय होता है। क्रम, संगति, संगठन और अन्तर्गत शैली के आन्तरिक गुण हैं। शैली में अनेकता में एकता उत्पन्न करना वांछनीय रहता है। मुहावरों का प्रयोग और हास्य व्यंग्य का पुट निबन्ध शैली को चलतापन प्रदान करता है। लक्षणा व्यंजना के प्रसाधन भी उचित मात्रा में आदरणीय समझे जाते हैं। अधिक भावुकता प्रदर्शन आज के युग को मान्य नहीं है। प्रभावोत्पादन एक विशेष कला है जो बात थोड़े शब्दों में कही जा सकती है उसके लिये शब्दों का विस्तार बाहुल्य वान्छनीय नहीं है।

निबन्ध का विकास: – प्राय: प्राचीन साहित्य हमें पद्य में ही मिलता है, गद्य में रचनाएँ वस्तुत: आधुनिक युग में भारतेन्दु युग से आरम्भ हुई। परन्तु प्राचीन शिला लेखों से अनुमान लगाया जा सकता है कि गद्य का कुछ रूप उस समय भी स्थिर रहा होगा। पूर्व मध्यकाल में वैष्णवों की वार्ता तथा उत्तर मध्यकाल में गंग कवि के कुछ पत्र, जटमल गोरा आदि की कथा तथा गोरखनाथ जी के योगवर्णन आदि गद्य रचनाएं पाई जाती हैं। फिर खड़ीबोली के प्रचार से लल्लूलालजी से लेकर भारतेन्दु युग के पूर्व तक गद्य साहित्य में केवल कुछ पत्र व कथाओं की वार्ताओं आदि के स्वरूप मिलते हैं। पर इनमें निबन्ध नाम की कोई रचना नहीं हैं।

नाटकों की भांति निबन्ध का आविर्भाव भी भारतेन्दु जी के समय में हुआ अंग्रेजी साहित्य की भांति हिन्दी में भी समाचार पत्रो के उदय के साथ निबंधों का प्रचार हुआ।

मोटे तौर से हम निबन्ध साहित्य के इतिहास को तीन युगों में विभाजित कर सकते हैं:—

१. भारतेन्दु युग।
२. द्विवेदी युग।
३. आधुनिक युग।

भारतेन्दु युग:—

भारतेन्दु युग में निबंध साहित्य का उदय परिस्थिति की आवश्यकताओं और हृदय की उमंग से हुआ। उस युग का निबन्ध साहित्य वाणी का विलास अवश्य था पर उसका सम्बन्ध तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों से था। उन दिनों पद्य की भाषा का तो परिमार्जन हुआ ही किन्तु गद्य की भाषा को व्याकरण की कठोर श्रृङ्खलाओं में बांध कर रखने की अपेक्षा अपनी स्वच्छन्द गति से बढ़ने देने की ओर अधिक प्रवृत्ति हुई। श्री गुलाबराय जी लिखते है कि यह गद्य का शैशव काल अथवा लालन पालन काल था, शिक्षण काल द्विवेदी युग में आया।

निबन्ध साहित्य के प्रारम्भिक युग के लेखकों में भारतेन्दु जी के अतिरिक्त बालकृष्ण भट्ट, पं० प्रतापनारायण मिश्र, उपाध्याय बदरीनारायण, चौधरी

'प्रेमघन', लाला श्रीनिवासदास, पं० केशवराम भट्ट, पं० अंबिका दत्त व्यास, पं० राधाचरण गोस्वामी और बालमुकुन्द गुप्त मुख्य हैं। इन लेखकों की यों तो अपनी अपनी विशेषताएं हैं किन्तु जिन्दादिली, समाज सुधार और देशभक्ति उस युग के व्यापक गुण थे।

भारतेन्दु जी की निबन्ध शैली दोषमुक्त है पण्डिताऊपन की भाषा हटाकर आपने गद्य के लिये सरल व व्यावहारिक शब्दों से युक्त हास्य और व्यंगपूर्ण शैली उपस्थित की। भावों को व्यक्त करने में आपकी लेखनी सफलता पूर्वक चलती थी।

द्विवेदी युग

लेखकों की बाढ़ ने व्याकरण की अत्यधिक अवहेलना आरम्भ करदी—इसी को रोकने के लिये मानो आचार्य द्विवेदी जी का प्रादुर्भाव हुआ यह युग भाषा के परिमार्जन का था। उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका द्वारा यह कार्य्य किया। द्विवेदी जी ने भाषा के शुद्ध व्याकरण सम्मत होने पर विशेष बल दिया। इनके समय में विषय का भी विस्तार हुआ। उपयोगिता के साथ साथ ज्ञान विस्तार की ओर प्रवृति आई। उनकी प्रेरणा से ऐतिहासिक पुरातत्व सम्बन्धी एवं आलोचनात्मक लेख लिखे गये, दूसरी भाषा से गम्भीर विषयों के निबन्धों का अनुवाद हुआ, इससे भी साहित्य की श्री वृद्धि हुई और कुछ विचार शीलता जागृत हुई।

द्विवेदीजी के वात्सल्यमय प्रोत्साहन के कारण बहुत से नये लेखक भी प्रकाश में आये और कुछ ने नवजागरण की चहल-पहल में स्वयं ही छोटे छोटे निबन्ध लिखना प्रारम्भ कर दिया। स्वयं द्विवेदीजी के अतिरिक्त उस युग के लेखकों में अध्यापक पूर्णसिंह पं० गोविन्द नारायणसिंह पं० माधव प्रसाद मिश्र, पं चन्द्रशेखर शर्मा गुलेरी, बाबू गोपालदास गहमरी, बाबू ब्रजनन्दन सहाय, पं० पद्मसिंह शर्मा, स्वामी दयानन्द सरस्वती, गणेश शङ्कर विद्यार्थी, रायकृष्णदास, मोहनलालविष्णुलाल पण्ड्या, काशीनाथ खत्री, भीमसेन शर्मा प्रभृति मुख्य हैं।

बाबू श्याम सुन्दरदास तथा आचार्य रामचन्द शुक्ल ने भी द्विवेदी जी के समय में ही लिखना प्रारम्भ किया था, तथापि वे उनके ऋणी नहीं थे। वे स्वयं ही प्रभाव के केन्द्र थे। गम्भीर विषयों को सरल बनाने में बाबूजी बड़े ही सिद्ध हस्त थे। इनके विषय प्राय. साहित्यिक और सांस्कृतिक रहे।

आपने हिन्दी भाषा को आधुनिक सभ्यता की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने में बहुत कुछ योग दिया है। विषय गम्भीर्य के कारण आपकी शैली में कहीं कहीं कुछ क्लिष्टता आ गई है, पर वह अपने पाठकों के मानसिक धरातल को पहुंचने का प्रयास करते थे। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के द्वारा की हुई बाबूजी की हिन्दी की सेवाएं चिरस्मरणीय हैं। मिश्र बन्धुओं एवं श्री गुलाबरायजी ने भी उसी काल में लिखा, किन्तु वे भी द्विवेदीजी के ऋणी न थे। इस युग के लेखकों में विचारात्मकता का प्राधान्य रहा। किन्तु वह विचारात्मकता सूक्ष्मता और गहराई न प्राप्त कर सकी। कुछ में भावात्मकता का भी पुट था।

आधुनिक युग

पं० रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धक्षेत्र में पदार्पण करने से निबन्ध साहित्य में एक नया जीवन आया। द्विवेदी युग में विषय विस्तार और भाषा परिमार्जन तो पर्य्याप्त हुआ, किन्तु इस काल में उतना विश्लेषण और गहराई में जाने की प्रवृत्ति न उत्पन्न हो सकी। आचार्य शुक्लजी के मनोवैज्ञानिक निबन्ध बेकन के निबन्धों से टक्कर ले सकते हैं, और साथ ही उनसे हास्य व्यंग की भी झलक दृष्टि आती है, जो उन्हें गुलाब रायजी के शब्दों में "लोहे के चने" से बचाये रखती है।

आचार्यजी के गम्भीर निबन्ध चिन्तामणि के दो भागों में संगृहीत हैं। उनमें भावों के विश्लेषण से सम्बन्ध रखने वाले उच्चकोटि के विचारात्मक और साहित्यक निबन्ध हैं, एवं कुछ व्यवहारिक आलोचना के हैं। 'लज्जा और ग्लानि" 'साधारणी करण' तथा 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तीनों प्रकार के क्रमशः उदाहरण हैं।

शुक्ल जी के निबन्धों में शैली का ही व्यक्तित्व है। विषय पर शैली के व्यक्तित्व की छाप होने के कारण उनके लेख निबन्ध की कोटि में आते हैं, शुक्ल जी ने कहा है, "किसी भाषा की अभिव्यञ्जना शक्ति का पता निबन्ध से लगता है।" पर बेकन कहता है, "निबन्ध बहुत ही हल्का साहित्य है।' शुक्ल जी विचारनिष्ठ निबन्धों को सारे साहित्य की कसौटी मानते हैं। इस में विविध विषयों का ज्ञान, दर्शन आदि सब बीच बीच में आ जाते हैं।

आधुनिक युग के अन्य लेखकों में डा० पीतम्बर दत्त बड़थ्वाल, पदुमलाल पन्नालाल बख्शी, माखनलाल चतुर्वेदी, इलाचन्द्र जोशी, जयशङ्कर प्रसाद

निराला, वाजपेयी, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, जैनेन्द्र, डा० नगेन्द्र, डा० सत्येन्द्र, डा० कन्हैयालाल सहल, और महाराज कु० डा० रघुवीर सिंह आदि उल्लेखनीय हैं. इन महानुभावों के निबन्ध अधिकांश में आलोचनात्मक तथा साहित्यिक हैं । इन में शैली का ही व्यक्तित्व है, निबन्धों में वैयक्तिकता की दृष्टि से सियाराम शरण गुप्त तथा सुश्री महादेवी वर्मा, के निबन्ध अति उच्चस्थान पाते हैं । डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं डा० वासुदेव शरण अग्रवाल आदि लेखकों ने सांस्कृतिक विषय भी लिये हैं। म० कु० रघुवीर सिंह ने ऐतिहासिक विषयों को कुछ भावावेश के साथ अपनाया है और जैनेद्र जी की दृष्टि दार्शनिकता के साथ समाज की ओर गई है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि हिन्दी का निबन्ध साहित्य अन्य अंगों की भांति समृद्ध होता जा रहा है। परन्तु इस युग में समीक्षात्मक लेखों का अधिक प्रचलन रहा है। शुक्ल जी के उपरान्त उनकी परिपाटी पर लिखे गये लेखों का अभी तक अभाव ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी निबंध साहित्य अभी वस्तुत: पूर्णता की ओर अग्रसर नहीं हुआ।

जीवनी, आत्मकथा पत्रादि:—

पोप ने जो कहा है कि मनुष्य के अध्ययन का विषय मनुष्य है (The proper study of man is man.") यों तो सारा साहित्य ही मनुष्य का अध्ययन है, किन्तु जीवनी और आत्म-कथाओं में वह अध्ययन सत्य और वास्तविकता की गहरी छाप लेकर आता है। अंग्रेजी में डिकन्स के "डेविड कोपर फील्ड" और अज्ञेय जी का "शेखर एक जीवनी" की भांति कुछ उपन्यास भी जीवनी के रूप में लिखे जाते हैं। पर उनमें रचनात्मक कल्पना का अधिक पुट रहता है।

जीवनीकार न तो उपन्यासकार ही है और न इतिहासकार ही। इतिहास में व्यक्ति देश का अंग होकर आता है पर जीवनी में मुख्यतः व्यक्ति को ही मिलती है, उसके सहारे देश अथवा संस्था का इतिहास भले हो आ जाय। जैसे डा० श्यामसुन्दरदास की आत्मकथा से नागरी प्रचारिणी सभा का इतिहास सम्बन्ध है, एवं महात्मा गान्धी, पंडित नेहरू और लाला लाजपतराय आदि की जीवनियों में हम राजनीतिक इतिहास का अध्ययन कर सकते हैं।

जीवनी घटनाओं का अङ्कन नहीं वरन् चित्रण है। वह साहित्य की विधा है और उसमें साहित्य और काव्य के सभी गुण हैं। वह एक मनुष्य के

अन्तर और बाह्य स्वरूप का कलात्मक निरूपण है। गुलाबराय के शब्दों में जीवनी लेखक अपने चरित्रनायक के अन्तर बाह्य स्वरूप का चित्रण कलात्मक से करता है। इस चित्रण में वह अनुपात और शालीनता का पूर्ण ध्यान रखता हुआ, सहृदयता, स्वतन्त्रता और निष्पक्षता के साथ अपने चरित्र नायक के गुण दोषमय सजीव व्यक्तित्व का एक आकर्षक शैली में अध्ययन करता है।

जीवन चरित्र की दो विधाएं हैं। जीवनी और आत्मकथा जीवनी कोई दूसरा लिखता है और आत्म कथा स्वयं लिखी जाती है। पं० रामनरेश त्रिपाठी की "मालवीय जी के साथ तीस दिन" इन दोनों के बीच की वस्तु है। सामग्री सीधी मालवीय जी से ली गई है, लिखा है दैनिकी रूप में पं० रामनरेश त्रिपाठी ने।

आत्मकथा में साधारण जीवन चरित्र से कुछ विशेषता होती है। आत्मकथा लेखक जितना अपने विषय में जानता है, जीवन चरित्र लिखने वाला कदापि नहीं जान सकता। किन्तु इसमें एक तो आत्मश्लाघा की स्वाभाविक प्रवृत्ति से बचने के लिए सचेष्ट रहना पड़ता है और दूसरे किसी के साथ शील संकोच आत्मप्रकाश बाधक बन जाता है।

आत्म कथाएं कई रूप में हो सकती हैं (१) सम्बन्ध रूप में जैसे महात्मा गान्धी की आत्मकथा अथवा डा० श्यामसुन्दर दास की आत्म कहानी।

(२) स्फुट निबन्धों के रूप में जैसे सियाराम शरण जी के "बाल्यस्मृति" और "झूठ सच" आदि लेख। महादेवी जी के "अतीत के चलचित्र" और "स्मृति की रेखाएं" नाम की कृतियों के लेख आत्मकथा और निबन्ध के बीच की विधाएं हैं। इनमें घटना का अंश थोड़ा है और उससे सम्बन्धित भाव और विचार कुछ अधिक मात्रा में हैं।

पाश्चात्य देशों में जीवनी साहित्य की बहुत उन्नति हुई है। हिन्दी जीवनी साहित्य का आरम्भ "चौरासी वैष्णवों की वार्ता" और "भक्त माल" तथा प्रियदास जी द्वारा की हुई उस टीका से आरम्भ होता है। प्राचीन काल में 'बुद्ध चरित्र' आदि चरित काव्य लिखे गये। हरिश्चन्द्र युग में भी कथात्मक साहित्य सृजन का प्रयत्न हुआ था श्री प्रतापनारायन मिश्र की आत्मकथा अधूरी रही, किन्तु गोस्वामी का प्रयत्न अधिक सफल हुआ।

अब धीरे धीरे हिन्दी का जीवनी साहित्य बढ़ता जा रहा है। मौलिक बाल कथाएं भी लिखी जा रही हैं। जैसे—श्रद्धानन्द जी द्वारा लिखित

'कल्याण मार्ग का पथिक' और भवानी दयाल द्वारा लिखित "एक प्रवासी की आत्म कहानी" श्री वियोगी हरि की आत्मकथा 'मेरा जीवन प्रवाह' के नाम से निकल चुकी है। और माधव प्रसाद मिश्र की 'विशुद्ध चरितावली' बा० शिव नन्दन सहाय द्वारा लिखित बा० हरिश्चन्द्र जी का जीवन चरित, तुलसीदास का जीवन चरित, और चैतन्य महाप्रभु का जीवन चरित एवं डा० राजेन्द्र प्रसाद की आत्मकथा, 'तिब्बत में तीन वर्ष' और 'सोवियत भूमि' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। उन्नीसवीं शताब्दी की मौलिक जीवनियों में पं० रामनरेश त्रिपाठी द्वारा रचित "मालवीय जी के साथ तीस दिन" का महत्वपूर्ण स्थान है।

पत्र-साहित्य:—पत्रों का स्थान एक प्रकार से आत्मकथा में ही आता है। अन्तर केवल इतना ही है कि आत्मकथा में व्यक्ति का इतिहास सम्बद्ध होता है, पत्रों में कुछ असम्बद्ध सा रहता है। पत्र-साहित्य का सबसे बड़ा महत्व यह है कि उसके द्वारा हमें लेखक के सहज व्यक्तित्व का पता चल जाता है। उस में हमें बने ठने सजे सजाए मनुष्य का चित्र नहीं वरन् एक चलते फिरते मनुष्य का सजीव चित्र प्राप्त हो जाता है। लेखक के वैयक्तिक सम्बन्ध उसके मानसिक और बाह्य संघर्ष तथा उसकी रुचि और उस पर पड़ने वाले प्रभावों का हमें पता लग जाता है। पत्रों में कभी कभी तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, या साहित्यिक इतिहास की झलक मिल जाती हैं।

साधारण साहित्य और पत्र-साहित्य में केवल इतना अन्तर है कि साधारण साहित्य में भाव प्रवाहक के व्यक्तित्व का ध्यान नहीं रक्खा जाता और न उससे कोई निजी सम्बन्ध होता है। पत्र लेखक को अपने भाव ग्राहक के व्यक्तित्व और उसकी संवेदन शीलता का ध्यान रहता है। उसी के अनुकूल वह अपने पत्र को बनाता है। पत्र की स्थिति भी निबन्ध की भांति मुक्तक काव्य की सी होती है। वे स्वतः पूर्ण होते हैं।

हिन्दी में पत्र साहित्य का बहुत अभाव है क्योंकि हमारे यहां के प्रकाशकों और संग्रहकर्ताओं ने इस ओर ध्यान नहीं दिया है। अभी जो थोड़ा बहुत साहित्य मिलता है वह नगण्य है। एक दो उपन्यास जैसे उग्रजी के 'चन्द हसीनों के खतूत' पत्रों के रूप में लिखे गये हैं। अभी तक के प्रकाशित साहित्य में महात्मा गान्धी के पत्र, पं० नेहरु के पत्रों का अनुवाद, डा० धीरेन्द्र वर्मा के पत्र, तथा सुमन जी के "भाई के पत्र" भी उल्लेखनीय हैं, पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के पत्र भी उल्लेखनीय हैं। जैनेन्द्र जी के कुछ साहित्यिक पत्र आंशिक रूप में प्रकाशित हुए हैं।

(ङ) हिन्दी आलोचना

आलोचना का अर्थ है देखना और समालोचना का सम्यक् आलोचना— अर्थात् भली प्रकार देखना अंतर्पटल और बाहिर पटल का सम्यग् निरीक्षण समालोचना है। साहित्य की विभिन्न परिभाषाओं में सर्व श्रेष्ठ परिभाषा मैथ्यूआर्नल्ड की है कि "साहित्य जीवन की व्याख्या है"। इस पर आचार्य श्यामसुन्दर दास ने लिखा है कि यदि ऐसा है तो आलोचना इस व्याख्या की भी व्याख्या है।

कभी २ आलोचना संकुचित अर्थ में आया करती है अर्थात् छिद्रान्वेषण" में आलोचना का दुष्प्रयोग किया जाता है—पर वास्तव में ऐसा करना आलोचना के उद्देश्य से हटना है। इसका सम्यगर्थ है "गुण दोष विवेचन"। कभी २ अंग्रेजी के Review अर्थ में भी समालोचना का प्रयोग होता है। श्रीकृष्णलाल ने "साहित्य समीक्षा" नाम दिया है जिसका अर्थ वही Review अथवा साहित्य समावलोकन है।

इस प्रकार की समीक्षा का आरम्भ हिन्दी साहित्य में द्विवेदीजी ने किया। अब आलोचना का अर्थ सौन्दर्य प्रत्यक्षीकरण माना जाता है। आलोचना साहित्य के अन्तस में प्रवेश करके इस आन्तरिक सौन्दर्य को दिखाता है। डा॰ रामकुमार वर्मा ने कहा है आलोचना सौन्दर्य के दृढ़तम रहस्यों की खोज करती है।

साहित्य का आत्म निरीक्षण है समालोचना इससे साहित्य का मार्ग निर्धारित होता है। वाटिका में जो माली का स्थान है, वही साहित्य में समालोचना का है। साहित्य जहां अमृत का काम करता है वहां विष का भी कर सकता है अच्छे समालोचक हमें अमृत और विष के प्रभाव वाले साहित्य को पहचानने में सहायता देते हैं। आलोचक विश्वस्त साथी है जो हमें मार्ग बताता है, सत्साहित्य को प्रोत्साहन देता है और गन्दे को उखाड़ फेंकता है। आलोचक से लेखक, पाठक, विद्यार्थी और जनता सभी को लाभ पहुंचाता है।

कुछ लोगों का मत है कि आलोचकों से नये साहित्य के निर्माण में बाधा पहुँचाती है। पर यह विश्वास ठीक नहीं। समालोचना स्वयं साहित्य है, बाधक तत्त्व प्रकारान्तर में साधक बन जाता है। पर आलोचना निष्पक्ष और उत्तम कोटि की होते हुए भी साधक बनकर सत्साहित्य को प्रोत्साहन देता है।

आलोचना करने की प्रतिभा जन्म जात होती है। समालोचना सदैव सोच समझ कर करनी चाहिये, आलोचक को थोड़ी सी भूल से बड़ा भारी अनर्थ अर्थात् साहित्य को धक्का पहुंचने की संभावना रहती है। रागद्वेष से रहित होकर नीर क्षीर विवेक होना चाहिये। आलोचक के लिये निष्पक्षभाव तथा गुण ग्राहकता अनिवार्य गुण है। उसके लिये श्रद्धा भी नहीं तो सहानुभूति आवश्यक है। सहृदयता तथा भावुकता के अभाव में आलोचक कवि या लेखक की आत्मा को नहीं समझ सकता।

आलोचना के भेदः—आलोचना की दो प्रमुख रीतियां हैं गवेषणात्मक (वैज्ञानिक) प्रणाली और निर्णयात्मक प्रणाली।

गवेषणात्मक प्रणाली के अन्तर्गत—ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक और चरित्रात्मिक आलोचना पद्धति प्रचलित है और निर्णयात्मक समालोचना में आदर्शनात्मक, तुलनात्मक और अध्ययनात्मक पद्धति।

१ ऐतिहासिक प्रणाली:—जब आलोच्य रचना पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया जाता है और राजनैतिक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक दशाओं तथा प्रभावों का साहित्य की ऐतिहासिक परम्पराओं के साथ रचना का सामञ्जस्य स्थापित किया जाता है तब इस पद्धति का प्रयोग किया जाता है।

२. मनोवैज्ञानिक प्रणाली—जब आलोच्य रचना को आलोचना में मनोवैज्ञानिक ढ़ग से लेखक का अन्तर्वृतियों या अन्त प्रकृति की छानबीन की जाती तब इस प्रणाली का प्रयोग किया जाता है।

३. आध्यात्मिक प्रणाली: जब आलोचक आलोच्य रचना की सूक्ष्म दृष्टि से आलोचना करता है अर्थात् उसके भीतर प्रवेश कर निरीक्षण करता है, तब आध्यात्मिक प्रणाली का प्रयोग होता है।

४. चारित्रिक प्रणाली:—इसमें नैतिक नियमों या तत्वों की विवेचना का प्राधान्य रहता है। समालोचक आलोच्य रचना के चरित्र चित्रण को देखकर इसमें प्रतिबिम्बित लेखक के चरित्र की आलोचना करता है।

५. आदर्शनात्मक प्रणाली:—इस प्रणाली की आलोचना में आदर्शवाद को प्रधानता देकर आलोच्य रचना की परख एक आदर्श रचना की कसौटी पर की जाती है। उसी के अनुसार उसका मूल्य निर्धारित किया जाता है।

तुलनात्मक पद्धति: —जब आलोच्य रचना की तुलना किसी दूसरी रचना से की जाती है, तब इस पद्धति का प्रयोग किया जाता है।

अध्ययनात्मक प्रणाली: - जब रचना के सभी अङ्गों पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करके उसके गुण और दोषों एवं सभी विशेषताओं पर प्रकाश डाला जाता है तब अध्ययनात्मक प्रणाली कहलाती है।

पहले आलोचक गुण दोष मात्र लेकर आलोचना करते थे सुसिमूलक आत्मा की आलोचना नहीं थी। पाश्चात्य आलोचक के सम्पर्क से मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पूर्ण आलोचना होने लगी आलोचक ने भावपक्ष को पहिचानना सीख लिया इसी कारण अब वह हमारे साहित्य का अति प्रौढ़ अंग हो गया है।

पहली आलोचना रूढ़िवादी थी पुराने मापदण्डों को लेकर चलती थी आज की आलोचना सिद्धान्तों की परवा न करके भावपक्ष को देखती है। लक्षण ग्रन्थ तो साहित्य के साथ बनते हैं पुराने नहीं चलते, साहित्य दर्पण आदि के अनुसार आज की कामायनी कैसे परखी जा सकती है।

हिन्दी में आलोचनात्मक विचारों के लिखने का प्रारम्भ कदाचित् भक्तमाल के समय से हुआ होगा। इसमें कवियों के सम्बन्ध में यत्र तत्र विचार व्यक्त किये गये हैं। खड़ी बोली के विकास के साथ २ आलोचना की वृद्धि हुई। भारतेन्दुजी के प्रयत्न से आलोचना का कुछ स्वरूप स्थिर हुआ, उन्होंने स्वयं पत्र-पत्रिकाओं में सामयिक लेख लिखा कर आलोचना का मार्ग निर्देशन किया। इस युग से पं० बदरीनारायण चौधरी ने साहित्यिक आलोचना का रूप दर्शाया।

द्विवेदी का युग आलोचना का दूसरा काल समझना चाहिये। द्विवेदीजी ने आलोचना का विस्तृत मार्ग खोल दिया पर भाषा की शुद्धता पर विशेष बल देने के कारण इनकी आलोचना भाषा की दोषान्वेषण प्रणाली तक सीमित रही। हाँ इसी युग में मिश्र बन्धुओं ने गम्भीर विद्वतापूर्ण और पांडित्य पूर्ण तर्कमयी शैली में तुलनात्मक विवेचना का रूप उपस्थित किया। पं० पद्मसिंह शर्मा ने इसमें व्यंगात्मक पुट लगाकर प्रशंसा व निन्दा युक्त आलोचना लिखी। उनकी भाषा उछलती हुई चलती है।

इसके उपरान्त नवीन युग के श्रीकृष्ण बिहारी ने देव व बिहारी नाम से एक सुन्दर आलोचना की पुस्तक उपस्थित की जिसमें शिष्टता वर्ती गई है। फिर श्रीदीनजी और बाबू श्यामसुन्दरदास की विषद और विस्तृत आलोचनाएँ प्रकाशित हुईं आपने आलोचना के सिद्धान्तों पर भी प्रकाश डाला। फिर पं० रामचन्द्र शुक्ल का आलोचना क्षेत्र में पदार्पण हुआ। उन्होंने भाव, अनुभूति, प्रवृति, रस, भाषा और अलङ्कार आदि सभी रूपों पर पर्याप्त विचार किया है। शुक्लजी के सूर तुलसी और जायसी पर लिखे आलोचनात्मक ग्रन्थ विशेष महत्वपूर्ण हैं।

उनकी उन समीक्षाओं ने आलोचना साहित्य को एक नया मार्ग दिखाया गवेषणात्मक आलोचना का सूत्रपात यहीं से हुआ।

पाश्चात्य आलोचना से प्रभावित आधुनिक युग के समालोचकों में शान्तिप्रिय श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय, श्री राजदुलारे बाजपेयी, इनके अतिरिक्त श्रीयुत् बख्शीजी, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी डा० रामकुमार वर्मा डा० नगेन्द्र, डा० रामविलास शर्मा श्री इलाचन्द्र जोशी, पीताम्बर दास बड़थ्वाल, डा० सत्येन्द्र, जोशीजी, श्री प्रभाकर माचवे तथा रामरतन भटनागर आदि उल्लेखनीय हैं। श्रीयुत् गुलाबराय का इस दिशा में मार्ग प्रदर्शन स्तुत्य कार्य रहा। आपकी पत्रिका "साहित्य सन्देश" आलोचना क्षेत्र में सुन्दर दिग्दर्शन कर रही है। यद्यपि इस क्षेत्र में भी अनावश्यक निन्दा और अत्यधिक प्रशंसा करने वालों की कमी नहीं है, तथापि हिन्दी साहित्य में सरसमालोचक भी सतर्कता से आलोचना कार्य को आगे बढ़ा रहा है।

गद्य-साहित्य

गद्य की पुरानी रचना थोड़ी बहुत सं० १४०० के आस पास जो गोरख पंथी ग्रन्थों में मिलती है वह ब्रज भाषा गद्य है। गद्य लिखने की परिपाटी का सम्यक् प्रचार न होने के कारण ब्रज भाषा गद्य का विकास नहीं हो पाया। देश के विभिन्न भागों में मुसलमानों के फैलने तथा दिल्ली के दरबारी शिष्टता के प्रचार के साथ दिल्ली की खड़ी बोली शिष्ट समुदाय के परस्पर व्यवहार की भाषा हो चली थी और कभी २ साहित्य में भी इसका प्रयोग हो जाता था। सं० १८६० में फोर्ट विलियम कालेज कलकत्ता के हिन्दी उर्दू अध्यापक जान गिल क्राइस्ट ने हिन्दी और उर्दू में अलग २ देशी भाषा गद्य पुस्तकें तैयार कराने की व्यवस्था की, इस प्रकार खड़ी बोली गद्य की स्वतन्त्र रचना प्रारम्भ हो चली थी। परन्तु खड़ी बोली गद्य को आगे बढ़ाने का श्रेय चार महानुभावों को है—मुन्शी सदासुख लाल, सैयद इंशा अल्ला खाँ, लल्लूलाल और सदल मिश्र। ये चारों लेखक सं० १८६० के आस पास हुए *

(१) मुंशी जी ने हिंदुओं की शिष्ट बोल चाल की भाषा ग्रहण की, उर्दू से अपनी भाषा नहीं ली। (२) इंशा ने उदय भान चरित्र या रानी केतकी की कहानी लिखी जिससे स्पष्ट है कि वे अपनी भाषा को तीन प्रभावों से मुक्त रखने को सतर्क रहे हैं अरबी फारसी आदि बाहरी बोलियों के शब्द, ब्रज व अवधी के शब्द और संस्कृत शब्दों का मिश्रण उनका उद्देश्य ठेठ हिन्दी लिखना था। (३) लल्लू लाल आगरे के रहने वाले गुजराती ब्राह्मण थे, यह संस्कृत और उर्दू भी कुछ जानते थे—इनके द्वारा रचित प्रेम सागर में अनजान में फारसी या तुरकी शब्द प्रयोग हो गये हैं। इनकी भाषा कृष्णो पासक व्यासों की सी ब्रज रंजित खड़ी बोली है। इन्होंने उर्दू, खड़ी बोली हिन्दी और ब्रज भाषा तीनों में गद्य की पुस्तकें लिखीं। (४) सदल मिश्र बिहार के रहने वाले और फोर्ट विलियम कालेज कलकत्ता में अध्यापक थे मुंशी सदासुख लाल की भांति इन्होंने भी अधिकारियों की प्रेरणा से खड़ी बोली गद्य की पुस्तक 'नासिकेतोपाख्यान' लिखी। पर इनकी भाषा में न तो लल्लू लाल की भांति ब्रज भाषा के रूपों की भरमार है न परंपरागत काव्य भाषा की पदावली का समावेश। इन्होंने व्यवहारोपयोगी खड़ी बोली लिखने का प्रयास किया है, फिर भी उसमें ब्रज भाषा और अरबी बोली के शब्द मिलते हैं जैसे 'फुलन्ह के बिछौने': 'चहुँदिसि' (ब्रज भाषा) और 'जुड़ाई' 'बाजन लागे' (पूर्वी बोली)।

*पं० रामचन्द्र शुक्ल का इति०—पृ० ४१४

इस प्रकार हिन्दी गद्य की प्रतिष्ठा होने पर 'बनारसी' और 'सुधाकर' आदि पत्रिकाएं निकलने लगीं और राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' आदि विद्वान हिंदी की रक्षा के लिये प्रयत्न बद्ध होगये। सं० १९१३ में शिक्षा विभाग में इन्सपेक्टर होने पर वह हिन्दी की विशेष सेवा कर सके। वे स्वयं हिन्दी की ऐसी पाठ्य पुस्तकें लिखने में लग गये जिनमें कुछ फारसी अरबी के शब्द भी आएं और पं० वंशीधर आदि अपने कई मित्रों को भी इस काम में जुटा दिया। यद्यपि राजा साहब को अपने हिन्दी विरोध का सामना करने के लिए बहुत सामना करना पड़ा परन्तु चलती ठेठ हिन्दी को आदर्श बनाए रखने के कारण उन्हें सफलता मिली। सं० १९१७ के पश्चात् अंग्रेज अधिकारियों का रुख देख कर उन्होंने अपनी भाषा का रूप उर्दू मिश्रित कर दिया परन्तु हिंदी अपना रूप आप स्थिर करने लगी। सं० १९१९ और १९४२ के बीच कई संवाद पत्र हिंदी में निकले जिनमें 'प्रजा हितैषी' और 'लोकमित्र' मुख्य हैं इन पत्रों की भाषा शुद्ध हिंदी होती थी।

कुछ अंग्रेज विद्वान् संस्कृत गर्भित हिन्दी की हँसी उड़ाने के लिये किसी अंग्रेजी वाक्य में उसी मात्रा के लैटिन शब्द भर कर प्रस्तुत करते, परन्तु आर्य भाषाओं का संस्कृत से घनिष्ट सम्बन्ध है अतः हिंदी उस साहित्यिक परम्परा को कैसे विछिन्न कर सकती थी। राजा लक्ष्मणसिंह के समय में ही हिन्दी गद्यकी भाषा अपने भावी रूप का आभास दे चुकी थी। अब आवश्यकता थी ऐसे शक्ति सम्पन्न लेखकों की जो अपनी प्रतिभा और उद्भावना के बल से उसे सुव्यवस्थित और परिमार्जित करते, इस कार्य की पूर्ति निमित्त सं० १९२५ में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का आविर्भाव हुआ।

मुन्शी सदासुख की भाषा पण्डिताऊ पन लिये थी, लल्लूलाल में ब्रजभाषा पन और सदल मिश्र में पूरबीपन। राजा लक्ष्मण सिंह और राजा शिवप्रसाद के भी दो भिन्न दृष्टिकोण थे—प्रथम हिंदी के विशुद्ध रूप के पक्षपाती थे और द्वितीय हिन्दी उर्दू भेद मिटाने के प्रयास में उर्दू की ओर ढलते गये ऐसी स्थिति में भारतेन्दु जी ने उदय होकर भाषा का शिष्ट और परिमार्जित रूप जनता के सामने रक्खा उनकी भाषा में न तो कठिन संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है और न क्लिष्ट तथा अप्रचलित विदेशी शब्दों का। उन्होंने उसे अत्यन्त चलताऊ मधुर और स्वच्छ रूप दिया। विदेशी शब्दों के साथ २ उन्होंने कहावतों और मुहावरों का भी सुन्दर प्रयोग करके हिन्दी को जातीय रूप दिया। भारतेन्दु जी के भाषा सत्कार की महत्ता को सब लोगों ने हार्दिक भाव से स्वीकार किया और वे वर्तमान हिंदी गद्य के प्रवर्त्तक माने गये।

भारतेन्दु जी प्रभाव के उनके समकालीन पं० प्रताप नारायण मिश्र, उपाध्याय बद्री नारायण चौधरी, डा० जगमोहन सिंह, पं० बालकृष्ण भट्ट आदि लेखकों का मण्डल तैयार हो गया और नाटक, उपन्यास, कहानी तथा निबंध रचनाओं के अतिरिक्त जीवन चरित और पत्र आदि सब प्रकार के साहित्य का प्रावल्य होने लगा और अनेक प्रकार की शैलियां बनने लगीं। समालोचना साहित्य का भी आरम्भ भारतेन्दु काल में हो गया था पर उसका वैभव गद्य के द्वितीय उत्थान में द्विवेदी जी ने बढ़ाया।

पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने व्याकरण की ओर ध्यान देकर गद्य का परिष्कार किया द्वितीय उत्थान के गद्य लेखकों में मिश्र बन्धु, पद्मसिंह शर्मा, पं० माधव प्रसाद मिश्र, बा० शिव नन्दन सहाय, रायकृष्णदास और रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

--x--

अन्य गद्य रचनाकार

प्रताप नारायण मिश्र	सं० १९१३	फुटकर कविताएं और नाटक 'कली-कौतुक' संगीत शाकुन्तल' हठी हम्मीर 'गो सङ्कट' 'कलि प्रभाव' तथा 'जुआरी खुआरी' प्रहसन।	इनकी विशेषता हास्य विनोदपूर्ण रचनाओं में दृष्टि आती है।
अम्बिकादत्त व्यास	सं० १९१५	फुटकर कविताएं।	यह प्राचीन संस्कृत काव्यों के प्राकृतिक वर्णनों के सस्कार मन में लिए हुये कविता करते थे कुछ नए ढंग की भी।
बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'	सं० १९१२	फुटकर कविताएं विशेष अवसरों पर नाटक—'भारत सौभाग्य', 'प्रयाग', रामगमन' और आनन्द कादम्बिनी'।	इनकी रचनाओं में राष्ट्र प्रेम की झलक मिलती है
ठा० जगमोहन सिंह	सं० १९१४	श्यामा स्वप्न', श्यामा सरोजिनी' 'और 'प्रेम सम्पत्ति लता'	आप संस्कृत के विद्वान और अंग्रेजी के जानकार थे एवं हिन्दी के प्रेम पथिक कवि और माधुर्य पूर्ण गद्य लेखक।
राधाकृष्ण दास	सं० १९२२	'दुखिनी बाला', महारानी पद्मावती' अथवा 'मेवाड़ कमलिनी' और 'महा-राणा प्रताप'।	
बालकृष्ण भट्ट	सं० १९०१	छोटे छोटे गद्य प्रबन्ध लिखे।	इनके गद्य में पूर्वी प्रयोग बहुत मिलते हैं और अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, शब्दों का भी बाहुल्य है।
बालमुकुन्द गुप्त	—	छोटे निबन्ध।	आपने व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग करके मानव मन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया।

कार्तिकप्रसाद खत्री	सं० १९०८	'रेल का विकट खेल' और कई बंगला उपन्यासों के अनुवाद ।	
मुकुटधर 'पाण्डेय'	—	फुटकर निबन्ध ।	
बदरीनाथ भट्ट	—	,, ,,	
पदुमलाल पन्नालाल बख्शी	—	,, ,,	
ला० श्रीनिवासदास	सं० १९०-	संयोगिता स्वयंवर', 'प्रहलाद चरित', 'तप्ता संवरण' 'रणधीर प्रेम मोहिनी' 'परीक्षा गुरु' उपन्यास ।	इनका नाटक 'रणधीर और प्रेम मोहनी' अंग्रेजी के नाटकों के ढंग पर लिखा गया है ।
पं० राधाचरण गोस्वामी	सं० १९१५	'सुदामा नाटक', 'सती चन्द्रावली', अमरसिंह राठौर' नाटक और कई बंगला उपन्यासों के अनुवाद ।	हरिश्चन्द्र मैगजीन को पढ़ते पढ़ते और सभा समाजों में सम्मलित होने से उन में देशभक्ति और समाज सुधार के भाव जागृत हुए थे ।
बा० तोताराम	सं० १९०४	'कीर्ति केतु' नाटक और स्त्री सुबोधिनी लिखी तथा 'केटो कृतान्त' अंग्रेजी नाटक का अनुवाद ।	
पं० केशवराय भट्ट	सं० १९११	'सज्जाद सुम्बुल' और 'शमशाद शोसन' नाटक ।	इनके नाटक वर्तमान जीवन को लेकर लिखे गये ।
पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या	—	'पृथ्वीराज चरित्र और 'रासो संरक्षा'	इन्होंने गिरती दशा में 'हरिश्चन्द्र पत्रिका' को सम्हाला ।
पं० भीमसेन शर्मा	रचनाकाल १९५०—५२	कई धर्म सम्बन्धी पुस्तकें और संस्कृत ग्रन्थों के हिन्दी भाष्य ।	

काशीनाथ खत्री	सं० १९०६	'ग्राम पाठशाला' और 'निकृष्ट नौकरी' नाटक तीन ऐतिहासिक रूपक–सिन्धु देश की राजकुमारियां, गन्नौर की रानी, लवजी का स्वप्न और 'बाल-विधवा सन्ताप' नाटक ।	
बा० अयोध्याप्रसाद खत्री	सं० १९४५ के लगभग रचना की	'खड़ी बोली आन्दोलन'	अपनी पुस्तक में इन्होंने खड़ी बोली पद्य के चार स्टायल कायम किये—मोलवी स्टायल, मुन्शी स्टायल, पण्डित स्टायल और मास्टर स्टायल ।
पं० चन्द्रशेखर मिश्र	भारतेन्दुजी के सम कालीन मित्र थे	फुटकर कविताएं ।	
सरदार पूर्णसिंह	(१८८१–१९३१)	फुटकर निबन्ध ।	आपके निबन्ध भावात्मक होते हैं ।
चण्डीप्रसाद 'हृदयेश'	—	कहानियां ।	आपकी भाषा अलंकृत और सरस है ।
गणेश शङ्कर विद्यार्थी	सं० १८९०	—	मातृ भाषा और मातृभूमि के अनन्य पुजारी थे–राजनैतिक आन्दोलन में आपकी रचनाओं से महत्वपूर्ण सहयोग मिला ।
पद्मसिंह शर्मा	—	निबन्ध ।	
स्वामी दयानंद सरस्वती	—	निबन्ध ।	आर्य समाज मतके प्रचार निमित साहित्य प्रचार किया हिन्दी भाषा को इनसे विशेष योग नहीं मिला ।

पठनीय पुस्तकों की सूची

हिन्दी कहानी और कहानीकार	डा. वासुदेव शरण अग्रवाल
कहानी और कहानीकार	मोहनलाल जिज्ञासु
हिन्दी की कहानी लेखिकाएँ और उनकी कहानियां	गिरिजादत्त शुक्ल
कथाकार प्रेमचन्द	मन्मथराय गुप्त
प्रेमचन्द की उपन्यास कला	जनार्दन प्रसाद
हिन्दी उपन्यास	शिवनारायण श्रीवास्तव
हिन्दी निबन्धकार	जयनाथ नलिन
हिन्दी गद्य मीमांसा	रमाकान्त त्रिपाठी
हमारे गद्य निर्माता	प्रेमनारायण टण्डन
हिन्दी साहित्य का इतिहास	लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
हिन्दी गद्य के युग निर्माता	जगन्नाथ प्रसाद शर्मा
हिन्दी भाषा और साहित्य	बाबू श्यामसुन्दर दास
साहित्य समालोचना	डा० रामकुमार वर्मा
हिन्दी आलोचनाएं	डा० सोमनाथ गुप्त
आधुनिक समीक्षा/कुछ समस्याएँ	देवराज
साहित्य परीक्षण	सत्यदेव चतुर्वेदी
समीक्षा और आदर्श	रांगेय राघव
साहित्यालोचन के सिद्धान्त	रामनारायण यादवेन्द्र
हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियां	
आदर्श आलोचना	दशरथ ओझा
साहित्य समीक्षा	देवेन्द्रनाथ शर्मा
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना	राम विलास शर्मा
आलोचनादर्श	रमाशंकर शुक्ल
काव्यानुशीलन	सुरेश चन्द्र गुप्त
साहित्य विवेचन	अमरनाथ कपूर
आधुनिक हिन्दी नाटक	डा० नगेन्द्र
हिन्दी नाट्य साहित्य का इतिहास	डा० सोमनाथ गुप्त
हिन्दी नाटक उद्भव और विकास	दशरथ ओझा
हिन्दी नाटकों का विकास	शिवनाथ

प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन .... जगन्नाथ प्रसाद शर्मा
प्रसाद के दो नाटक - समीक्षा .... कृष्ण नन्द गुप्त
नाटक की परख .... एस. पी. खत्री
भारतीय नाट्य शास्त्र .... पं० मोहनवल्लभ पन्त
नाट्य शास्त्र .... भरत मुनि

प्रसाद का नाट्यकला ....
चिन्तामणि दो भाग .... पं० रामचन्द शुक्ल

सातवां अध्याय

हिन्दी साहित्य के प्रमुख वादः—

साधारणतया यह माना जाता है कि कविता वादों की परिधि से दूर रह कर ही सुन्दर होती है पर यह भी सभी जानते हैं कि प्रचलित भावनाओं मतों व वादों का प्रभाव काव्य पर पड़े बिना नहीं रहता, एवं आंतरिक तथा बाह्य परिस्थितियों के परिवर्त्तनों से भी साहित्य अछूता नहीं रह सकता। इस विचार से हिन्दी साहित्य पर दृष्टिपात करने पर विदित होगा कि प्राचीनकाल से लेकर अब तक हमारे साहित्य पर विभिन्न वादों का प्रभाव पड़ा है। कुछ वाद काव्य की प्रगति एवं विचारधारा को लेकर खड़े हो गये कुछ काव्य की आत्मा सम्बन्धी विभिन्न मतों के कारण और कुछ कला के उद्देश्य के सम्बन्ध से प्रचलित हुए। इस प्रकार वादों की संख्या अगणित है उनमें से मुख्य वादों का परिचय दिया जाता है।

काव्य की प्रवृत्ति सम्बन्धी प्रमुख वाद रहस्यवाद, छायावाद; प्रगतिवाद, हालावाद और प्रतीकवाद आदि हैं। काव्य की आत्मा सम्बन्धी संस्कृताचार्यों के विभिन्न मत हैं जिनका उल्लेख अन्यत्र हो चुका है। कला के उद्देश्य सम्बन्धी अभिव्यंजना वाद, उपयोगितावाद कलार्थवाद और व्यक्ति वैचित्र्य वादादि प्रमुख धाराएं हैं जिनका विवरण 'साहित्य का उद्देश्य' शीर्षक प्रकरण में दिया जा चुका है। आदर्शवाद, यथार्थवाद' गांधीवाद और समाजवाद आदि चित्रण शैली के अन्तर्गत आते हैं जो लेखक के दृष्टिकोण के परिचायक हैं।

(क) रहस्यवाद—रहस्य भावना का जन्म कौतूहल और जिज्ञासा में हुआ। प्रकृति की अनेक रूपता और उस अनेक रूपता में एक आकर्षण और सम्मोहन ने मानव प्राणों को जिज्ञासु बना दिया। जीवन, जगत और जीव के रहस्य का निरूपण रहस्यवादी कवि अनेक प्रकार से करता है। रहस्यवादी का सर्वप्रथम लक्षण है आत्मानुभूति का स्वर। यह स्वर यहां तक बढ़ जाता है कि वह समाधि की कोटि वाले अनुभव तक पहुंच जाता है। द्वितीय लक्षण है संसार में एक परम हृदय को देखना और उसके चरणों में अपना सर्वस्व सौंपना। द्वैत और अद्वैतभाव के मधुर सम्मिश्रण से रहस्यवादी की अभिव्यक्तियाँ ओत प्रोत रहती हैं। दृश्यमान वियोग से पीड़ित और अदृश्य मिलन से रहस्यवादी अनुप्राणित रहता है। प्रेम सम्बन्धों में वह उसकी दूरी भी अनुभव करता है और निकटता भी—जैसे,

'दूर होकर भी निकट तुम निकट होकर भी अलक्षित'

प्रेमानुभूति में आत्मा विश्व प्रकृति में 'व्याप्त' प्रियतम के रंग में रंग जाती है, जैसे कबीर के दोहे में:—

"लाली तेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं चली, मैं भी हो गई लाल।।"

अणु परमाणु में उसी का सौंदर्य बिखरा दिखाई देता है, उषा की संध्याओं की क्रीड़ाओं में प्रणयी प्रणयिनी की आँख मिचौनी देखता है। प्रियतम की स्मृति उसे पीड़ित कर देती है।

डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसके द्वारा वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्चल सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है। वह सम्बन्ध इतना बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ अन्तर ही नहीं रहता।

रहस्यवादी भेद में अभेद देखता है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, "चिन्तन क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है कविता क्षेत्र में वही रहस्यवाद है।" सारे रहस्यवादी अद्वैतवादी होते हैं। एक ही वस्तु को सब में देखना अर्थात् असीम को ससीम में देखना हस्यवाद कहलाता है। कबीर का:—"जल में कुम्भ कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी" इसी बात का द्योतक है।

अद्वैतवाद में एक ही तत्व की प्रधानता है चाहे जड़ हो या चेतन। अद्वैतवाद ही रहस्यवाद की जड़ है अद्वैतवाद का सम्बन्ध चिन्तन अर्थात् मस्तिष्क से है पर रहस्यवाद का भावना से। रहस्यवाद में ससीम हृदय असीम हृदय को खोजने के लिये उत्कटता पूर्वक निकलता है यह वास्तव में ससीम और असीम का मिलन और विरह का खेल है।

हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक काल में रहस्यवादी जायसी और कबीर कवि हुए। जायसी ने नाना रूपात्मक जगत के भीतर परमात्मा का आभास देखा। पद्मावती को परमात्मा और रत्नसेन को जीव का रूप देकर जायसी ने अलौकिक रहस्योद्घाटन किया है। कबीर ने अन्तर से ब्रह्म प्रकट होने पर बल दिया है, वह माया को ब्रह्म प्राप्ति में बाधक मानते हैं। इसके पश्चात प० रामचन्द्र शुक्ल, डा० रामकुमार वर्मा आदि ने रहस्यवाद की मिलती जुलती विभिन्न परिभाषाएं दीं परन्तु छायावादी युग में आकर रहस्यवादी भावना प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी के काव्य में पाई गई।

महादेवी जी की दृष्टि में सारी सृष्टि ब्रह्म के स्नेह में आकुल और मग्न है। उन्हें प्रकृति अपने समान ही ब्रह्म की प्रेमिका प्रतीत होती है। आरम्भ से अंत तक कवयित्री जी रहस्यवाद को लेकर चली हैं, इसी प्रकार प्रसाद की कामायनी उनकी रहस्यवादी भावनाओं की द्योतक है।

"हे अनन्त रमणीय कौन तुम", से कवि का कौतुहल व्यक्त हो रहा है। कहते हैं इस संसार को चलाने वाले तुम कौन हो — यह बलवती इच्छा ही रहस्यवाद का कारण है।

रहस्यवादी कवियों को चार वर्गों में रक्खा जा सकता है: — १. प्रकृति पूरक रहस्यवादी जैसे पंत, त्रिपाठी तथा डा० रामकुमार वर्मा।

२. प्रेम पूरक रहस्यवादी जैसे जायसी, कबीर और नवीन।

३. भक्ति पूरक रहस्यवादी जो अपने प्रियतम को भगवान के रूप में मानकर उसकी व्यापक उपासना की साधना करते हैं, जैसे मीरा, कबीर, गुप्त और नवीन;

४. दार्शनिक चिन्तन पूर्वक रहस्यवादी जैसे दादू, प्रसाद, निराला और डा० रामकुमार वर्मा।

हिन्दी काव्य में आधुनिक युग का रहस्यवाद कवीन्द्र रवीन्द्र की रहस्यवादी कविताओं तथा वर्डस्वर्थ जैसे रोमांचक कवियों के प्रभावों द्वारा प्रसूत है। आधार पुराना रहा पर एक नए काव्य प्रासाद का निर्माण किया गया।

रहस्यवाद में आध्यात्मिक दृष्टि से आत्मानुभूति आराध्य से मिलने की भावना, तथा आत्मा और परमात्मा में निश्चल प्रेम की प्रगति—ये तीन बातें मुख्य रूप से दृष्टिगत होती हैं, जो मीरा, जायसी, कबीर आदि प्राचीन रहस्यवादी कवियों में पूर्ण रूपेण पाई जाती हैं। आधुनिक रहस्यवादी कवि साधक और आराधक के रूप में दृष्टि नहीं आता वह तो साधक के अनुभव की छाया या शैली पर उसी प्रकार की काल्पनिक व काव्यात्मक अभिव्यक्ति करता हैं।

(ख) छायावादः—द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता कविता के प्रतिक्रिया स्वरूप काव्य की एक नवीन शैली आरम्भ हुई जो भावात्मकता और पलायनवादिता को लिये हुए थी वह साहित्य में छायावाद के नाम से प्रसिद्ध हुई। द्विवेदी युग की घटनाएं केवल घटनाएं एवं कथाएं मात्र हैं, जो गद्य की भांति नीरस और शुष्क हैं इस इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया छायावाद है। महादेवी जी ने लिखा है कि "सूक्ष्म का स्थूल के प्रति विद्रोह छायावाद है।" काव्य की पुराना रूढ़ियों की शृङ्खलाएं तोडकर छायावादी काव्य की रचना हुई उसे स्वच्छन्दवाद कहना अनुचित न होगा। छायावाद में जीवन की समस्याओं से भागने की प्रवृत्ति हैं, इसलिये उसे पलायनवाद भी कहते हैं। प्रसाद लिखते हैं

"ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे धीरे।"

पन्त ने भी कहा है :—"यहां सुख सरसों दुख सुमेरु शान्ति केवल उसपार"

फिर देखिये निराला की पलायनवादिता:—

"हमें जाना है जग के पार"

परन्तु सारा छायावादी काव्य इस पलायनवादी भावों के दोष से लांछित नहीं हो सकता।

छायावादी कवि प्रकृति के रूप में अपनी छाया को देखता है। भावना की तल्लीनता में वह चेतन अचेतन के भेद को भूल जाता है। तल्लीनावस्था में वह चेतन से अचेतन तक पहुंच जाता है और उसे अचेतन भी चेतन सा प्रतीत होने लगता है। ब्रह्म को प्रकृति के रूपों में देखना आधुनिक रहस्यवाद है, जिसे छायावाद नाम से बोधित किया जाता है। प्राकृतिक दृश्यों या वस्तुओं से रहस्यात्मक प्रेरणा लेकर काव्य में डाल देना ही छायावादी का लक्ष्य और साध्य है। रहस्यवाद में आत्मा और परमात्मा ही विद्यमान है प्रकृति नहीं, प्रकृति कहीं आई भी है तो विराट सत्ता को व्यक्त करने को। परन्तु छायावाद में परमात्मा अनुपस्थित रहता है, प्रकृति को ही चेतन रूप में वर्णित किया जाता है। इसीलिये प्रायः छायावादी कविताओं में प्रकृति का कण २ मनुष्य की तरह भावना शील और सप्राण है। यों तो प्रकृति को जड़ माना जाता है, पर छायावादी कवियों ने उसे चेतन माना है। रहस्यवाद में प्रकृति का अस्तित्व ही नहीं है वहां प्रकृति ब्रह्म के सौंदर्य और उल्लास की प्रतीक है, जबकि छायावाद में प्रकृति का स्वतन्त्र अस्तित्व है और वह हमारे सुख दुख में समान रूप से भाग लेती है। छायावाद आत्म निष्ट (Subjective) कविता है परम्परावादी नहीं बल्कि अपनी सौंदर्यानुभूति की भावनाएँ व्यक्त करने के लिये छायावादी कवि नई २ उद्भावनाएें चुनते हैं।

शुक्लजी ने कहा है कि छायावाद काव्य की लाक्षणिक प्रतीकात्मक चित्रमयी शैली है, गांधीवाद का साहित्यिक स्वरूप छायावाद है। हिन्दी में छायावाद का जन्म विद्रोह से माना जाता है पूर्व कथनानुसार द्विवेदी युग की इतिवृतात्मक रचना के विरुद्ध भाषा, भाव, कला शैली छंद और कल्पना आदि सभी तत्वों में विरोध फूट पड़ा है। इन विद्रोही कवियों ने रूढ़िगत काव्य के बन्धनों को तोड़कर स्वच्छन्द रचना आरम्भ करदी–भाषा, भाव,छन्द–किसी पर भी नियन्त्रण नहीं रहा। यह विद्रोही कवि रहस्य की ओर उन्मुख न हो सके पर अपने प्रियतम की छाया में बैठकर सभी की छाया उसमें बता कर लोगों को आकर्षित करने लगे। अतः कुछ लोगों का मत है कि काव्य की छाया को पकड़ने वाले जानकर इन कवियों को व्यङ्ग में छायावादी नाम दिया गया किन्तु आगे चलकर इसने भाषा व साहित्य में जो सौन्दर्य प्राप्त किया वह अपूर्व है। साहित्य में अन्तर्जगत की ललित अभिव्यक्ति छायावाद के द्वारा प्राप्त हुई। कुछ दुर्बलताओं ने छायावादी कविताओं को दुरूह बना दिया पर उसका काव्य सौष्ठव अनुपम है।

छायावाद के प्रमुख कवि चार हैं:—

१. छायावाद को जन्म देने वाले—'प्रसाद'
२. छायावाद को मधुरता देने वाले—'पन्त'
३. छायावाद को मार्मिकता तथा संगीतात्मकता देने वाली—'महादेवी वर्मा'
४. ओजस्विता देने वाले 'निराला'

अन्य छायावादी कवियों में श्री रामकुमार वर्मा, शांतिप्रिय द्विवेदी, तारापांडे आदि उल्लेखनीय हैं। प्रसादजी की कामायनी छायावादी युग का सर्वोत्तम काव्य है।

(ग) प्रतीकवादः—छायावादी युग की प्रतीकात्मक अर्थात् संकेतात्मक कविता की शैली प्रतीकवाद के नाम से विख्यात हुई। अमूर्त के लिये मूर्त रूप देना प्रतीकवाद है छायावाद में इस प्रकार के प्रयोग बहुत मिलेंगे।

एक स्तर के विवरण की वास्तविकता का प्रदर्शन या प्रतिनिधित्व उसी प्रकार के दूसरे स्तर पर उपस्थित वास्तविकता के द्वारा जब किया जाता है, तब प्रतीकवादी कविता कहलाती है। पहले शब्दों का प्रयोग वाह्य रूपों के स्थान पर मानस दशाओं को व्यक्त करने के लिये हुआ। प्लेटो ने प्रतीकों का प्रयोग इसलिये किया कि किसी वस्तु के लिये यह बताना सरल है कि वह क्या है। हिन्दी में छायावादी युग की कविता में इस प्रकार के प्रयोग बहुत हैं, जैसे प्रसाद की कामायनी के आशासर्ग में—

"झंझा झकोर गर्जन था बिजली थी नीरद मालाएं"

इसी प्रकार निराला का "काँटों ने भी पहना मोती आँखों में भी आँसू आया"।

द्विवेदी युग में भी बदरीनाथ भट्ट, रायकृष्ण दास, मैथिलीशरण गुप्त आदि ने अन्योक्तियों में प्रतीक पद्धति का आश्रय लिया था। श्री बद्रीनाथ भट्ट के गीतों में जीव और ब्रह्म, आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध परिचित प्रतीकों में सफलता पूर्वक व्यक्त हुए हैं। प्रतीक पद्धति में 'अभिधा' के स्थान पर "लक्षणा" का प्रयोग और प्रस्तुत के स्थान पर अप्रस्तुत की स्थापना हुई है।

जीवन के बहिरंग और अन्तरंग को अपने अन्तर में देखने के फलस्वरूप नवीन युग का कवि प्रस्तुत चित्र की अनुभूति के लिये अपने अन्तर्लोक में छाया चित्र बनाने लगा, जिससे लाक्षणिकता का विधान हुआ। अपने हृदय

की लाक्षणिक योजना के भाव में रंगकर जब कवि व्यक्त जगत को देखने लगा तो कविता के संसार में बाह्य जगत के पदार्थ भाव लोक की संज्ञाओं के प्रतीक बन गये, जैसे: –'फूल' सुख का, शूल दुख का, आलोक ज्ञान का अथवा आनन्द का, तिमिर अज्ञान अथवा अवसाद का, उषा आरम्भ या उज्ज्वलता का और 'सन्ध्या' अवसान या विलास का। इन प्रतीकों के प्रयोग से भाषा की लाक्षणिकता में अभूतपूर्व सम्पन्नता आ गई और सूक्ष्म भावों की गहन अनुभूति की क्षमता के कारण कवि हृदय के सूक्ष्म अगोचर भाव मूर्त होकर अधिक प्रभावशाली हो उठे।

प्रगतिवाद:—छायावादी पलायन शीलता के स्थान पर जीवन सङ्घर्ष से जूझने की प्रवृति साहित्य क्षेत्र में आरम्भ हुई। प्रगतिवादी कवि में एक ऐसी नई समाज व्यवस्था को जन्म देने की आकुलता उत्पन्न हुई जिसमें व्यक्ति का सर्वोच्च विकास हो सके और समाजवादी अर्थ व्यवस्था अपनाई जा सके। प्रगतिवादी युग में एक प्रकार की नास्तिकता की भावना समा गई। ईश्वर में विश्वास न करके बुद्धि के बल पर ही सब कुछ करने में विश्वास हो गया। प्रगतिवाद परिवर्तन से प्रेम करता है, इसमें समष्टिवादिता की धारणा विद्यमान है। वस्तुत प्रगतिवाद काव्य की एक नई धारा है उसका एक निश्चित जीवन दर्शन है व उसका दृष्टिकोण शोषक वर्ग व शोषितों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने वाला तथा साम्प्रदायिकता का विरोध करने वाला है, इसमें भी लोक मंगल की एक भावना है। एक नव समाज नव संस्कृति का प्रतिस्थापन करने की इसमें चिन्ता विद्यमान है।

छायावादी काव्य में अति सूक्ष्मता आने पर प्रगतिवादी काव्य का जन्म हुआ जिसमें जीवन की नग्न समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया गया। छायावादी कवि का दृष्टिकोण था, 'कला कला के लिये' पर प्रगतिवादी का हो गया 'कला जीवन के लिये'।

प्रगतिवाद राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओं को चित्रित करने वाला सामूहिक रूप है इसमें केवल रोटी की पुकार है, जीवन के सत्य और सौन्दर्य के प्रति कोई भावना नहीं। जीवन में कलात्मक प्रवृति अथवा हृदय की कोमल भावनाओं के लिये इसमें कोई स्थान नहीं। इस प्रकार प्रगतिवाद भौतिकता का स्वरूप बनकर रोटी २ की पुकार मचाता हुआ मानव को सभी मानवीय भावनाओं से दूर ले जारहा है। साम्प्रदायिक प्रगतिवादी मार्क्स को ही बाबा समझकर उसी के अनुसार चलते हैं। विश्व के सभी साहित्य में सामाजिक

वैषम्य के प्रति विद्रोह का स्वर उठाने वाला सनातन रूप प्रगतिवाद है। विषमता को दूर करके "सर्वं भूतेष्वात्मौपम्येन"....भाव की स्थापना तो भारतीय संस्कृति में पहले से ही भरी हुई है; पर प्रगतिवादी साहित्य विध्वंसात्मक वृत्ति से विषमता दूर करना चाहता है, शांति से नहीं। "आग लगा दो" प्रगतिवादी का मोटो है। इस साहित्य में सृजन का स्वर नहीं पर मकान को गिराने में ही निर्माण की भावना निहित है।

प्रगतिवादी वर्गहीन समाज का निर्माण चाहता है जिससे शोषक और शोषित वर्ग न हो। इस साहित्य में राजनीति की प्रधानता है। विभिन्न राजनैतिक सिद्धान्तों का प्रतिबिम्ब प्रगतिवाद में रहता है। ऐसे प्रमुख राजनैतिक 'वाद' 'साम्यवाद' 'समाजवाद' और 'गांधीवाद' हैं

प्रगतिवादी साहित्य कविता, कहानी, उपन्यास आदि विभिन्न शैलियों में अभिव्यक्त हुआ है। प्रगतिवादी कवियों में दिनकर, अञ्चल, शान्तिप्रसाद द्विवेदी, रागेयराघव, तारा पांडेय, नागार्जुन, केदारनाथ त्रिलोचन गोपालसिंह, नैपाली का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। उपन्यासकारों कहानीकारों और आलोचकों में राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, पहाड़ी, डा० रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस धारा की रचनाओं में भाषा का परिष्कृत रूप मिलता है जो आधुनिक युग की बड़ी देन है।

(घ) **समाजवाद और साम्यवाद**:—समाजवाद और साम्यवाद राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों से उत्पन्न हुई प्रवृत्तियां हैं जो ईश्वर और आध्यात्मवाद की उपेक्षा करके "भूखे भजनन होहि गोपाल" के सिद्धान्त का अनुसरण करते हैं दोनों का कर्म क्षेत्र भौतिक सुख प्राप्त करने की सीमा तक सीमित है और दोनों ही समाज में विषमता मिटाकर दीन दुखियों को सुख मिलने के उपाय सोचते हैं फिर भी दोनों के मार्ग भिन्न हैं। समाजवाद पूंजीवाद का विध्वंस चाहता है, पूंजीवाद का आध्यात्म यदि भौतिक विकास है तो समाजवाद का ध्येय राजनीतिक विकास। समाजवाद हिंसा के पक्ष में नहीं पर लोक रक्षा के लिये वह शस्त्र चलाना अनुपयुक्त नहीं समझता। समाजवादी अग्नि को दाहक समझ कर छोड़ना नहीं चाहता, बल्कि उसे काम में लेकर उपयोगी बनाना चाहता है, समाजवाद के अनुसार निराशा से हट कर संघर्ष मनुष्य का कर्तव्य समझता है।

साम्यवादी विध्वंसात्मक प्रवृत्ति का है और हिंसात्मक साधनों से तुरन्त परिवर्तन करके साम्यवाद स्थापित करने के पक्ष में है।

गांधीवाद:—श्री हरीराम तिवारी के शब्दों में "कर्तव्य के प्रति आत्मीयता और सच्ची प्रेरणा गान्धीवाद या सर्वोदय वाद में पाई जाती है।" वास्तव में "गान्धीवाद" कोई साहित्यिक वाद नहीं। महात्मा गांधी के सिद्धांतों के आधार पर की गई रचना गांधीवादी कहलाती है विचित्र वादों की भांति गांधी वाद रचना में तर्क नहीं जिज्ञासा है। जिज्ञासा में बोध है और बोध हृदय की सहज प्रेरणा शक्ति है जिससे कि निष्ठा जाग्रत होती है।

गांधीवाद में न विकृति को स्थान है न कृत्रिमता को उसमें बाहर और सर्वत्र समानता है व्यक्ति के आन्तरिक विष (अहं) का नाश गांधीवाद से ही हो सकता है। गांधीवाद व्यक्ति और समाज के बीच में कोई भेद नहीं रखना चाहता। वैयक्तिक साधना ही सार्वजनिक साधना का स्वरूप ग्रहण करती समाजवादी शरीर में लीन है तो गांधीवाद ब्रह्म में लीन है बिना ईश्वर के गान्धीवाद एक पग भी नहीं रखना चाहता गांधीवाद संस्कृति है तो समाजवाद राजनीति।

समन्वय वाद:—का महत्व भी गांधीवाद से आंका जा सकता है। गांधीवाद स्वयं कष्ट सहन कर सकता है, पर दूसरों को कष्ट नहीं देना चाहता। एक आदर्श के वशीभूत होकर ईश्वर के भरोसे कार्य करना गांधीवाद का लक्ष्य

है, हिन्दी साहित्य में यह प्रवृत्ति बड़े २ लेखकों के ग्रन्थों में पाई जाती है।

(ङ) हालावादः -प्रगतिवाद को उपयोगितावाद एवं रोटी की पुकार से भिन्न जीवन को आनन्दमय देखने की प्रवृत्ति लेकर हरवंशराय बच्चन जैसे आशावादी कवि साहित्य क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। वे विश्व जीवन के चारों ओर आनन्द ही आनन्द देखते है, अथवा असीम आनन्द ही उनकी अक्षय मस्ती है। हाला, प्याला और मधुशाला' उनके लिये मानव जीवन का लक्ष्य है। अतः साहित्य की इस प्रवत्ति का नाम हालावाद पड़ा। बच्चन जी की निम्न-लिखित उक्तियों से हालावादी कवि के जीवन की मस्ती अभिव्यक्ति होती है:—

' बिना दिये जो मधुशाला को बुरा कहे वह मतवाला
पी लेने पर तो जायेगी पड़ उसके मुख पर ताला"

'मधुशाला'

जीवन की कठोर वास्तविकताओं ने कवियो को यथार्थवादी बनाया। जीवन में क्षुधा और तृप्ति में, काम और वासना में, दासता और स्वतन्त्रता में, यथार्थ और आदर्श में संघर्ष और द्वन्द है। व्यक्ति और समाज की पीड़ा को उन्माद अर्थात् मधु' की मस्ती में भुलाना हालावादी कवि का उद्देश्य था, जिसके अग्रणी 'बच्चन जी' हैं। वह जीवन के आघात प्रतिघातों से उठे चीत्कार को 'मधु' गीतों में छिपाना चाहते हैं। देश की पुरानी सांस्कृतिक परम्परा से प्रथक होकर बच्चन जी ने विदेशों से स्फूर्ति ली। ईरान के ज्योतिर्विद कवि उमर खय्याम एक वेदान्ती कवि था, उसने शराब, साकी, प्याला और मस्ती के प्रतीकों द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की 'व्यंजना' की थी—उसकी मस्ती भरी रुबाइयों का 'बच्चन' पर ऐसा प्रभाव हुआ कि उन्होंने भी उसे अपने काव्य चषक में भर कर हिन्दी साहित्य की स्थापना की। कवि की 'मधुशाला' ने समस्त संसार को घेर लिया। उनका मन्तव्य है कि हाला दग्ध हृदय को सान्त्वना देने वाली एक औषधि है: —

'मधु मरहम का मैं लेपन कर अच्छा करती उर का छाला'

'हरिकृष्ण प्रेमी' 'भगवतीचरण वर्मा' और 'एक भारतीय आत्मा' 'बच्चन' जी के अनुयायी हुए। पर हालावादी विचारधारा अल्प कालीन सिद्ध हुई। कवि का व्यक्तित्व विकासशील होने के कारण बाद में चिन्तन की ओर प्रवृत्त हो गया और हिन्दी काव्य जगत की विचार धारा द्रुतगति से पलटा खाने लगी।

प्रयोगवाद; - हिन्दी काव्य की आधुनिकतम प्रवृत्ति को प्रयोगवाद कहा जाता है। प्रयोगवादी काव्य बुद्धि प्रधान होता है और कवि पूर्ण निरंकुशता का प्रदर्शन करता है। कला पक्ष— छन्द, अलङ्कार शैली आदि में भी वह नए नए प्रयोग करता है, वैसे ही भाव-पक्ष में भी नवीन अभिव्यक्ति के प्रयोगो को कवि अपनाता है। अंग्रेजी साहित्य के टी० एस० इलियेट का का प्रभाव प्रयोगवादी कविताओं पर प्रधानतः दृष्टिगोचर होता है। अज्ञेय हिन्दी के प्रमुख कवियों में से हैं। धर्मवीर भारती' भुवनेश्वर 'मिश्र' आदि भी प्रयोगवादी कवि हैं। प्रयोगवादी कवि के मानस में 'असन्तोष' के स्रोत प्रवाहित है पर उन्हें दूर करने के साधनों के विषय में वह निश्चित नहीं— इसलिये क्या भावपक्ष क्या कलापक्ष काव्य के दोनो रूपों में वह प्रयोग करता रहता है। उसमें केवल बौद्धिक हलचल नहीं लक्षित होनी वरन नवीन छन्दों की उद्भावना और प्रक्रिया में वह पहले से अधिक स्वच्छन्दता और स्वतन्त्रता से काम लेता दृष्टि आता है। इनका रूप विधान और योजना नवीन रचनाओं से अलग न होकर उनका अंग बन गई है। यह नवीन छन्द योजना परम्परा के विरुद्ध आधुनिक विद्रोह का ही अंश है।

प्रयोगवाद का सूत्रपात प्रथम बार सप्तक (१६४३) और द्वितीय बार सप्तक (१६५१) से माना जाता है, यद्यपि इसके स्फुट उदाहरण दो तीन वर्ष पूर्व भी मिलते हैं। इन दोनों सप्तकों के कवि हैं:—

गजानन मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र, भारत भूषण, प्रभाकर माचवे, गिरिजा-कुमार माथुर, रामविलास शर्मा, अज्ञेय, भवानीप्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेशकुमार मेहता, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती। इनके अतिरिक्त चन्द्रकुंवर वर्त्वाल, केदारनाथ सिंह और सूर्यप्रताप आदि की गणना भी प्रयोगवादी कवियों में की जाती है।

आदर्शवाद और यथार्थवाद — साहित्यिक क्षेत्र में विद्वानों के दो दृष्टि कोण पाये जाते हैं। हमारे प्राचीन साहित्य में कवि एवं लेखकों की प्रवृति उपदेशात्मक रही, जिससे प्रत्येक बात वस्तु अथवा पात्रों को आदर्श रूप प्रस्तुत किया जाता था, परन्तु समय के प्रवाह में उपदेशात्मक प्रवृति इतनी बढ़ गई कि उपदेश और आदर्श नीरस प्रतीत होने लगे और साहित्यकार परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण करने के लिये प्रवृत हो गये इनमें से पूर्व कथित भाव धारा आदर्श वादी एवं द्वितीय यथार्थवादी कहलाई यथार्थवाद में जीवन की सामान्य परिस्थितियां मिलती हैं और आदर्शवादी शैली में असाधारण अभ्रान्त शैली की

की प्रचुरता दृष्टि आती है पर आदर्शवाद कोरी कल्पना नहीं। साहित्य समाज की वास्तविक स्थिति को चित्रित करते हुए हमारे सामने एक आदर्श उपस्थित करना चाहता है। केवल आदर्शवादी विचार धारा में वास्तविक स्थिति से पराङ्मुख रहने के कारण क्रियात्मकता का अभाव रहता है, और आदर्शों का उपदेश केवल कल्पना और विचार की वस्तु बन कर रह जाते है। आदर्श का पालन करना तभी संभव हो सकता है, जब वे आदर्श सामयिक स्थिति में घटित हो सकते हों। वस्तु स्थिति से आंख मींच कर किसी समाज या राष्ट्र को आदर्शवादी उपदेशों से प्रभावित करना सम्भव नहीं। विशेष कर वर्तमान बुद्धिवादी युग में कोरा आदर्शवाद मानव समाज को आदर्श रूप देने में सफल नहीं हो सकता।

इसके विपरीत यथार्थवाद का नग्न चित्रण भी समाज के लिये हितकर सिद्ध नहीं हो सकता। उसमें वास्तविकता की अति के कारण समाज का कलुषित रूप मानव के सामने चित्रित हो जाता है, जिससे पाठक के मन में साहित्य की प्रेरणा से उदात्त भावों की उत्पत्ति में सहायता मिलने के स्थान में कलुषित विचारों की छाया पड़ने लगती है।

यथार्थवादी कवियों की रचनाओं में यथार्थ जीवन की दरिद्रता और दुर्दशा के चित्र अत्यधिक मिलते हैं जो कभी कभी अरुचि भी उत्पन्न कर देते है। कुछ रचनाओं में कवि दैन्य के कुत्सित चित्र खींच कर उपदेश देना प्रारम्भ करते हैं; जिसका कारण विदेशी समाजवादी और क्रान्तिवादी साहित्य का अध्ययन है।

दूसरे, यथार्थता के प्रेमी कवियों के लिये कोई भी विषय काव्य के अनुपयुक्त नहीं होता। उन्होंने सम्पूर्ण जीवन को उसके सौंदर्य और कुरूपता के साथ स्वीकार किया है, इसीलिये ये निर्भीक होकर सचाई के साथ जीवन के गान गाते हैं। इस प्रवृत्ति से साहित्य का स्तर निम्न होकर वह अपने उच्च आदर्शों से च्युत हो जाता है। साहित्य का उद्देश्य है कि सत्य के स्वरूप को ऐसे मनोरम रूप में मानव के सम्मुख रक्खे, जिससे वह आकृष्ट होकर अपने एवं समाज के कल्याण निमित्त अग्रसर हो जाय। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये साहित्य का स्वरूप 'सत्यं, शिवं और सुंदरं" माना गया है। यथार्थ वादी कवियों की रचना में इस स्वरूप के तीन उद्देश्यों में से केवल प्रथम की पूर्ति हो पाती है।

इसीलिये मुन्शी प्रेमचन्द ने मध्यम मार्ग ग्रहण करके एक ऐसा वाद

निकाला जिसमें आदर्शवाद की अक्रियात्मकता और यथार्थ वाद के नग्न चित्रण से उत्पन्न होने वाले दोष न रहें। उन्होंने मनोरम रूप में समाज की राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति का स्वरूप चित्रित करके साथ ही हमारे सामने वह आदर्श भी उपस्थित कर दिये जिससे उस अवांछित स्थिति से छुटकारा पाया जा सके। उनके साहित्य का यह स्वरूप 'आदर्शोन्मुख यथार्थ वाद' के नाम से प्रचलित हुआ, और साहित्य जगत में अत्यन्त लोक प्रिय बना।

उनका प्रायः सारा साहित्य आदर्शोन्मुख यथार्थवादी है। दुखी और दग्ध जगत, तथा आनन्दपूर्ण स्वर्ग का एकीकरण साहित्य है, इसीलिये असत्य व अस्थिर घटना पर कल्पना की वाणी महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करती है इस तथ्य के अनुसार आदर्श और यथार्थ का समन्वय साहित्य के लिये मंगलमय होता है।

द्विवेदी युग तक आदर्श वादी कवियों का साहित्य भी सफल साहित्य रहा। भारतेन्दु जी, द्विवेदी जी, और गुप्त जी और शुक्ल जी आदि प्रतिभा सम्पन्न कलाकारों ने आदर्श वाद को भी इस ढंग से अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया कि चरित्र चित्रण की उत्कृष्टता से पाठक प्रभावित हुए बिना न रहा। पर बुद्धि वादिता के प्रभाव से युग ने पलटा खाया और प्रगति शील युग तक क्रान्तिकारी कवि यथार्थ वादी बन गये। 'दिन कर' 'अंचल' 'अज्ञेय' और 'अश्क' आदि की क्रान्तिकारी भावनाओं से साहित्य में यथार्थ वाद की धूम मच गई। परन्तु समाज के लिये हितकर और मानव में उदात्त भावनाओं को प्रस्फुटित करने में सहायक प्रेमचन्द जी और उनके अनुयायियों का आदर्शोन्मुख "यथार्थ वाद" ही हुआ।

पठनीय पुस्तकें:—

१ हिन्दी साहित्य के प्रमुख वाद और उनके प्रवर्तक—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
२. साहित्य समीक्षा
३. हिदी साहित्य का इतिहास— लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
४. कबीर का रहस्य वाद – डा० रामकुमार वर्मा

अष्टम अध्याय

रस-निरूपण

रस का सर्व प्रथम विस्तृत विवेचन भरत मुनि के नाट्य शास्त्र में हुआ है। रस की परिभाषा बताते हुये उन्होंने कहा है 'विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रसनिष्पत्तिः'। विभाव, (आलम्बन औरउद्दीपन) अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। इस विषय पर बाद को अति वादविवाद हुआ और इसे लेकर चार विभिन्न मत खड़े हो गये—परन्तु सारे मतों का समन्वयात्मक सार यही है कि दर्शक या पाठक एक विशेष स्थिति का पर्य्यावलोचन करता है, तो त्रास, हर्ष, उद्वेग, चिन्ता और क्रोध आदि विभिन्न भावों के प्रभाव से उसमें एक विशेष एकाग्रता और तन्मयता उत्पन्न हो जाती है। उस असाधारण तन्मयता की स्थिति को ही रस कहते हैं। नाटक में दर्शक प्रत्यक्ष रूप में अपनी आंखों के सामने पात्रों को देखता, उनकी वाणी सुनता, और चेष्टाओं का सम्प्रेक्षण करता है, किन्तु काव्य में पाठक या श्रोता इन पात्रों, परिस्थितियों, तथा चेष्टाओं और वाणी द्वारा व्यक्त भावों का मानस प्रत्यक्षीकरण करता है। अतः नाटक की भांति काव्य से भी पाठक या श्रोता के हृदय में रस की अनुभूति होती है।

काव्य में रस का विशेष महत्व माना गया है। संस्कृत आचार्यों ने इस विषय पर विभिन्न रूपों में प्रकाश डाला है। कविराज विश्वनाथ ने 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' बताया शूद्रक ने रस को ही काव्य की आत्मा माना और राजशेखर ने भी अपनी काव्य की मीमांसा में रस को काव्य की आत्मा कहा। इस प्रकार यह रस सम्प्रदाय व्यापक रूप से आज तक मान्य सिद्धान्त रहा है।

क. भाव, विभाव और अनुभाव आदिः—

रस की अवस्था तक पहुंचने के लिए हमें निम्नांकित श्रेणियों को पार करना पड़ता है। साधारण मनुष्य किसी काव्य को सुनकर, पढ़ कर अथवा कोई चित्र पट देख कर कह उठता है, बड़ा रस आया हृदय में बड़ा आनन्द उत्पन्न हुआ। यह आनन्दोत्पत्ति अथवा रसोत्पत्ति भाव, विभाव, अनुभाव और स्थायी आदि की श्रेणियों को पार करके ही उत्पन्न होती है। अब देखना यह है कि भाव, विभाव अनुभाव आदि क्या हैं।

१. **भाव:**—बाह्य पदार्थों के सम्पर्क से मनुष्य के हृदय में जो विशेष स्थिति उत्पन्न होती है उसे भाव कहते हैं।

२. **विभाव:** - भावों को उत्पन्न करने वाले बाह्य तथ्यों को विभाव कहते है। यह कारण अथवा विभाव तीन रूपों में होते हैं। उद्दीपन, आलम्बन और आश्रय। भाव के अन्तर्गत उत्तेजना पैदा करने वाली परिस्थिति उद्दीपन कहलाती है जिन वाह्य परिस्थिति, पदार्थ अथवा व्यक्ति के लिए रस उत्पन्न हो उसे आलंबन कहेंगे। और जिस व्यक्ति में रस की उत्पत्ति हो वह आश्रय होता है। जिस प्रकार "प्रकृति वैभव को देख कर सीता के विरह में राम विशेष रूप से प्रेम विहल हो गये।" इस वाक्य में प्रकृति वैभव उद्दीपन सीता आलंबन और राम आश्रय है।

३. **अनुभाव:**—विभाव के अनन्तर उत्पन्न हुई परिस्थिति जो शारीरिक विकारों से जानी जाती है, अनुभाव कहलाती है, जैसे नाक भौं सकोड़ना रोमांच होना एवं आनन्दाश्रु अथवा शोकाश्रुमुञ्चन करना आदि।

४. **संचारी भाव:**—उद्दीप्त भावों द्वारा देहिक व मानसिक विषयों को संचारी या व्यभिचारी भाव कहते है। संचारी का अर्थ है संचरण करने वाला। अर्थात् जो भाव क्षणिक रूप से मन में आवें और चले जावें स्थायी बन कर न रहे। संचारी अगणित होते हैं। जिनमें से मुख्य निर्वेद, ग्लानि, शंका और धृति आदि ३३ प्रकार के है।

५.**स्थायी भाव:**—जब भाव उपरोक्त चार श्रेणियां पार कर परिपक्व होकर मन में स्थायी प्रभाव जमा लेता है, तब उसे स्थायी भाव की संज्ञा दी जाती है। यह भाव ९ होते हैं। रति, हास, शोक, उत्साह, क्रोध, भय, विस्मय, जुगुप्सा और निर्वेद।

ख. नवरस:—

स्थायी भाव जब परिपक्वावस्था को पहुँच जाता है तब रस की उत्पत्ति होती है। उपर्युक्त नौ स्थायी भाव नव रसों में परिवर्तित हो जाते हैं जो (१) शृंगार (२) हास्य (३) करुण (४) वीर (५) रौद्र (६) भयानक (७) अद्भुत (८) वीभत्स (९) शान्त कहलाते हैं।

संस्कृत के रीति ग्रन्थाचार्य मम्मट ने कहा है कि "जैसे दूध ही जम कर दही बन जाता है उसी प्रकार विभाव, अनुभाव और व्यभिचार भावों से प्रेरित होकर स्थायी भाव ही रस बन जाता है। उनका कहना है कि सहृदय

व्यक्ति के मन में रति, हास्य और शोकादि भाव छिपे रहते हैं, काव्य सुनने पढ़ने अथवा नाटक आदि देखने से वे उमड़ कर रस बन जाते हैं। इसीलिए नौ स्थायी भावों के क्रमश नौ रस माने जाते हैं।

शृंगार को विद्वानों ने सर्व श्रेष्ठ रस माना है क्योंकि इसमें नायक, नायिका दो आलंबन होते हैं। सभी अनुभाव हो सकते हैं और सभी संचारी भाव। शृंगार के दो पक्ष हैं संयोग शृंगार और विप्रलम्भ शृंगार। हास्य, वीर, करुणा और शान्त रस में भी प्रचुरता से साहित्य रचना होती है एवं अन्य रसों में यदा कदा सुन्दर रचनाएँ हुआ करती हैं।

(ग) शब्द-शक्ति:—

यह तो स्पष्ट हो गया कि काव्य के पढ़ने सुनने और देखने से जो आनन्द विशेष मिलता है उसे काव्यरसास्वादन या रस कहते हैं । किन्तु देखना यह है कि वह आनन्द देने की शक्ति काव्य में कहां से उत्पन्न होती है । काव्य में शब्दों का विशेष महत्व होता है और शब्द की शक्ति ही वास्तव में काव्य में शक्ति भरती हैं, जिससे काव्य रस सञ्चारण की सामर्थ्य प्राप्त करता है एक ही बात कुछ शब्दों में किसी ढंग से कही हुई प्रभावशाली नहीं होती दूसरे शब्दों में दूसरे ढंग से कहने से मर्मस्पर्शी बन जाती है । अतः शब्द शक्ति के चमत्कार से काव्य प्रभावशाली बनता है ।

शब्द शक्तियों के तीन मुख्य भेद माने जाते हैं:—
अभिधा, लक्षणा, व्यंजना ।

अभिधाः—जब शब्दों का मुख्य सीधा अर्थ लिया जाता है तो उसे अभिधा कहते हैं ।

लक्षणाः—जब सुन्दर अर्थ नहीं लगता और (प्रयोजन अथवा रूढ़ि के कारण) मुख्य अर्थ से भिन्न दूसरा अर्थ लिया जाय तब लक्षणा होती है ।

व्यंजनाः—जब मुख्य अर्थ (या लक्षणार्थ) लग जाय और फिर भी एक अर्थ और सूचित होता रहे तब व्यंजना होती है । —जैसे—"वह गधा है" वाक्य का अभिधा से अर्थ सीधा सा होगा कि वह गधा (पशु) है । पर यदि किसी की मूर्खता को व्यक्त करने के लिए मनुष्य को कोई गधा कहे तो लक्षणा से अर्थ होगा कि उसकी गधे जैसी बुद्धि है । इसी प्रकार किसी ने प्रातःकाल के समय कहा ' पांच बज गये " उससे यात्री ने समझा कि चलने का समय हो गया है, पुजारी ने समझा कि पूजा करने का समय हुआ, और मुल्ला ने जाना अजान देने का समय है ।

एक ही बात से व्यंजना के तीन अर्थ ले लिये गये । शब्द शक्ति को समझने के लिए उसके वृत्ति और गुण को समझना आवश्यक है । और ध्वनि का भी काव्य में विशेष महत्व है । ध्वनि काव्य में पदगत या प्रबन्धगत होती है ।

गुणः—यह लिखा जा चुका है कि काव्य की आत्मा रस है । बिना रस के काव्य निर्जीव शरीर के समान व्यर्थ तथा निष्प्रयोजन हैं । देह में आत्मा के जिस प्रकार शूरता, वीरता, दया दाक्षिण्य आदि गुण कहे जाते हैं उसी प्रकार

काव्य की आत्मा स्वरूप रस के माधुर्य, ओज और प्रसाद गुण हैं। सरस काव्य के साथ इन गुणों का नित्य सम्बन्ध रहता है पर नीरस काव्य में इनकी सत्ता नहीं रहती। काव्य की आत्मा रस है, और गुणों का इसके साथ नित्य सम्बन्ध है, इसलिये गुणों को काव्य का अन्तरंग कहा गया है।

जो वस्तु रस के आन्तरिक भाव का उत्कर्ष बढ़ाती है उसे गुण कहते हैं। साहित्यकारों ने मुख्य तीन गुण बताये हैं:—

(१) माधुर्य (२) ओज (३) प्रसाद।

(१) माधुर्य:—जिस गुण के कारण अन्तःकरण आनन्दविभोर हो जाय, जिससे कठोरता, जोश अथवा विरक्ति न पैदा हो उसे माधुर्य कहते हैं। शृङ्गार, करुण व शान्त रस में माधुर्य गुण विशेष रूप से रहता है। जैसे:—

अलि पुन्जन की मद गुञ्जन सों,
बन कुञ्जन मंजु बनाय रह्यो
लगि अङ्ग अनङ्ग तरङ्गन सों,
रति रङ्ग उमंग बढ़ाय रह्यो

ओज:—जिस रचना के सुनने से मन में तेज उत्पन्न हो जावे, वहां ओज गुण होता है। इस रचना में टवर्ग की प्रधानता रहती है। सब वर्गों के पूर्व और तीसरे वर्णों का क्रमशः योग होता है और रेफ से युक्त अक्षर तथा लम्बे लम्बे समास वाले पद होते हैं। वीर, वीभत्स तथा रौद्र रस में इसका विशेष प्रयोग होता है।

जैसे:—"भये क्रुद्ध युद्ध विरुद्ध रघुपति शोण सायक करसते।
कोदण्ड धुनि सुनि चण्ड अति मरुजाद भय मारुत गसे।
मन्दोदरी उर कम्प कम्पति कमठ भूधर भ्रति भसे।
चिक्करहिं दिग्गज दशन महि गहि देखि कौतुक सुर हंसे।"

यहां क्रुद्ध शोण में रकार मिला हुआ है। युद्ध, विरुद्ध आदि में पहले वर्ण के साथ उसी वर्ण के दूसरे वर्ण मिले हुए हैं। टवर्ग की अधिकता तथा कठोर रचना है।

प्रसाद:— जहाँ सीधेसाधे शब्दों व वाक्यों द्वारा रचना की जाती है, जिसके श्रवणमात्र से ही काव्य के अर्थ का ज्ञान होता है तथा जो चित्त में शीघ्र ही

इस भांति व्याप्त होता है जैसे सूखे ईंधन में अग्नि तथा जो सम्पूर्ण रसों तथा रचनाओं में रह सकता है वही 'प्रसाद' गुण है। अर्थ की सरलता ही इसका प्रधान लक्षण है।

जैसे:—"सो नहिं सर जित सरसिज नाहीं,
सरसिज नहिं जेहि अलिन लुभाहीं
अलि नहिं जो भल गुञ्जन होना,
गुंजन नहिं जु मन हरि लीना ॥"

वृत्ति:—भिन्न भिन्न रसों के वर्णन में विभिन्न वर्णों के प्रयोग करने का नियम है। ऐसी नियम बद्ध रचना को वृत्ति कहते हैं। वृत्तियां तीन हैं:— (१) उपनागरिका (२) परुषा (३) कोमला। इन्हीं को क्रमशः वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली रीति भी कहते हैं।

(१) **उपनागरिका वृत्ति**:—माधुर्य गुणोत्पादक वर्ण की रचना से युक्त सानुनासिक और ह्रस्व वर्ण वाली तथा लम्बे समास से रहित रचना विशेष को उपनागरिका वृत्ति कहते हैं। इसका प्रयोग शृङ्गार, करुण और शान्त रस में विशेष रूप से होता है। उदाहरण:—

"खंजन मन रंजन करन, गंजन मृग चल मान
आवत कुसुम को चुगन, चंचलता की खान"

(२) **परुषावृत्ति**:—ओज गुण को व्यक्त करने वाले लम्बे समासों तथा कर्ण कटु शब्दों से युक्त रचना को ही परुषा वृत्ति कहते हैं। रस का प्रयोग रौद्र, वीर तथा वीभत्स रसों में विशेषतया होता है। इसी को गौड़ी वृत्ति भी कहते हैं। उदाहरण:—

"जै चमुण्ड जै चण्ड मुण्ड भण्डासुर खण्डिनी।
जय सुर क्रुते रक्त बीज-बिड्डाल बिहंडिनी ॥"

(३) **कोमलावृत्ति**:—जहां माधुर्य और ओज प्रकाशक वर्णों के अतिरिक्त वर्ण हो वहां कोमलावृत्ति होती है। इसमें प्रसाद गुण की अधिकता रहती है। इसको पांचाली रीति भी कहा जाता है। इसमें बहुत छोटे समास होते हैं। शान्त, अद्भुत तथा वीभत्स रस में विशेष रूप से प्रयोग होता है। य, र, ल, व, स, ह, व्यंजनों का विशेष रूप से व्यवहार होता है। उदाहरण:—

''इहि असार संसार में, सार चार कह व्यास
गङ्ग सलिल सतसंग, सिव सेवन, कासी वास''

यहाँ सकार की अनेक आवृतियां और ल, व, ह अक्षरों का वाहुल्य है, अत यह माधुर्य तथा ओज गुण रहित है ।

इस प्रकार तीनों शक्ति, गुण और वृत्तियों से युक्त शब्दों द्वारा रचित काव्य भाव, विभाव और अनुभावों की उत्पत्ति करता हुआ संचारियों की सहायता से हृदय में 'स्थायी भावों' रति, हास और शोक आदि का संचार करके रस की सृष्टि करता है ।

नवम अध्याय

अलंकार और छन्द

क: अलंकार:—

परिभाषा और भेद:—काव्य एक शरीर है जिसमें रस का होना आवश्यक है। शब्द काव्य का शरीर तथा रस आत्मा है। जिस प्रकार शरीर की रचना में विभिन्नता होती है, उसी प्रकार काव्य में शब्द रचना में विभिन्नता होती है। जिस प्रकार मानव शरीर में वाह्य तथा आन्तरिक गुण-दोष होते हैं। उसी प्रकार काव्य के भी वाह्य तथा आन्तरिक-दोष होते हैं जिस प्रकार व्यक्ति अपने शरीर को अलंकृत करने के लिये अलंकार पहनता है, उसी प्रकार शब्द शरीर की शोभा बढ़ाने के लिये कविता में अलंकार प्रयुक्त होते हैं, जिससे काव्य का शरीर तथा आत्मा अलंकृत होता है।

अलंकार वे साधन हैं जिनके द्वारा काव्य की शोभा वृद्धि होती है, और उसकी प्रभावोत्पादकता बढ़ती है।

अलंकार कविता के निर्माता नहीं, वह तो केवल काव्य को सजा मात्र देते हैं। वैसे तो अलंकार काव्य के लिये आवश्यक नहीं, किन्तु साधारण कवि बिना अलंकार के अच्छी काव्य रचना नहीं कर सकता है।

अलंकार की विशेषता है अतिशयोक्ति। प्रत्येक अलंकार में अतिशयोक्ति अवश्य होती है, यदि अतिशयोक्ति नहीं है तो अलंकार बन ही नहीं सकता। अलंकार का अर्थ किसी साधारण बात को अतिशयोक्ति द्वारा कहना है।

अलंकारों का अनावश्यक आधिक्य काव्य सौन्दर्य को बढ़ाने की अपेक्षा उसे नष्ट करता है।

अलंकारों के भेद:—अलंकार दो प्रकार के होते हैं—शब्दालंकार और अर्थालंकार।

जब शब्दों में चमत्कार होता है तब शब्दालंकार और अर्थ में चमत्कार होने पर अर्थालंकार माने जाते हैं। दोनों के अनेक भेद है।

वास्तव में अलंकारों की गणना करना असम्भव है, वे अनेक प्रकार के होते हैं, जिनमें से साधारण तथा प्रयुक्त होने वाले मुख्य २ अलंकार यहाँ दिये जाते हैं।—

ख. शब्दालंकार —

अनुप्रास, लाटानुप्रास, यमक, श्लेष और वक्रोक्ति । चार प्रकार के मुख्य शब्दालंकार होते हैं । इनमें भी अनुप्रस के कई भेद हैं ।

१. अनुप्रास:—अनुप्रास में वर्णों की आवृत्ति होती है अर्थात् जबएक वर्ण अनेक बार आता है तब अनुप्रास अलंकार होता है जैसे:—

"गंधी गंध गुलाब को गंवई गाहक कौन"

व्यंजन की कई बार आवृत्ति होने से अनुप्रास अलंकार माना गया है ।

अनुप्रास के छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास श्रुत्यानुप्रास और अन्त्यानुप्रास आदि कई भेद हैं ।

२. लाटानुप्रास:—जहाँ अक्षरों की नहीं बल्कि शब्दों की आवृत्ति होने पर अर्थ में भेद न होकर तात्पर्य में भेद हो वहाँ लाटानुप्रास होता है जैसे:—

राम हृदय जाके बसे विपति सुमंगल ताहि ।
राम हृदय जाके नहीं, विपति सुमंगल ताहि ।।

इस दोहे में शब्द समान है पर अन्वय करने से अर्थ भिन्न निकलता है । प्रथम पद का अर्थ है राम जिसके हृदय में हों, विपत्ति भी सुमंगल है उसके लिये । और दूसरे का अर्थ है कि जिसके हृदय में राम नहीं बसते उसके लिये सुमंगल में भी विपत्ति है ।

३. यमक:—जहाँ ऐसे शब्दों की आवृत्ति हो कि वे प्रत्येक बार पृथक अर्थ देवें वहाँ यमक अलंकार होता है कभी कभी पूरा शब्द न आकर शब्दांश प्रयुक्त होता है तब भी यमक अलंकार होता है, जैसे:—

"फूल रहे फूलकर फूल उपवन में ।"

यहाँ फूल शब्द तीनों बार विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है । प्रथम फूल का अर्थ खिलना, दूसरे का प्रसन्न होना और तीसरे का पुष्प है ।

और

"लोक में फैला फिर आलोक ।"

शब्दांश की आवृत्ति का उदाहरण है ।

४. श्लेष:—जहाँ एक से अधिक अर्थ वाले शब्दों का प्रयोग होता है तब श्लेष अलंकार होता है । जैसे:—

"पानी गये न ऊबरे मोती मानस चून,"

यहाँ पानी शब्द के तीन अर्थ हैं: - मोती के साथ पोलिश, मनुष्य के इज्जत, या मान, और चून के प्रसंग में जल।

५. वक्रोक्ति:—जहाँ किसी उक्ति में कहने वाले के आशय से भिन्न अर्थ लगाया जाय अर्थात् जहां वक्ता कहे कुछ और श्रोता कुछ अर्थ लगाये वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है जैसे,

"को तुम ? "हरि राधे" ! कहा बानर को पुर काम।

यहाँ भगवान अर्थ में प्रयुक्त हुए हरि शब्द का राधा ने वक्रोक्ति से बन्दर अर्थ लेकर उत्तर दिया है। वक्रोक्ति दो प्रकार की होती है। श्लिष्ट और काकु। दो अर्थ वाले शब्द के प्रयोग में जब दूसरा अर्थ लगाया जाता है तब श्लिष्ट वक्रोक्ति होती है।

ग. अर्थालंकार: -

अर्थालंकार अनेक प्रकार के होते हैं, जिनमें मुख्य २ निम्नांकित हैं:—

उपमा, रुपक, उत्प्रेक्षा, अनन्वय, अपन्हुति, व्यतिरेक, दृष्टान्त, उदाहरण प्रतिवस्तूपमा, निदर्शना, विशेषोक्ति, असंगति, विभावना, अधिशयोक्ति, समासोक्ति, समासोक्ति, अन्योक्ति, स्वाभावोक्ति, भ्रांतिमान, संदेह विरोधाभास, अप्रस्तुतप्रशंसा तथा व्याजस्तुति।

अर्थालंकारद्वारा रसवृद्धिपर प्रभाव पड़ता है। मानसिक संसर्गों से उत्पन्न होकर हमारे हृदय में भाव अपना रूप प्रकट करते है और इन मानसिक संसर्गों से हमारे विचार बनते है।

१. उपमाः—जब एक वस्तु को दूसरी वस्तु के समान बताया जाय तब उपमालंकार होता है, जैसे:—पूर्णेन्दु सा मुख खिल गया। इसमें मुख को पूर्ण इन्द्र के समान बताया गया है। अतः उपमालंकार हुआ। उपमालंकार के चार अंग हैं।—उपमेय, उपमान, साधारण धर्म और वाचक, शब्द। उपर्युक्त उदाहरण में "पूर्णेन्द" उपमान, "मुख" उपमेय, "खिल गया" साधारण धर्म और "सा" वाचक शब्द है। चारों के उपस्थित रहने पर पूर्णोपमा होती है, पर कभी कभी इनमें से कोई अंग गुप्त भी रहता है। उस दशा में लुप्तोपमा अथवा उपमा के अन्य प्रभेद बन जाते हैं।

२. रूपकः—जब एक वस्तु को दूसरी वस्तु का रूप दिया जाय अर्थात्

उपमान को उपमेय बना दिया जाय तब रूपक अलंकार होता है, जैसे, "चरण कमल मृदु मंजु तुम्हारे।" यहां चरणों को कमल का रूप दिया गया है। अतः रूपकालंकार है।

३. उत्प्रेक्षा:— जब एक वस्तु में दूसरी वस्तु की सम्भावना की जाय अर्थात् उपमेय को उपमान मान लिया जाय तब उत्प्रेक्षा अलङ्कार होता है, जैसे, "चित्रकूट जनु अचल अहेरी" यहां चित्रकूट पर्वत में शिकारी की सम्भावना की गई है अतः उत्प्रेक्षा अलंकार हुआ।

४. अनन्वय:— जब उपमेय का उपमान न मिल सकने के कारण उपमेय को ही उपमान भी बना लिया जावे अर्थात् जब उपमेय की उपमा उपमेय से ही दी जाये, तब अनन्वय अलङ्कार होता है जैसे, 'अब यद्यपि दुर्बल भारत है, पर भारत के सम भारत है।

५. अपन्हुति:— जहां उपमेय को छिपाकर अर्थात् झूंठा बताकर उपमान को सच्चा बताया जाये, वहां यह अलङ्कार आता है। जैसे—

मैं जु कहा रघुवीर कृपाला, बन्धु न होहि मोर यह काला।

यहां बन्धु को काल ही बताकर विभीषण ने उपमेय को झूंठा बताया है, अतः अपन्हुति अलङ्कार हुआ।

६. व्यतिरेक:—जहां उपमान में उपमेय की अपेक्षा कुछ न्यूनता या उपमेय में कुछ अधिकता दिखाकर उपमेय की श्रेष्ठता बताई जाय वहां व्यतिरेक अलंकार होता है—इसमें कारण बताकर श्रेष्ठता दिखाई जाती है, जैसे:—

सम सुवरन सुखमा कर सुखद न थोर।
सीय अङ्ग सखि कोमल कनक कठोर॥

यहां सीता जी के अङ्गों को सौन्दर्य में सोने के समान कह कर भी बढ़ कर बता दिया है, क्योंकि सोना कठोर होता है, पर अङ्ग कोमल हैं, अतः व्यतिरेक अलंकार हुआ।

७. दृष्टांत:—जहां उपमेय और उपमान वाक्यों में विभिन्न, पर मिलते जुलते धर्म के द्योतक शब्दों द्वारा बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव दिखाया जाय, अथवा बात की पुष्टि निमित्त उससे मिलती जुलती दूसरी बात कही जाय परन्तु वाचक शब्द का प्रयोग न हो, वहां दृष्टांत अलंकार होता है, जैसे:—

धनी गेह में श्री जाती है, कभी न जाती निर्धन घर में।
वारिधि में गंगा गिरती है, कभी न गिरती सूखे सर में॥

यहां 'धनी गृह में लक्ष्मी जाती है निर्धन के घर नहीं,' इस बात की पुष्टि निमित्त गंगा का सूखे तालाब में न गिर कर समुद्र में गिरने का दृष्टांत दिया गया है और वाचक शब्द का प्रयोग नहीं है, अतः दृष्टांत अलंकार हुआ।

८. उदाहरण:—इस अलंकार में साधारण बात कह कर इसकी पुष्टि निमित्त विशेष बात कही जाती है और वाचक शब्द रहता है, जैसे:—

जगत जनायो जेहि सकल, सो हरि जान्यो नाहि।
ज्यों आंखिन सब देखिये, आंखि न देखी जाय॥

यहां संसार के सृष्टा हरि को कोई नहीं पहिचानता, इस साधारण बात के समर्थन में यह विशेष बात कही गई है कि आंख सारे संसार को देखती है पर आंख देखी नहीं जाती—और 'जो' वाचक शब्द प्रयुक्त हुआ है; अतः उदाहरण अलंकार हुआ।

९. प्रतिवस्तूपमा:—जहां उपमेय और उपमान वाक्यों का एक ही धर्म का एकार्थ वाची भिन्न भिन्न शब्दों द्वारा वर्णन किया जाय वहां प्रतिवस्तूपमा अलंकार होता है। दृष्टांत में दोनों वाक्यों के भिन्न २ धर्म होते हैं, किन्तु उनमें बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव रहता है और एक दूसरे की पुष्टि होती है दूसरे इसमें धर्म समानार्थक होता है, परन्तु उनके द्योतक करने वाले शब्द अलग अलग होते हैं, जैसे:—

चटक न छांड़ित घटत हू, सज्जन नेह गंभीर।
फीको परै न बरु फटै, रंग्यो चोल रंग चीर॥

यहां दोनों उपमेय उपमान वाक्यों का एक ही धर्म भिन्न भिन्न शब्दों द्वारा व्यक्त हुआ है - एक में 'चटक न छांड़त' है दूसरे में "फीको परै न" है, परन्तु दोनों का भाव एक ही है; अतः प्रति वस्तूपमा अलंकार हुआ।

१०. निदर्शना:—जहां उपमेय और उपमान वाक्यों के अर्थ भिन्न होते हुए भी एक पर दूसरे का इस प्रकार आरोप किया जाय कि उनमें पारस्परिक सम्बन्ध दिखाई पड़े, वहां निदर्शना होती है, जैसे:—

जो असि भगति जानि परि हरहीं, केवल ज्ञान हेतु स्रम करहीं।
ते जड़ काम धेनु गृह त्यागी, खोजत आक फिरहिं पय लागी॥

यहां "भक्ति के महत्त्व को जानते हुए भी ज्ञान के लिये परिश्रम करना" और "घर की कामधेनु को त्याग कर आक के दूध निमित्त भटकना" भिन्न

अर्थ वाले दो वाक्य होते हुए भी पारस्परिक संबंध रखने से व्यक्त किये गये हैं, अतः निदर्शना अलंकार हुआ।

११. विशेषोक्ति:—जहाँ कारण के उपस्थित होते हुए भी कार्य्य का न होना प्रकट हो वहां विशेषोक्ति अलंकार होता है, जैसे:—

त्यौं त्यौं प्यासो ही रहत, ज्यौं ज्यौं रहत अघाय।
सगुन सलोने रूप की, जु न चख तृषा बुझाय॥

यहाँ "अघा कर पीने पर" भी प्यास न बुझना चमत्कार दर्शाया है—अतः विशेषोक्ति अलंकार हुआ।

१२ असंगति:—जहां कार्य और कारण की स्वाभाविक संगति न हो अथवा विरोध दृष्टि आवे वहां असंगति अलंकार होता हैं, जैसे.—

"प्रकट भयो है जलद तू, जग को जीवन दान।
मेरो जीवन लेत है, कौन बैर मन आन॥"

यहां जलद का स्वाभाविक गुण संसार को जीवन दान देना होते हुए विरहिण के लिये विरोधी फल देने वाला अर्थात् उसका जीवन हरण करने वाला दर्शाया गया है, अतः असंगत अलंकार हुआ।

१३. विभावना:—जहां कार्य्य कारण के सम्बन्ध में कोई असाधारण कल्पना की जाय अर्थात् विना कारण के भी कार्य होना प्रकट हो वहाँ विभावना अलंकार होता है, जैसे:—

"बिनु पद चलै, सुनै बिनु काना।
कर बिनु कर्म, करै विधि नाना॥"

१५. अतिशयोक्ति:—जहां पर औचित्य से अधिक कथन किया जाता हैं, वहाँ यह अलङ्कार माना जाता है जैसे:—

हनूमान की पूंछ में लग न पाई आग।
लंका सिगरी जल गई गये निशाचर भाग॥

इसमें आग लगने से पहले ही निशाचरों का भागना अतिशय उक्ति माना जायगा।

१५. समासोक्ति:—जहां किसी कथन में इच्छित अर्थ के अतिरिक्त कोई दूसरा अर्थ भी भासमान होता है वह समासोक्ति माना जाता है जैसे:—

"तुही सांच द्विज राज है, तेरी कला प्रमान ।
तो पै शिव किरपा करो, जानत सकल जहान ।।

यहां द्विजराज से चन्द्रमा व ब्राह्मण दोनों का अर्थ भासमान होता है और दोनों पर लग भी सकता है ।

१६. अन्योक्ति:—जब किसी वस्तु का सीधा वर्णन न करके उसके समान ही किसी अन्य वस्तु के वर्णन द्वारा उसका बोध कराया जाय तब अन्योक्ति अलङ्कार होता है । जैसे विहारी का प्रसिद्ध दोहा है:—

"माली आवत देख कर कलियन करी पुकार ।
फूले फूले चुन लिये काल्ह हमारी बार ।।"

यहां कलियों को सम्बोधन करके मानव जीवन पर घटित किया है कि यह संसार की क्षणिकता को समझ कर शुभ कर्म में लगे ।

१७. स्वभावोक्तिः—जाति व अवस्था के अनुसार जहां पर यथावत् प्राकृतिक वर्णन किया जाता है वहां यह अलंकार होता है जैसेः—

"भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाय ।
भागि चले किलकात मुख, दधि ओदन लपटाय ।।"

१८. भ्रांतिमान:—जब एक वस्तु में दूसरी वस्तु का भ्रम हो जाता है वहां यह अलङ्कार होता है, जैसे:—

"पेशी समझ कर माणिक्य की ।
वह विहग देखो ले चला ।।"

१९. सन्देह:—जहां पर कुछ संशय बना रहता है और कोई निश्चयात्मक ज्ञान नहीं हो पाता वहां यह अलङ्कार होता है । (किधों धों कि आदि से यह पहचाना जाता है; जैसे:—

"सारी बिम्ब नारी है कि नारी बिम्ब सारी है,
कि सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है ।

नोटः—भ्रांतिमान और सन्देह अलङ्कारों में भेद यह है कि प्रथम में उपमेय में उपमान के सादृश्य से उसका निश्चयात्मक भ्रम होता है, जब कि द्वितीय में उपमेय और उपमान दोनों की उपस्थिति में द्योतक द्वारा निश्चय न होकर संशय में पड़ना दिखाया जाता है कि यह उपमेय है या उपमान।

२०. **विरोधाभासः**—जहां दो बातों का विरोध बता कर उसका शमन भी दिखाया जाय, वहां विरोधाभास अलंकार होता है। विरोधाभास का शाब्दिक अर्थ ही है कि वास्तविक विरोध न होकर विरोध का आभास मात्र हो, जैसे:—

(क) अमरता है जीवन का ह्रास।
मृत्यु जीवन का चरम विकास।"
—महादेवी वर्मा

(ख) ऐसो निरमोही कान्ह मोही ठहरायो हैं"

प्रथम उदाहरण में अमरता और जीवन का ह्रास तथा 'मृत्यु जीवन का चरम विकास" में विरोधी भाव का आभास होता है, परन्तु इनके गूढ़ अर्थ को समझ कर विश्लेषण करने पर विरोध का शमन हो जाता है। इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में 'मोही' शब्द में मो और ही (हिय-हृदय) अलग करके 'मेरे हृदय में' अर्थ लगाने पर विरोध का शमन हो जाता है। अतः दोनों में विरोधाभास अलंकार हुआ।

२१. **अप्रस्तुत प्रशंसाः**—जहां अभीप्सित विषय को स्पष्ट शब्दों में न कह कर अप्रस्तुत द्वारा उसका वर्णन किया जाय वहां यह अलङ्कार होता है, जैसे—राम के धनुष तोड़ने पर परशुराम की लक्ष्मण के प्रति उक्तिः—

"मातु पितहि जनि शोच वश, करसि महीप किशोर"

यहां स्पष्ट यह न कह कर कि वह लक्ष्मण को मार डालेंगे, इन शब्दों द्वारा आशय प्रकट किया है कि हे राजकुमार! अपने माता पिता को दुःख पहुंचाने का कारण मत पैदा कर, अतः अप्रस्तुत प्रशंसा हुई।

नोटः—अप्रस्तुत प्रशंसा और अन्योक्ति में भेद इतना ही है कि अप्रस्तुत प्रशंसा में वास्तविक लक्ष्य प्रस्तुत नहीं होता अप्रस्तुत के वर्णन द्वारा बोध मात्र कराया जाता है, जब कि अन्योक्ति में मिलते जुलते अप्रस्तुत के सहारे प्रस्तुत का द्योतन किया जाता है। इसमें वर्णन अप्रस्तुत का होता है किन्तु वास्तविक लक्ष्य प्रस्तुत ही होता है।

२२. **व्याजस्तुतिः**—जब कि प्रस्तुत के वर्णन में निन्दा का बोध हो परन्तु वास्तव में वह स्तुति हो, वही व्याजस्तुति अलंकार होता है, जैसेः—

"जमुना तुम अविवेकिनी, कौन लियो यह संग।
पापिन सों निज बंधु को, मान करावति भंग॥"

जमराज और यमुना दोनों सूर्य्य की सन्तान मानी जाती हैं अतः यमुना को सम्बोधन करके कहा गया है कि वह पापियों को तार कर अपने भाई यमराज का निरादर कराती हैं-- यहाँ निन्दा रूप में यमुना जी की स्तुति है अतः व्याजस्तुति अलंकार हुआ।

ऊपर वर्णित अलंकारों के अतिरिक्त निम्नलिखित अलंकार भी महत्वपूर्ण हैं, विस्तार भय से यहाँ उनका वर्णन नहीं किया गया है:—

प्रतीप, स्मरण, उल्लेख, काव्य लिङ्ग, दीपक, मीलित, उन्मीलित, तद्गुण, अतद्गुण, मुद्रा, परिसंख्या, परिकर, परिकरांकुर, सहोक्ति, यथाक्रम तथा यथासंख्य।

इनके अतिरिक्त अन्य भी छोटे मोटे अनेक अलंकार हैं जिनका उल्लेख आवश्यक नहीं।

(घ) छंद—परिभाषा और भेद

छन्द रचना का कविता से घनिष्ट सम्बन्ध हैं। शैली के अनुसार काव्य के दो भेद हैं:—गद्य और पद्य। जिस शास्त्र के अनुसार गद्य रचना का शासन होता है उसे व्याकरण कहते हैं और जिस शास्त्र द्वारा पद्य का शासन होता हैं वह पिंगल अथवा छन्द शास्त्र कहलाता है। जिस प्रकार संस्कृत व्याकरण के आदि प्रणेता पाणिनी विख्यात हैं, उसी प्रकार छन्द शास्त्र के आदि प्रवंतक पिंगल ऋषि माने जाते हैं और उन्हीं के नाम से इसे पिंगल शास्त्र भी कहते हैं। पद्य की रचना की लम्बाई विशेष नाप के अनुसार चलती है, उसी लम्बाई के बंधन का नाम छन्द है। छन्द का प्रचार उतना ही प्राचीन है जितने प्राचीन वेद हैं। वेद के छः अंगों शिक्षा, कल्प, नियुक्त, व्याकरण, ज्योतिष और छन्द में से एक यह भी है।

प्राचीन काल का अधिकांश साहित्य पद्य में ही मिलता है, और पद्य छन्दों के आश्रय को पाकर चमत्कृत हो उठता है। अस्तु छन्द रचना शास्त्र एक प्रकार का पद्य रचना की मनोरमता को बढ़ाने वाला शास्त्र है और इससे काव्य में सौन्दर्य आता है।

(ब) छन्द शास्त्र अथवा पिंगल की दृष्टि से पद्य रचना में छः बातों पर ध्यान दिया जाता है मात्रा, यति, पद, लय, तुक और गण।

१. मात्रा:– लघु या गुरु (ह्रस्व का दीर्घ) वर्णों के उच्चारण में जितना समय लगता है, वह मात्रा कहा जाता है इन्हें लघु और गुरु (/S) चिन्हों से पहिचाना जाता है। लघु वर्ण की एक मात्रा होती है तथा दीर्घ वर्ण अनुसार और विसर्ग वाले वर्ण की और संयुक्त अक्षर की दो मात्राएँ होती हैं। जैसे:—

लघु वर्ण: अ, इ, उ, ऋ, तथा इसकी मात्रा वाले व्यंजन।

गुरु वर्ण:—ए, ऐ, ओ, औ, और इनकी मात्रा वाले व्यंजन, हिं, कुः, पुः इत्यादि तथा सत्य, सन्त में से।

२. यति:—छन्द पढ़ते समय जहां विश्राम लिया जाता है वहां उसकी यति संज्ञा होती है।

३. पद: – पद्य के प्रत्येक पूर्ण वाक्य को पद पाठ या चरण कहते हैं। प्राय: चार चरण का एक छन्द माना जाता है।

४. लय:—वर्णक्रम या छन्द-पठन शैली लय कही जाती है।

५. तुक: – पद के अन्त में जो दो तीन सस्वर वर्ण एक समान दूसरे पद के अन्त के वर्णों का साम्य बैठाने के लिए लिखे जाते है। वे तुक कहे जाते हैं। इसके छः भेद माने जाते हैं।

(क) सर्वान्त्य = जिसमें चारों पदों (' = २ = ३ = ४) के अन्त में तुक मिलती है। (सवैया)

(ख) सामान्य = जिसमें सम पदों (२, ४) में तुक मिले।

(ग) विषमान्त्य = जिसमें विषम पदों (१, ३) में तुक मिले।

(घ) विषम सामान्त्य = जिसमें विषम सम पदों (१, २ व ३, ४) में तुक मिले। चौपाई

(च) भिन्नान्त्य पदांत या अतुकांत = जिसमें किसी पद में तुक न मिले।

(७) गण – वार्णिक छन्दों में गणों का प्रयोग होता है। प्रत्येक गण तीन वर्ण का होता है। कुल गण आठ हैं: —

गणनाम	मात्राएं	उदाहरण
मगण	जिसके तीनों वर्ण गुरू हों – SSS	भाराता
नगण—	,, ,, ,, लघु हो — III	भरत
भगण—	जिसका प्रथम वर्ण गुरू हो – SII	भारत
जगण —	,, मध्यम वर्ण गुरू हो —ISI	भरात
सगण—	,, अन्तिम ,, हों —IIS	भरता
यगण—	,, प्रथम ,, लघु —ISS	भराता
रगण—	,, मध्यम ,, ,, —SIS	भारता
तगण—	,, अन्तिम ,, ,, — SSI	भारात

नोट: —प्रत्येक गण की मात्राएँ निम्नलिखित सूत्र से ज्ञात की जा सकती है: —

"यमाताराजभानसलगा।"

सूत्र में से गण वर्ण के आगे के दो वर्णों को मिला कर मात्राएँ ही उस गण की मात्राएँ होंगी।

(च) विभिन्न छन्दों की परिभाषा उदाहरण सहित:—

मात्रिक छंद

नाम	प्रत्येक चरण में मात्राएँ	यति कितनी मात्रा पर	विशेष नियम	उदाहरण
चौपाई	१५	यति चरणान्त में	अंत में ऽ। आता है	चहहु जो साँचो निज कल्याण, तो सब मिलि भारत संतान । जपो निरंतर एक जबान, हिंदी हिंदू हिन्दुस्तान ।।
चौपा	१६	यति चरणान्त में	अन्त में ऽ। व हो	रहा अवधि दिन एक आधारा, समुभ्रत मुख मन भयऊ अपारा । कारण कवन नाथ नहिं आए, कपटी जान मोहि विसराए ।।२
रोला	२४	११—१३	अंत में ऽ प्रिय होता है	हे देव यह नियम सृष्टि में सदा अटल है, रह सकता है वही सुरक्षित जिसमें ब[illegible] है । ३ निर्बल का है नहीं जगत में कहीं ठिकाना, रक्षा साधना उसे प्राप्त हों चाहे नाना ।
गीतिका	२६	१४—१२	अंत में ।ऽ आता है	एक ऊंचा एक नीचा एककर सन्मुख किये, एक ग्रीवा पर धरे यों कह रही सोभालिए । ४ स्वर्ग में पाताल में नृप आप सम दानी नहीं । शीश में अपना कटाऊ जो मिले कोई नहीं ।। ५
हरि गीतिका	२८	१६—१२	अंत में ।ऽ आता है	मानस भवन में आर्य जन जिन की उतारें आरती । भगवान भारतवर्ष में गूंजे हमारी भारती ।। हो भद्र पदवी भाविनी, हे भारती हे भगवते, सीतापते सीतापते गीता मते गीता मते ।
वीर	३१	१६—१५	अंत में ऽ। आता है	कौरव पांडव दोऊ बल जूझे जूझ के लीन्ह महा मैदान, भाई जन्मे हैं या जग में आल्हा ऊदल वीर महान । जिनकी कीरति सब घर फैली, फैल के लीन जगत को छाय, को जस बरनें उन छत्रिन को हमरे बूत कही न जाय ।।

मात्रिक अर्धसम

नाम	विषम (१।३) चरण में मात्राएं	सम (२२८) चरण में मात्राएं	विशेष	उदाहरण
दोहा	१३	११	अंत में ऽ। आता है	फूले फूले मत फिरो, करो न ऐसी भूल । तोड़े जाते हैं सदा फूले फूले फूल ॥
सोरठा	११	१३	दोहे का उल्टा	सुनत सुमङ्गल बैन, मन प्रमोद तन पुलक भर । सरद सरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह जल ॥
उल्लाला	१३	१३	चरणान्त में यति अर्ध सम का उदाहरण	काव्य कहा विन रुचिर मति, सु कहा विन ही विरति । विरति तु लाल गुपाल भल, चरणनि ही अजु रति अचल ॥ मत चरचा चाको नीति की, जग का ये ही हाल है । उपकार मूल्य देना सहज, आज काल की चाल ॥

विषम मात्रिक छंद

नाम	लक्षण	विशेष	उदाहरण
कुंडलिया	दोहा+रोला	दोहे का अंतिम चरण रोलाके आदि में रखा जाता है।	राही सोवत इत किते, जोर लगे चहुं पास । तव निज धन के लेन को, गिने नींद की सांस ॥ गिने नींद की सांस, वास वसि तेरे डेरे । लिये जात वनि मीत, माल ये सांझ सवेरे ॥
छप्पय	रोला+उल्लाला से वनता हैपकुल मात्राएं १५२ होती हैं।		हम प्रतच्छ हरि रूप जगत हमरे बल चालत । जल थल नभ थिरभो प्रभाव मरजाद न टारत ॥ हम ही नर के मीत सदा सांचे हितकारी । हम ही इक संग जात तजत जब पितु सुत नारी ॥

वार्णिक सम

नाम	वर्ण	गण	रूप	यति कौनसे वर्ण पर	उदाहरण
१. द्रुतविलम्बित	१२	न भ भ र	।।। S।। S।। S।S	१२	मन भार मणी रमणीयता । मिल गई ये विधि यदि योग से । पर जिसे न मिली कविता सुधा, रसिकता सिकता सम है उसे
२. वसंत तिलका	१४	त भ ज ज ग म	SS। S।।। S।। S।SS	१४	कुंज वही थल वही जमुना वही है, बेले वही वन वही विगी वही है है पुष्प पल्लव वही व्रज भी वही है. ये किंतु श्याम बिन हैं दुख ही जनाते
३. मालिनी	१५	न न भ म य	।।। ।।। SS। S।SS। SS	८१	विकल अति सुधा से देखके पुत्र न्यारा जननि हृदय से है धूरती दुग्ध धारा
४. मंदाक्रान्त	१७	म भ न त त गग	SSSS ।। ।।। S, S।SS । SS	१ ६१७	तारे डूबे तम ढल गया छट गई व्योम लाली पंछी बोले तमचर जगे ज्योति फैली दिशा में ।
५. मालती सवैया	२३	७ भ ग ण + गुरू	S।। S।। S।। S।।S ।।S ।।S ।। SS		सीस पगा न झगा तन पे प्रभु जानिकु आहि वसे किही ग्रामा । धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पाय उपानहुं की नहि सामा ।।
६. पुमिन सवैया	२४	८ सगण	।।S ।।S ।।S ।।S ।।S ।।S ।।S		पुरते निकसी रघुवीर वधू धरि धीर दये मग में डग द्वे । झलकीं भरि भाल कनीं जलकीं पुर सूख गये मधुराधर के ।।
७. मन हरण (घनाक्षरी)	३१	इसमें नगण की आवश्यका होती है, न कोई मात्रा गिनी जाती है । इसके अंत में एक S आता है ।		१६, १५ पर	उदाहरण पृष्ठ २६४ पर देखिये
८. वंशस्य	१२	ज त ज र	।S। SS।। S। S।S	चरणान्त में	
९. इन्द्रावज्रा	११	त त ज ग ग	SS। SS ।। S। SS		
१०. उपेन्द्र वज्रा	११	ज न ज, दो गुरू	।S। SS। ।S। SS		अनेक ब्रह्मादि न अन्त पायो । अनेक धा वेदन गीत गायो ।। जिन्हें न रामानुज बन्धु जानो । सुनों सुधी केवल ब्रह्म मानो ।।
११. शिखरिणी	१७	य म न स भ ल ग	।SS SSS ।। ।।। S		
१२. शार्दूलविक्रीड़ित	१९	म स ज स त त म	SSS।।S।S।SSSSS		
१३. मत्तगयंद	२३	७ भगण, २ गुरू	S।।S।।S।।S।।S।। S।। S।। SS		

उदाहरण

मनहरण:—"सुषमा उसी की अवलोकिके सुधाकर में,
रूप सुधा पीकर चकोर ना अघात है।"

वंशस्थ:—"निशा सिरानी नभ श्वेत होगया,
तथापि पूरी न व्यथा कथा हुई"

इन्द्रवज्रा:—"प्रातर्जगो गोकुल नाथ गावो, भारी सबै पापन की नसावो।
सांची प्रभु कार्टहि जन्म बेरी है इन्द्र वज्रा है सीख मेरी॥"

शिखारिणी:—"कहा न जावे जो, अखिल भुवि सौभाग्य सुख है।
बड़ा ही है भारी, त्रिपुर हर ऐश्वर्य सु अहै॥
सभी है वेदों की सुकृत प्रतिभा है सुख जो।
सुधा जैसा तेरा, असे अशुभ मेरा हर दुसो॥

शार्दूल विक्रीड़ित:—"काले कुत्सित कीट का कुसुम में कोई नहीं काम था
कांटों से कमनीयता कमल में क्या है न कोई
दंडी में कब ईख के विपुलता है ग्रंथियां कभी को भली
हा दुर्दैव प्रगल्भते अपटुता तूने कहां की है नहीं।"

मत्तगयंद:—"या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहुं पुर को तजि डारौं।
आठहुं सिद्धि नवो निधि को सुख नन्द की गाय चराय निसारौं॥"

तारंक:—इसके प्रत्येक चरण में ३० मात्राएँ होती हैं और १६ मात्राओं पर विराम होता है—अंत में एक मगण SSS आता है।

SII SI IS IISII S SS S S S।

जैसे:—"सोलह रत्न कला प्रति पादहि, ह्वै तारंक मो अंतै।
तिहि को होत भलो जग संतन, सेवन हित सों जो संतै॥"

इनके अतिरिक्त बरवै, रूप माला सुमुखी सुन्दरी और आदि कई अन्य छन्द होते हैं, जिनका प्रयोग अधिक नहीं मिलता।

(छ) काव्य दोष

जो बातें काव्य के रसास्वादन में बाधक होती हैं, उन्हें काव्य दोष कहते हैं। काव्य दोष कई प्रकार के होते हैं जिनमें मुख्य तीन हैं:—

(१) शब्द दोष, (२) अर्थ दोष और (३) रस दोष।

शब्द दोष:—पद में उसके किसी अंश में अथवा काव्य रचना में कोई दोष हो तो उसे शब्द दोष कहते हैं। जिसके कई भेद हैं:—मुख्य २ शब्द दोष निम्न लिखित हैं:—

(१) श्रुति कटुत्व, (२) च्युत संस्कृति, (३) अप्रतीत, (४) अश्लीलत्व, (५) ग्राम्यत्व, (६) क्लिष्टत्व, (७) न्यूनपदत्व, (८) अधिकपदत्व तथा अक्रमत्व।

कानों को अप्रिय लगने वाले कठोर शब्दों के प्रयोग से श्रुति कटुत्व उत्पन्न होता है, व्याकरण के नियमों के विरुद्ध पदों के प्रयोग से च्युत संस्कृति एवं किसी विशेष शास्त्र या विज्ञान में प्रयुक्त होने वाले अप्रतीत दोष होते हैं। गवांरु शब्दों के प्रयोग से ग्राम्यत्व और क्लिष्ट शब्दावली से क्लिष्टत्व दोष उत्पन्न होता है, इसी प्रकार जहां आवश्यक शब्दों की कमी की जाती है वहां न्यून पदत्व, जहां अनावश्यक शब्दों का प्रयोग हो अधिक पदत्व और जहां क्रम भंग हो अर्थात् जो पद जहां उचित हो उस क्रम से प्रयोग न किया गया हो वहां अक्रमत्व दोष होगा। जब शब्द से अश्लील शब्द की व्यंजना हो तब अश्लीलत्व दोष होता है।

उदाहरण क्रमशः:—

१. "कातार्थी तब हो हुंगी, मिली हैं जब प्रिय आप"। (श्रुति कटुत्व)

२. पीछे मघवा मोहि शाप दई, गंधर्व ते राक्षस देह भई." व्याकरण की दृष्टि से 'शाप दियो' होना चाहिये था। 'शाप दई' अशुद्ध है, अतः वह नियम दोष है।

३. "हियतल वसि सुख देत हैं, ये तेरे अनुभाव"

४. "मीचि आँख प्रिय की निरखि वायुदीन तत्काल" मीचि आँख का अर्थ मरना होता है, इसका भान यहां होता है। 'वायुदीन' का अपान वायु से सम्बन्ध प्रतीत होता है अतः घृणा बोधक शब्द है।

५. "मूंड़पै मुकुट धरे सोहत हैं गोपाल"।

६. "खग पति पति तिय पितु वधू जल समानुतुववैन" 'गंगाजी के जल के समान' इन सीधे अर्थों को बताने के लिए इतने लम्बे चौड़े शब्द प्रयुक्त किये गये अतः क्लिष्ट दोष हुआ।

७. "उत्तम मध्यम नीच गति पाहन सिकता पानि।
प्रीति परिच्छा बिहुन को तेरे वितिक्रम जानि" ॥

इस पद में रेखा शब्द छूट गया है अतः अर्थ नष्ट हो गया है।

८. "लपटी पुहुप पराग पहसनी सेद मकरन्द" (बिहारी) यहाँ 'पहुह पराग' कहा गया है पर पराग सदा पुष्प से ही सम्बन्ध रखता है अतः पुहुप शब्द अधिक है।

९. 'विश्व में मिलते नहीं हैं वीर भीम समान के' यहां पर 'के' शब्द भीम के बाद आना चाहिए ताकि समान के बाद।

अर्थ दोषः– अर्थ दोष के भी कई भेद हैं:—
दुष्क्रमत्व, पुनरुक्त तथा विद्याविरुद्ध आदि।

जहाँ लोक व शास्त्र विरुद्ध क्रम का प्रयोग किया जाय वहाँ दुष्क्रमत्व, जहाँ एक शब्द द्वारा किसी अर्थ की प्रतीति हो जावे और फिर भी उसी अर्थ को द्योतक करने वाले दूसरे अर्थों का प्रयोग करके दुबारा उसी अर्थ को कहा जावे तो उसे पुनरोक्ति दोष कहते हैं तथा जहाँ पर शास्त्र विरुद्ध वर्णन हो वहाँ पर विद्या विरुद्ध दोष माना जाता है।

उदाहरण क्रमशः—

(१) "दीजिये एक तुरंग मोहि अथवा देहि मतगं" अथवा "मारुत नन्दन मारुत मन को खगराज को वेग लजायो"। यहाँ पहले 'मतगं' और मन को क्रमशः पहले आना चाहिए था। क्योंकि अधिक शक्तिशाली अथवा बढ़िया वस्तु का उल्लेख पहले होता है।

(२) हम तो लागे मदन सर, मुरछि परी सुधी नाहिं, बूजे बद बदरा भरी छिरोछिरी बिस-बिस रांहि।"

अथवा

हृदय बड़ा था रम्य था वहाँ मंजु दिखाता। यहाँ पिछले पद्यांशों में अनावश्यक पुनरुक्ति हुई है।

(३) ख, छप सद नख-पद लगे, कहे देता सब बात वस्तुतः इस प्रकार का कथन काम शास्त्र के विरूद्ध, माना जाता है अतः यहाँ यह दोष माना जावेगा।

रस दोष—

जब रस स्थायी भाव अथवा संचारी भावों का एवं शब्द द्वारा कथन होता है। जैसे—

"ह्वौ वालि चलि वाको छिनक, लोजैं माधुनी हारी
अभगत है चहुँ ओर छवि, मानहुं रसशृङ्गार"

यहाँ रस और शृङ्गार द्वारा स्पष्ट कथन किया गया है अतः रस दोष माना जावेगा।

कभी कभी काव्य दोष दोष न रह कर गुण भी हो जाते हैं, एवं कभी कभी किंचित विपर्यय से दोषों का परिहार भी हो जाता है। अर्थ चमत्कार की दृष्टि से शब्द और अर्थ दोष दूर हो जाता है। और रसों में भी अनुभाव आदि के स्पष्ट स्वरूप के लिये आलंबन व आश्रय पृथक २ करने पर तथा विरोधी रसों में तटस्थ रस का समावेश करने पर रस दोषों का भी परिहार किया जा सकता है।

उपसंहार

इन पृष्ठों में साहित्य की विवेचना करके हिन्दी भाषा की उत्पत्ति और विकास पर प्रकाश डालते हुए हिन्दी साहित्य के स्वरूप को सरल रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। वीरगाथा काल से भी पूर्व की पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करके आज एक हजार वर्ष बाद तक के हिन्दी साहित्य का अवलोकन करने पर उनके आश्चर्यजनक विकास और विभिन्न गति विधियों की उद्‌भावना का विचार परम संतोष और आनन्द का विषय है।

सामयिक परिस्थितियों का अध्ययन करने से अलग अलग कालों में साहित्यिक प्रवृत्तियों में होने वाले परिवर्तन भली प्रकार समझ में आ जाते हैं साहित्य अपने समय का दर्पण होता है। अतः युगीन स्थिति के प्रभाव से साहित्य में भी भेद उत्पन्न होता रहता है. इस भेद को विभिन्न साहित्यिक कालों की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक स्थित्यनुसार विश्लेषण करके भली प्रकार समझने का प्रयास किया गया है। प्रत्येक युग में हिन्दी साहित्य की उन्नति में योग देने वाले प्रतिभाशाली प्रमुख कवियों के परिचय और अन्य कवि-भूषण की नामावली से उनकी समृद्धि का ज्ञान पूर्णता को प्राप्त कर सकेगा।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्ति काल अपना विशेष महत्व रखता है। आदि काल में वज्रयानी सिद्धों और नाथपंथी जोगियों के द्वारा जो अर्थशून्य बाहरी विधि विधान, तीर्थाटन पर्वस्नान आदि की निस्सारता का संस्कार फैलाने का कार्य किया गया था उससे उत्पन्न साधारण जनता की स्थिति को संभालने के लिये काल दर्शी भक्त कवि दबी हुई भक्ति को जगाने में व्यस्त हो गये। फलस्वरूप भक्ति का प्रवाह ऐसा विस्तृत हो गया कि धार्मिक क्षेत्र में अनेकों सन्त कवियों का आविर्भाव हुआ निर्गुण व सगुण भक्ति धाराओं के अतिरिक्त सूक्ष्म भेदों वाले अगणित सम्प्रदाय प्रचलित हो गये। राजनीतिक परिवर्तन के कारण शून्य पड़ते हुए जनता के हृदय क्षेत्र में भक्ति का स्रोत बहाने में इन सन्तों की वाणी ने महत्वपूर्ण कार्य किया। इन सभी कवियों और उनके द्वारा चलाये हुए सम्प्रदायों का सम्यक् विश्लेषण इस पुस्तक में किया गया है।

किसी भी भाषा का साहित्य राष्ट्र की और विश्व की निधि है। साहित्य के उत्कर्ष और उसकी समृद्धि पर ही समाज और राष्ट्र का उत्कर्ष निर्भर है, और इसी से विश्व शान्ति का मार्ग तैयार होता है। अतः हिन्दी साहित्य के

विभिन्न उत्थानों में भाषा भाव और कला की दृष्टि से हुई उन्नति हमारे मंगलमय भविष्य की प्रतीक है। प्राचीन परम्परा में सुधार और नई उद्भावनाओं के प्रसार से हिन्दी साहित्य समृद्ध हो रहा है भाव, भाषा, छन्द अलङ्कार और रस की दृष्टि से होने वाले नित्य नये चमत्कारों के अतिरिक्त साहित्यकारों की विचार शक्ति भी उत्तरोत्तर सम्पन्नता को प्राप्त होती दृष्टि आ रही है।

विचार शक्ति के संवर्धन और बुद्धिवादिता की प्रधानता से हिन्दी साहित्य में अनेक वादों का प्रादुर्भाव हुआ। हमारा भारतवर्ष दार्शनिक विचारों का घर रहा है, अतः चिन्तन शीलता उसका स्वाभाविक गुण है। इस गुण के अनुसार विचार करके अनेक विचार धाराएँ समय समय पर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में, प्रकाशित हुई, इन सब धाराओं में बुद्धि की सूक्ष्मता और सूझ का चमत्कार लक्षित होता है। बढ़ती हुई बुद्धि और पनपते हुए विचारों से होने वाली हिन्दी साहित्य की आशातीत उन्नति निश्चय ही राष्ट्र के भावी उत्थान की द्योतक है।

साहित्य के स्वरूप और विकास का अनुमान रीति काल की शृंगारिक कविता के प्रेम की वर्तमान कविता से तुलना करने से भली प्रकार हो सकता है। इन दोनों में कई दृष्टियों से भेद पाया जाता है।

आज की कविता में प्रेम का भावात्मक चित्रण अधिक मिलता है। औचित्य, सौम्यता और संयम इन सबने प्रेम की अन्तवृत्ति निरूपणी शैली को जन्म दिया है। मुक्तक गीतों की आधुनिक प्रवृति ने इस शैली को और भी उत्तेजना दी है। हमारे कविगण बालचेष्टा और वर्णन की अपेक्षा प्रेम से प्रभावित मानसिक अवस्था के विश्लेषण और व्यंजना को अधिक महत्व देते हैं। इनकी कविताओं में सौन्दर्यपूर्ण व्यंजना रहती है। प्रसाद और पन्त चित्रों की भव्यता और सौम्यता रीतिकाल की वयः सन्धि की कविताओं के प्रति पक्ष में रखने से अत्यन्त उदात्त रूप में दृष्टि आती है।

वर्तमान युग के प्रेम गीतों में सजीवता, सरलता और मधुरता है—उनमें रीति कालीन कवियों जैसी आडम्बर पूर्ण रूप वर्णन और हास विलास का चित्रण नाम को भी नहीं—रीति कालीन कवियों ने नारी को विलास की सामग्री और इन्द्रियलिप्सा की पूर्ति निमित्त बनी प्रतिमा के रूप में अङ्कित किया है। उनकी नायिका का बाह्य चित्रण प्रेमी के हृदय में उदात्त प्रेम के स्पन्दन जागृत करने में कदापि समर्थ नहीं हो सकता वह तो केवल काम

वासनाओं को जागृत करने में ही योग दे सकता है। इसके विपरीत वर्तमान युग के कवियों ने प्रेमिका के बाह्यरूप एवं श्रृंगार आदि के नख शिख वर्णन की ओर ध्यान न देकर प्रेमी और प्रेयसी के हृदयगत प्रेमस्पन्दनों का अनेक रूपों में भावात्मक चित्रण किया है। सौन्दर्य का वर्णन प्रसङ्गवश हुआ भी है तो उसमें भी बाह्य सौन्दर्य का उल्लेख नहीं—बल्कि अङ्ग प्रत्यङ्ग से बिखरती हुई प्रेम स्वरूपा रूप किरणों की व्यंजना की है, जैसे "गुंजन" में पन्त की प्रेयसी का सौन्दर्य उन्हें अभिभूत कर देता है:—

"उषा सौस्वर्णोदय पर भोर शिखा मुख कनक किशोर।
प्रेम की प्रथम मदिरतम ओर दृगों में दूरा कठोर।
छा दिया यौवन शिखर अछोर रूप किरणों में घोर।
सजा तुमने सुख स्वर्ण सुहाग लाज लोहित अनुराग।"

कविता की प्रथम आवश्यकता सचाई के महत्व को इस युग के कवियों ने भली प्रकार पहचाना है। ये व्यर्थ के आडम्बर और जाल नहीं रचते बल्कि अपनी सर्वोत्तम भावनाओं की भेंट संसार को देना ही अपना परम लक्ष्य समझते हैं। इसीलिये इनके प्रेम गीत सौन्दर्य से पूर्ण होते हैं। गीतों में प्रभाव, सत्यता और सजीवता है—अनुभूति की तीव्रता इनके गीतों की विशिष्टता है। भगवतीचरण वर्मा और सुभद्रा कुमारी चौहान आदि ने प्रेम की स्वाभाविक और प्रभावपूर्ण व्यंजना में विशेष सफलता पाई है) रीतिकालीन कवियों की कविता कामनी में इस स्वाभाविकता और प्रभाव शालीनता के दर्शन भी नहीं होते। वह तो केवल राजा महाराजाओं का मनोरंजन करके उनका प्रसाद प्राप्त करने के निमित्त अपनाया हुआ दरबारी कवियों का शस्त्र मात्र हैं हाँ उस वर्णन से कामशास्त्र के विभिन्न रूपों और श्रृंगार की विधाओं सम्बन्धी उन कवियों के ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। पर यह कहना अनुचित न होगा कि स्वाभाविक चित्रण के अभाव में उस युग की श्रृंगारिक कविता में भाव पक्ष की अपेक्षा कलापक्ष की प्रधानता परिलक्षित होती है।

उस काल की श्रृंगारिक कविता की अपेक्षा वर्तमान युग के प्रेम गीतों में अधिक आकर्षण और साहित्य है। प्रेम की अधिकांश कविता सरल, स्वच्छन्द, अनुभूतियुक्त और प्रभावशाली है। देशदशा के अनुकूल होने के कारण आधुनिक प्रेम कविता का भविष्य उज्ज्वल और आशापूर्ण है।

साहित्यकार का उत्तरदायित्व महान् है, उसे इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि उसकी रचना साहित्य के परम लक्ष्य उदात्त भावों की उद्भावना

से च्युत न होने पावे। यश लिप्सा या प्राप्ति की आशा से अपना राजनैतिक मत विशेष की पुष्टि या प्रचारार्थ रचा हुआ साहित्य लक्ष्य प्रकट होकर समाज और राष्ट्र के लिये घातक सिद्ध होता है, इसी प्रकार वासनापूर्ण या चाटुकारी के लिये की हुई अश्लील साहित्य की सर्जना लाभ के स्थान में हानिकार सिद्ध होती है। साहित्य के विद्यार्थी को भी इस प्रकार की रचनाओं से सतर्क रहना वांछनीय है, और उदीयमान साहित्यिक प्रतिभाओं को हिन्दी साहित्य के इतिहास में अद्भुत गणमान्य साहित्यकारों का आदर्श सन्मुख करके साहित्य की वृद्धि में योग देने के लिये अग्रसर होना चाहिए।

हिन्दी साहित्य इतना गम्भीर विषय है कि उसके एक एक अङ्ग प्रत्यङ्ग पर विचार करने के लिये ही पर्याप्त समय चाहिये। विचारधाराओं को देखें तो उसमें अनेक रूप दृष्टि आते हैं, साहित्यिक विधाओं पर विचार करने से पद्य, गद्य आदि भेद और उनके भी उपभेद प्रबन्ध, मुक्तक, महाकाव्य, खंडकाव्य और नाटक, कहानी, उपन्यास, निबन्ध आदि विभिन्न प्रकार मिलते हैं। इधर कला पक्ष में रस, अलंकार और छन्द आदि कई बातें विचारणीय है। अतः अलग अलग दृष्टियों से देखने पर हिन्दी साहित्य का सम्यक् परिशील होना अति दुष्कर कार्य है, उसके सारे स्वरूप की सीमित पृष्टों की एक छोटी सी पुस्तक के रूप में बांधकर पूरी जानकारी कराने की तो चेष्टा मात्र दुःसाहस होता परन्तु हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक विद्यार्थी के बुद्धिस्तर अनुसार स्थूलरूप से हिन्दी साहित्य का परिचय मात्र कराने के लिये सम्भवतया पुस्तक का यह छोटा रूप पर्याप्त हो जावे, इस आशा से इसकी समाप्ति की गई है।

प्रत्येक विषय का विस्तारपूर्वक निरूपण विकसित ज्ञान वाले बी० ए० और एम० ए० के विद्यार्थी के लिये अवश्य रूच्यनुकूल और लाभप्रद होता है, परन्तु यूनिवर्सिटी स्तर में प्रवेश करते ही विस्तृत रूप में वर्णित गूढ़ साहित्य के स्वरूप को समझने की चेष्टा में प्रायः विद्यार्थियों की बुद्धि चकरा भी जाती है। उस अवस्था के लिये हिन्दी साहित्य सम्बन्धी समस्त विषयों की साधारण जानकारी मात्र करना छात्र छात्राओं के लिये अधिक रुचिकर होता है। तुच्छ प्रयास ,"साहित्य दिग्दर्शन" से इस ध्येय पूर्ति की आशा की जाती है, परन्तु पुस्तक के अभावों की अवहेलना करके लेखिका की आशा पूरी करना साहित्य के प्रेमियों पर निर्भर है।

—लेखिका

परिशिष्ठ

कहानी के तत्व :– शिल्प तन्त्र की दृष्टि से प्रायः कहानी के छः तत्व माने जाते हैं – १. कथानक २- चरित्र चित्रण ३. कथोपकथन ४. देश काल वातावरण ५. भाषा और शैली तथा ६. उद्देश्य । इन छः तत्वों में कम व अधिक महत्त्व के संबंध में विद्वानों में मतभेद है कोई कथानक को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान करते हैं कोई चरित्र चित्रण को एवं दूसरे अन्य २ तत्त्वों को । वास्तव में कहानी के सभी अंग निजी महत्त्व रखते हैं – न केवल कथानक से कहानी आकर्षक बन सकती है न एकाकी अन्य तत्त्वों से । सभी तत्वों की उपयुक्तता के मेल से कहानी श्रेष्ठ बन पाती है ।

१. कथानक – कथानक के चार अंग हैं – प्रस्तावना, मुख्यांश, चरम सीमा और पृष्ठ भाग । चारों अंगों का यथोचित उतार चढ़ाव होने के अतिरिक्त घटना प्रवाह और संवेदना कथानक के प्रमुख गुण हैं। घटनाओं का क्रम इस प्रकार संश्लिष्ट हो कि कार्य्य कारण शृंखला बनती चले, और एक घटना दूसरी से गुथी हुई सी प्रतीत हो, घटना वर्णन से औत्सुक्य की सृष्टि संवेदना कहलाती हैं । घटना क्रम इस प्रकार आयोजित हो कि पाठक को निरंतर आगे होने वाली घटनाओं को जानने के लिये कौतूहल बना रहे । यह कौतूहल कहानी का प्राण है – उसी के कारण कहानी कला में उस अलौकिक आनन्द की सृष्टि होती है जो संस्कृत आचार्य्य, मम्मट द्वारा वर्णित 'ब्रह्म सहोदर आनन्द' की श्रेणी का माना जाना चाहिये ।

२. चरित्र चित्रण – कहानी के पात्रों के व्यवहार पारस्परिक वार्तालाप आदि से स्वतः उन के चरित्र का विकास (अच्छाई–या बुराई की ओर) होता चला जावे लेखक को अपनी ओर से कहना अपेक्षित न रहे वह चरित्र चित्रण उत्तम होता है । जैसा कि गुलेरीजी की 'उसने कहा था' कहानी में लहनासिंह का चरित्र घटना क्रम के साथ विकसित होता पाया जाता हैं । चरित्र चित्रण की मुख्य विशेषताएँ हैं वास्तविकता, स्वाभाविकता और संक्षिप्तता ।

३. कथोपकथन – कथा प्रवाह के बीच बीच पात्रों का पारस्परिक वार्तालाप उनके चरित्र के विषय में ज्ञान कराने के अतिरिक्त कहानी की

रोचकता बढ़ाने में सहायक होते हैं। परन्तु कथोपकथन संक्षिप्त, स्वाभाविक भाव व्यंजक, सजीव और मर्मस्पर्शी होने चाहिये। उन में एक भी शब्द निरर्थक न हो और मनोविकारों के आविर्भाव और तिरोभाव के अनुसार उन में भी उतार चढ़ाव होना चाहिये।

४. देश काल–वातावरण – कहानी में उसके आकार की लघुता के सामान्यत देश काल और वातावरण के चित्रण के लिये स्थान नहीं रहता, न हि मुख्य संवेदना की तीव्रतमता के स्पष्टीकरण में वातावरण या अन्य तत्त्व अपने स्पष्ट प्रभाव की अपेक्षा रखता है। फिर भी पाठक को घटनाओं के घटने का स्थान समय और वातावरण की पृष्ठ भूमि का आभास मिलना आवश्यक है। वातावरण की उपयुक्तता अनुपयुक्तता से घटनाओं का महत्त्व घटता अथवा बढ़ता है। इसलिये पात्रों और घटनाओं को आश्रय देने मात्र के लिये सूक्ष्म रूप से कहानी में देश काल और वातावरण का चित्रण होना उचित माना जाता है।

५. भाषा और शैली – कहानी की भाषा सरल, स्वाभाविक और प्रसाद गुण युक्त होनी चाहिये और वर्णन शैली प्रवाहमयी, रोचक और प्रभावोत्पादक, जिस से गूढ से गूढ़ भावनाओं और सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियों की अभिव्यक्ति सफलता पूर्वक हो सके। लक्षणा व्यंजना आदि शब्द शक्तियों तथा अलंकार और मुहावरे इत्यादि भी वर्णन शैली के संवर्धन के लिये सहायक उपकरण के रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं। हास्य और व्यंग्य को भी कहानी के आवश्यक तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है जिस के विना कहानी की रंजनी शक्ति क्षीण रहती है।

६. उद्देश्य:—कहानी के उद्देश्य अनेक हैं पर प्रधान रूप से उस का उद्देश्य मनोरंजन माना जाता है, परन्तु मनोरंजन के पीछे एक ध्येय वर्तमान रहता है जो जीवन की किसी मार्मिक अनुभूति या सामाजिक स्थिति की अभिव्याक्ति में निहित है। इस ध्येय में किसी उच्च आदर्श या आदर्शों की स्थापना संवेदना के रूप में ही व्यक्त होना चाहिये उपदेश के रूप में नहीं। केवल मनोरंजन के लिये लिखी हुई कहानी उच्च कोटि की नहीं होती। कहानी के उद्देश्य में विचित्रता यह है कि मनोरंजन निमित्त उस का अस्तित्त्व होते हुए भी मनोरंजन गौण रूप में फलित होने पर ही कहानी श्रेष्ट बनती है। वास्तव में जीवन संबंधी विभिन्न दृष्टि कोणों की व्याख्या कहानी के उद्देश्य में वर्तमान रहती है और

व्याख्या के क्रम में घटनाओं के वर्णन द्वारा जो रस की सृष्टि होती है उस से मनोरंजन होता है ।

कहानी शिल्प की दृष्टि से गुलेरी जी की 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी हिन्दी साहित्य में आदर्श मानी जाती है । उस में उपर्वर्णित कहानी के छःओं तत्व यथोचित रूप में पाये जाते हैं ।

कहानी और उपन्यास का तात्त्विक भेद :—

"Short story is a representation in a brief and dramatic form of a turning point in the life of a single character"–Y. W. Simlo.

अर्थात् :—कहानी मानव जीवन की मार्मिक घटना, उसके चरित्र के किसी एक अंश अथवा उस के विचार या भाव की कलात्मक अभिव्यक्ति है ।

कहानी उपन्यास का लघुतम रूप नहीं है । कला की दृष्टि से उपन्यास और कहानी दो विभिन्न वस्तुऐं हैं । उपन्यास और कहानी में सादृश्य अवश्य है, किन्तु साथ ही दोनों में विभिन्नताऐं हैं ।

१. विस्तार की दृष्टि से उपन्यास कहानी से अधिक लम्बा होता है । कहानी में कथानक कम से कम एक दिन और अधिक से अधिक कई महीने तक का हो सकता है । किन्तु उपन्यास का कथानक वर्षों तक, पीढ़ियों तक चल सकता है ।

२. जीवन की दृष्टि से उपन्यास में अखंड जीवन अंकित होता है, पर कहानी में जीवन का खंड गृहीत होता है ।

३. कहानी में केवल एक मुख्य कथा होती है । गौण कथाओं के समावेश की उस में गुंजाइश नहीं । पर उपन्यास में मुख्य कथानक के साथ २ कई गौण कथाएं चलती रहती हैं । कहानी के मुख्य कथानक में जीवन का पूर्ण चित्र नहीं रहता । जहां कहानी में कुछ गौण कथाएं रहती हैं वहां भी जीवन के किसी अंग विषय पर ही प्रकाश पड़ता है । कहानी का कथानक इतना सुसम्बन्धित और सुगठित होना चाहिये कि उस में एक भी शब्द भर्ती का प्रतीत न हो । उस का प्रत्येक शब्द प्रत्येक वाक्य उद्देश्य की ओर ले जाने वाला होना चाहिये । उपन्यासकार को

कथानक के विस्तार के संबंध में पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। वह अपने कथानक को अपनी अवश्यकता-नुसार विस्तृत और संकुचित कर सकता है।

४. पात्र की दृष्टि से कहानी में सब से कम पात्र होने चाहिये। पात्र जितने ही कम होते हैं, चरित्र चित्रण उतना ही अधिक सफल होता है। उपन्यास में पात्रों की संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं। कहानी में एक या दो मुख्य पात्रों से काम चल सकता है, पर उपन्यास में मुख्य पात्रों के पूर्ण चारित्रिक विकास के लिये उन से सम्बन्धित कई उपपात्रों का होना आवश्यक है।

५. चरित्रचित्रण की दृष्टि से—उपन्यास में जीवन की पूर्ण प्रकाश रेखा और उस का पूर्ण चित्र रहता है, कहानी में मानव जीवन की एक झलक अथवा एक दृष्टि बिन्दु होता है; उपन्यास में पात्रों के सर्वाङ्ग जीवन का चित्रण रहता है, पर कहानी में पात्रों के चरित्र के एक अंग अथवा अंग विशेष का चित्रण रहता है।

६. शैली की दृष्टि से कहानी और उपन्यास में विशेष अन्तर नहीं स्थानाभाव के कारण कहानी में विस्तृत वस्तु वर्णन नहीं रहता, इसलिये कहानी की शैली अत्यन्त सुगठित और संक्षिप्त होती है। उपन्यास के विशाल क्षेत्र में लेखक को अपनी शैली की विशिष्टताएं तथा चमत्कार प्रदर्शन करने का अधिक अवसर रहता है।

७. **उद्देश्य की दृष्टि से**:—उपन्यास का उद्देश्य मानव जीवन की विशदव्याख्या है, पर कहानी का उद्देश्य मानव जीवन के एक अंग विशेष की मार्मिक और अभिव्यजंना पूर्ण अभिव्यक्ति है। वह एक ऐसी अभिव्यक्ति है जो हृदय में जीवन के प्रति एक गहरी संवेदना उत्पन्न करती हुई अपना अमिट प्रभाव छोड़ जाती है।

नाटक उपन्यास का भेद—

१. नाटक का रूप बहुत कुछ रंग मंच के प्रतिबन्धों के अनुसार निश्चत करना पड़ता है, किन्तु उपन्यास में इस तरह का कोई प्रतिबन्ध नहीं रहता।

२. नाटक दृश्य काव्य है इस कारण इस में प्रत्यक्ष जीवन की सजीवता और झलक रहती है। यह उपन्यास में नहीं रहता।

३. उपन्यास की रचना केवल पठन पाठन के लिये होती है किन्तु नाटक की रचना रंग शाला में अभिनय के लिये होती है।

४. नाटक में स्वयं नाटककार को जीवन अथवा समस्याओं के विषय में अपनी ओर से कुछ कहने का अधिकार नहीं होता किन्तु उपन्यास में लेखक को इस प्रकार की पूरी स्वतन्त्रता रहती है। नाटक में जिस अवसर पर लेखक कुछ टीकाटिप्पणी करना चाहता है तो वह स्वगत कथन मे काम लेता है।

५. उपन्यास के विस्तार के सम्बन्ध में कोई नियम निरधारित नहीं हो सकता किन्तु नाटककार को यह स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं। नाटक की कथावस्तु मर्यादित होती है।

६. कथावस्तु की भांति नाटक में चरित्र चित्रण भी संक्षिप्त होता है उपन्तास में चरित्र चित्रण विस्तार के साथ हो सकता है।

७. अभिनय के अभाव में नाटक का पठन पाठन द्वारा मानव हृदय पर उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना उपन्यास के पठन पाठन से पड़ता है। चल-चित्रों के प्रचलन से नाटक का पठन पाठन कम और उपन्यास का अधिक रूप से हो चला है। इस लिये उपन्यास समाज में नवीन विचारों के प्रसार के अधिक सुलभ साधन प्रमाणित हो रहे हैं।

८. नाटकों को सफल बनाने के लिये अन्य कलाओं तथा उपकरणों की आवश्यकता होती है अतः नाटक द्वारा जनता को प्रभावित करना अधिक खर्चीला है।

९. उपन्यास का महत्व उस की कथावस्तु की चमत्कारिता और कौतूहलता पर निर्भर है और नाटक का उसके अभिनय की स्वाभाविकता पर।

१०. उपन्यास एक प्रकार की आख्यायं का है जो घट चुकी है। दूसरे दूसरे शब्दों में उपन्यासकार एक ऐसी घटना का उल्लेख करता है जो बीत चुकी है। किन्तु नाटक कार भूत को वर्तमान में बदल देता है। वह अतीत की घटनाओं का प्रत्यक्षदर्शन कराता है।

११. उपन्यास के ६ तत्व माने गये हैं—वस्तु, चरित्र चित्रण, कथोपकथन, देशकाल शैली और उद्देश्य।

नाटक के मूल तत्व हैं--वस्तु, कथोपकथन, नेता और रस।

१२. नाटक और उपन्यास की कथा वस्तु में अन्तर होता है। उपन्यास में महाकाल की तरह छोटी २ आवान्तर कथाओं का समावेश हो सकता है, किंतु नाटक में यह गुंजाइश नहीं रहती।

किसी उपन्यास की कथावस्तु को नाटक में बदलना मुश्किल है। शैली की दृष्टि से उपन्यास और नाटक में पर्याप्त अन्तर है। उपन्यासकार के पास अपनी अभिव्यक्ति के लिये केवल शब्द ही रहते हैं किन्तु नाटक कार अभिनेताओं की वेशभूषा भाव भंगीमा और चाल के द्वारा अपनी अभिव्यक्ति में अधिक सुविधा और सहायता प्राप्त कर लेता है।

पठनीय पुस्तकें

★

१. साहित्यालोचन	....	बा. श्यामसुन्दर दास
२. हिन्दी भाषा और साहित्य	....	बा. श्यामसुन्दर दास
३. विचार और अनुभूति	....	डा० नगेन्द्र
४. साहित्य का श्रेय और प्रेय	....	जैनेन्द्र कुमार
५. विचार और निष्कर्ष	....	डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
६. साहित्य की झाँकी	....	डा० सत्येन्द्र
७. साहित्य चिन्तन	....	लक्ष्मी नारायण वार्ष्णेय
८. साहित्य सुषमा	....	नन्द दुलारे वाजपेयी
९. साहित्य सर्वस्व	....	हरिराम तिवारी
१०. हिन्दी साहित्य परिचय	....	रामेश्वर शुक्ल 'अञ्चल'
११. साहित्य परिचय	....	रमा शङ्कर शुक्ल
१२. साहित्य वार्ता	....	गिरिजा दत्त शुक्ल
१३. हिन्दी साहित्य चिन्तन	....	इन्द्रपाल सिंह
१४. हिन्दी साहित्य	....	राम रतन भटनागर
१५. विचार विमर्श	....	सतगुरु शरण अवस्थी
१६. साहित्य संदीपनी	....	चन्द्रावली पांडे
१७. साहित्य सीकर	....	महावीर प्रसाद द्विवेदी
१८. रसज्ञ रंजन	....	महावीर प्रसाद द्विवेदी
१९. भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ	....	
२०. संस्कृति और साहित्य	....	